1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-6, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2022, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

सफलता के पथ पर निरंतर अग्रसर
सार्थक 26 वाँ वर्ष...

अतिथि संपादक : डॉ.श्यामसुंदर दुबे

अक्षर ब्रह्म विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

आवरण चित्रकार

चेतन औदिच्य

चेतन औदिच्य, जाने-माने चित्रकार हैं। समकालीन कलाधारा में वे निरंतर अपनी प्रयोगवादी कृतियों से चर्चित रहे हैं। देश के अनेक शहरों में आपकी एकल तथा सामूहिक कला-प्रदर्शनियां आयोजित हुई हैं। अनेक राष्ट्रीय कला-शिविरों में इनकी भागीदारी भी उल्लेखनीय है। इनकी कृतियों के बारे में प्रसिद्ध आलोचक विनोद शाही का कहना है कि, " चेतन औदिच्य भीतर और बाहर की एक साथ यात्रा करने वाले चित्रकार हैं। अतएव उनके चित्र ' छविमूलक बहुलता से युक्त हो जाते हैं। यही विशिष्ट प्रकार की बहुलता उनके चित्रों का सादृश्य विधान रचती है। वहां से वे दृश्य के पार जाने की कोशिश में अपने चित्रों की आत्मा तक पहुंचते हैं, जिसे हम उदात्त भाव की भांति इन चित्रों में सर्वत्र अंतर व्याप्त देख सकते हैं। " इस तरह मनुष्य की आंतरिक चेतना को व्यक्त करती उनकी कला 'भारतीयता' का चित्रमय उद्घाटन है। राजस्थान साहित्य अकादमी, युगधारा, कला चर्चा आदि प्रतिष्ठानों से पुरस्कृत चेतन औदिच्य लेखन तथा रंगकर्म में भी सतत संलग्न रहे हैं। 'कला समय' के लिए विशेष रूप से बनाए आवरण चित्र के बारे में उनका कहना इस प्रकार है...

- संपादक

आवरण चित्र और 'अक्षर'

'वाचक्नवी गार्गी 'नामक यह पेंटिंग बृहदारण्यक के तीसरे अध्याय के अष्टम ब्राह्मण में हुए याज्ञवल्क्य और गार्गी के संवाद पर आधारित है। यह संवाद विदेहराज जनक की भरी सभा में होता है, जिसमें गार्गी, याज्ञवल्क्य से प्रश्न करती है और याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं। गार्गी का प्रश्न होता है कि यदि भूत वर्तमान और भविष्य 'आकाश' में ओतप्रोत है, तो यह आकाश किसमें ओतप्रोत है? तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे गार्गी! यह आकाश 'अक्षर' तत्व में ओतप्रोत है। (से होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि) जिसका कभी विनाश नहीं होता है। जो तीनों कालों में रहता है। अक्षर में ही आकाश ओतप्रोत है। अक्षर ही चराचर सृष्टि का आधार है। यह ना स्थूल है, ना अणु है। न ह्रस्व है, न दीर्घ है। ना लाल है, ना चिकना है। ना छाया है, ना अंधकार है। ना वायु है, ना आकाश है। जो ना संग है, ना रस है। ना गंध है, ना चक्षु है। ना श्रोता है, ना वाक है। न मन है, न तेज है। न प्राण है ना मुख है। जो ना अंदर है, और जो ना बाहर है। ... इस अक्षर तत्व की गूढ़ व्याख्या करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं यह अक्षर अदृश्य होते हुए भी सबका द्रष्टा है। अश्रुत होते हुए भी सबका श्रोता है। अमत होते हुए भी सब का मन्ता है। तथा अविज्ञात होते हुए भी सब का विज्ञाता है। ' अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ' वचन में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि इस अक्षर तत्व के प्रशासन में ही सृष्टि का कार्य संचलित एवं नियमित हो रहा है। इस जगत मैं किया जा रहा प्रत्येक कार्य उस अक्षर तत्व के आदेश की पालना मात्र है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में आवरण पर आई पेंटिंग को जब हम देखते हैं तो इसमें एक महिला 'स्व-स्थित' अवस्था में बैठी है। यह गार्गी की वह प्रति छवि है जो प्रश्नो के शमन के उपरांत, मन की अवस्था होती है। उसके चारों और स्याह छाया तथा लाल रंग का अवकाश है। यह ऊर्जा के अंतिम रूपांतरण का रंग है। जैसा कि वैज्ञानिकों के मत अनुसार सोने का नैनो विभाजन करने पर उसका रंग बदल कर पीले से लाल हो जाता है। पेंटिंग के ऊपरी भाग में कुछ कमल खिले हैं। ये कमल हृदय की मुक्तावस्था के प्रतीक हैं जो अर्द्ध वलयाकार आकृति से घिरे हैं। यह अवस्था किसी भी सृजन अथवा सहृदय की मुक्तावस्था के भी प्रतीक हैं। वहीं अंडाकार एक और आकृति है जो अर्द्ध -वलय को काट रही है। यह आकृति 'हिरण्यगर्भ' के संदर्भ का प्रतीक जो अक्षर तत्व की उत्पत्ति और लय से परे ,नेति नेति को व्यक्त करता है और जिस निषेध का वर्णन 'अक्षर' तत्व की व्याख्या में स्वयं याज्ञवल्क्य करते हैं।

इन सब बातों के उपरांत भी वस्तुत: चित्रकार की दृष्टि में पेंटिंग की रूप-छवि वैसी ही 'स्ववस्तु' है जैसा कि हमारी मनीषा 'अक्षर' के बारे में कहती है। शुभमस्तु।

- चेतन औदिच्य

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+06=26) पूर्णांक-119

वर्ष-6, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर -2022, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

रेखांकन : राधेलाल बिजघावने

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षड़ंगी राजाराम
साहित्य
अरुण तिवारी
समसामयिक
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

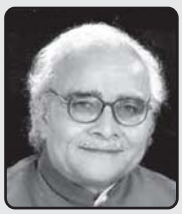
डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

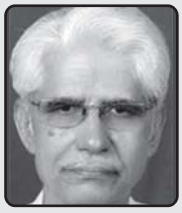
प्रभुदयाल मिश्र

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

विजय मनोहर तिवारी

डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र

डॉ. सरोज गुप्ता

डॉ. सुमन चौरे

कैलाश चंद्र घनश्याम पांडेय

गोविंद गुंजन

इस विशेषांक के अतिथि संपादक

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

वरिष्ठ साहित्यकार, सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक लेखन के क्षेत्र में संलग्न, लोक-मानस के मर्मज्ञ विद्वान, हटा दमोह (म.प्र.) मो.- 9977421629

इस बार

- **अतिथि संपादक की ओर से** 05
  अक्षर ब्रह्म की अकथ कथा
- **संपादकीय** 09
  अक्षर और ब्रह्म
- **आलेख**
  अक्षर ब्रह्म: भारतीय कला की अस्मिता का मर्म / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 10
  काश्मीरीय शैवयोगिनी लल्लेश्वरी के वाखों में
  अक्षर ब्रह्म / डॉ. अद्वैतवादिनी कौल 13
- **अद्वैत-विमर्श**
  आदि शंकर और बुल्ले शाह / विजय मनोहर तिवारी 17
- **आलेख**
  अक्षरं ब्रह्म परमम् / प्रभुदयाल मिश्र 22
  अक्षर ब्रह्म / डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र 25
  अक्षर पुरुष में ब्रह्म की अवधारणा / डॉ. सरोज गुप्ता 28
  सूखे सरवर उठे हिलोरा, बिन जल चकवा करत किलोला / गोविंद गुंजन 31
  शब्द ब्रह्म / कैलाश चंद्र घनश्याम पांडेय 35
  ''अक्षर ब्रह्म'' / डॉ. तारूणी कारिया 38
  अक्षर ब्रह्म : आज की जीवनचर्या के संदर्भ / बी.आर.साहू 40
  मेरा गाँव और गांधी / डॉ. सुमन चौरे 41
- **मध्यांतर**
  अली अहमद सईद एस्बर की कविताएं: मणि मोहन 49
  गीत : राघवेन्द्र तिवारी के अभिनवगीत 51
  कविता : कुमार सुरेश की कविताएँ 52
  ग़ज़ल : मोहन सगोरिया की ग़ज़लें 53
- **विशेष कविता**
  लक्ष्मीनारायण पयोधि की कविता / लक्ष्मीनारायण पयोधि 54
- **सिनेमा**
  तल्खियों से गुज़रते हुए राष्ट्रीय एवं सामाजिक
  चेतना तक / अश्विनी कुमार दुबे 55
- **शख़्सियत**
  चेतन औदिच्य की 'एकोहम् बहुस्याम्' वाली
  उदात्त कला-भूमि / विनोद शाही 63
- **पुस्तक समीक्षा**
  भाषा-काव्यभाषा की अवधारणाओं का पुनरावलोकन:
  संभव होने की अजस्र धारा / डॉ. विभा सिंह 65
  कथा कठौती (बाल कहानी संग्रह) / डॉ. गोकुल सोनी 67
  ब्रह्मवादिनी काव्य संग्रह / राजेश्वर वशिष्ठ 70
  सार्थक कथाएं / अंतरा करवड़े 72
  भावनाओं के मनोहर इंद्रधनुषी अभिव्यक्ति है :
  सुबोधनी काव्य संग्रह / राज किशोर वाजपेयी 74
- **आलेख**
  लोकविज्ञान: folkloristics / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 77
- **समय की धरोहर**
  तबला सम्राट पं. सामता प्रसाद मिश्र उर्फ गुदई महाराज 85
- **संस्मरण**
  तबला सम्राट गुदई महाराज के जीवन के
  कुछ रोचक प्रसंग / जगदीश कौशल 86
- **समवेत** 76
  आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास का पहला दीक्षांत समारोह सम्पन्न / महामहिम राज्यपाल श्री मंगूभाई पटेल के द्वारा श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय सम्मानित / डॉ. सुमन चौरे सप्तपर्णी सम्मान से सम्मानित

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र एवं अंतिम आवरण पेंटिंग** - चेतन औदिच्य | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** राधेलाल बिजघावने
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

अतिथि संपादक की ओर से

अक्षर ब्रह्म की अकथ कथा

मानवीय सभ्यता के विकास के मूल में उसकी मेघा एक केन्द्रीय शक्ति रही है। उसके सम्पूर्ण भौतिक विस्तार का आलोक इसी शक्ति– चेतना के माध्यम से प्रसरित हुआ है। बाह्य विकास के अतंराल में अभ्यान्तर के अन्वेषण की प्रक्रिया से यह मेघा शक्ति परा चेतना के मूलगामी उत्सों के विषय में सदैव समुत्सुक रही है। उसकी जिज्ञासावृत्ति इस विराट वैभव की उत्पति विषयक चिन्ताओं को अपने भीतर सतत् पालती रही है। कौन है– जिसने इस ब्रह्माण्ड निकाय को उत्पन्न किया? वह कौन – सी अभिक्रिया है– जिससे इसका विकास हुआ है? और इसके नियमन की संहिता के क्या आधारभूत सिद्धांत है! इन जिज्ञासाओं समाधान की दिशा में ज्ञान और कला के परिसरों में सदैव विमर्श चलता रहा है।

धर्म–चिंतन, दर्शन, विज्ञान साहित्य और कला– चेष्टाओं में सतत् सक्रिय अंतर्क्रियाओं के माध्यम से यह जानने का प्रयत्न होता रहा है कि वह कौन सी शक्ति चेतना है, जिसकी ऊर्जा का परिणाम यह स्वयं चालित– सा ब्रह्माण्ड समूह अपना अस्तिव कायम किये हुए है ऐसी अनेक तरह से चेष्टा की गयी कि वह तत्व क्या है, जिससे सृष्टि का आरम्भ और विस्तार हुआ है! विज्ञान का भौतिक महाप्रयोग हमारे समय की बड़ी परिघटना है, जिसका संचालन श्रेष्ठ वैज्ञानिक कर रहे है– अभी तक आये परिणाम के अनुसार किसी गाड पार्टिकल की परिकल्पना का खुलासा हुआ है– धर्म, दर्शन, साहित्य में इसे ईश्वरीय चेतना ब्रह्म आदि के रूप में जाना जाता है और इसे अनेक रूपों और अनेक आख्यानों के जरिये अवबोधित कराया जाता हैं। विज्ञान अपने प्रयोगों में जिस परा शक्ति का अन्वेषण कर रहा है– बहुत सम्भव है कि उसके निष्कर्ष लगातार भारतीय अंतर्दर्शन के उस पक्ष के करीब पहुँचते जायें जिनमें उस परा शक्ति का सिलसिलेवार व्यापक विवेचन किया गया है। विज्ञान और भारतीय आध्यात्म विद्या की समीयता सत्य की निर्भ्रांत धारणा तक पहुँचने का एक महत्वपूर्ण प्रयास हो सकता है।

सृष्टि के पूर्व बिन्दू की स्थिति थी। एक विराट शून्य विद्यमान था। इस शून्य में न सत था न असत न अस्तिव था न अनस्तित्व। एक ब्रह्म ही इसमें व्याप्त था। यह ब्रह्म अजन्मा और अनंत है। बिन्दु ही सृष्टि के पूर्वापर रूप का केन्द्र है तांत्रिक विचार के आधार पर बिन्दु ही आदि–अनादि है। उसी से ज्ञान, इच्छा और क्रिया के त्रिक् का स्वरुप विकसित हुआ। ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लेख है–

त्रिकोण रूपिणी शक्ति र्बिन्दुरूपः परः शिवः ।
अविनाभाव सम्बद्धस्तस्माद् विनु त्रिकोणयोः ।।

बिन्दु शिव स्वरूप है और त्रिकोण शक्ति का प्रतीक है। यह बिन्दु या शून्य ही सृष्टि का बीज है। सम्पूर्ण जड़ –चेतन का प्राकाट्य उसी से सम्भव हुआ है। इस बिन्दु की त्रिकोणात्मक धारणा का विकास अनेक रूपकों का अवबोधन कराने वाला है। त्रिकोण प्रजनन शक्ति की योनि की ओर संकेत करने वाला प्रतीक है। इसके अनुसार त्रिकोण के बीच का शून्य शिव है, और इस रूप में शिव–शक्ति एक ही रूप में विद्यमान है। और इनके द्वारा ही सृष्टि का सभारम्भ हुआ। यह बिन्दु जब क्षुब्ध होता है– तब नाद और ज्योति का प्राकाट्य होता है। यह क्रिया एक साथ ही सम्पन्न होती है– इसीलिये वाक् और ज्योति में विभाजन नहीं है, बिन्दु के इस स्फोट को वैज्ञानिक महाविस्फोट 'बिग बैंग' मानते है। 'बिगबैंग' थ्योरी को

वैज्ञानिक सृष्टि का प्रारम्भ आधार मानते है।

यह नाद स्वयं ही उत्पन्न हुआ था– इसलिए इसे अनाहत नाद भी कहा जा सकता है, नाद ही अक्षर स्वरूप ब्रह्म है, और यही अपने विस्तार में शब्द के रूप में अवतरित होता है, यही शब्द ब्रह्म है।

''अनादि निधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम्
विवर्ततेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो गतः''

अनादि अनंत शब्द नामक ब्रह्मतत्व ही अर्थ रूप से विवर्तित होता है और जगत की रचना करता है। शब्द और अर्थ का यह श्लेष कवियों की वाणी में जगतः पितरौ के रूपक में प्रकट होता है। सृष्टि को पौराणिक आख्यान जिस तरह से कथा–विस्तार का अंग बनाते है। उसमें हिरण्यगर्भ की कल्पना बिन्दु तत्व की ओर सकेंत करने वाली है। यह स्वर्णाभ गोलक ही जैसे परमशून्य है– 'एकोऽहं बहु स्यामि' की इच्छा से वह द्विधा विभाजित होता है– इस विभाजन में नाद और प्रकाश के उत्पन्न होने की प्रक्रिया भी छिपी है। ब्रह्म वैवर्त पुराण के अनुसार इस विशिष्ट गोलक में अर्थात् बिन्दु में श्री कृष्ण का अविर्भाव होता है– और इनसे ही सृष्टि का क्रम चलता है यह यात्रा 'शब्द' तक आते–आते शब्द की ब्रह्म सत्ता में प्रतीयमान हो उठती है– और योगियों, संतों, भक्तों तक शब्द साधना कीजै'' के आभ्यंतर संकल्प में जाग्रत हो उठती है। शास्त्र निर्देश करने लगता हैं ''शब्द ब्रह्म में निष्णात होने पर परब्रह्म की उपलब्धि होती है। समग्र विश्व शब्द से उद्भूत है एवं शब्द में ही विद्यृत है। शब्देष्वेवाश्रित शक्ति र्विश्वास्यास्य निंबधनी जो शब्द में निष्णात हो जाता है– वह परब्रह्म को अनुभव कर लेता है। यहाँ निष्णात का अर्थ– शब्द साधना से ही है।''शब्द ब्रह्माणि निष्णातः परं ब्रह्मधिगच्छति।''

यह वाक् ही परं पद हैं।''वाक् ही विश्व का उद्गम है– संधारण है– और समापन है। यह परब्रह्म का ही स्वरूप है।''तस्याः वाचः परं पदम'' और ''वागेव विश्वाभुवनानि जज्ञे वाच इत्सर्वंभमृतं यच्च मत्यर्म''। इस वाक् की विस्तृत विवेचना परा पश्यंती मध्यमा और वैखरी के माध्यम से की गई है। वैखरी से परा तक पहुँचने की साधना ही शब्द साधना है। शब्द का आधार वर्ण और अक्षर है। शंकर के डमरू निनाद से उत्पन्न ध्वनियों के मूल में अक्षर आधार है। अर्थात् ध्वनि का निराकार स्वरूप ही साकार अक्षर है यह रूपक स्पष्ट करता है कि वाक् प्रणाली उसी शिव–तत्व को निष्पन्ति हैं जो बिन्दु रूप है यह मूल नाद का वाक् बन जाना है इसमें अकारादि अक्षर व्यक्त होने लगते है। इन्ही से शब्द की संछारना होती है। भ. म. गोपीनाथ जी ने इसे जो प्रतीकार्थ दिया वह दृष्टव्य हैं'' ह का व्यंजक अ कार है। यह नाद के सिर के रूप में कल्पित है। इस आकार के साथ योग होने पर उकार अद्यः ऊर्ध्व संचारक होने चरण रूप में कल्पित होता है। उकार का योग होने पर बिन्दु आदि प्रमेय के प्राकट्य का सूत्रपात होता है। यह अनुस्वार या मकार मात्रा में ही होता है। इस प्रकार अ उ म रूप में अथवा प्रणव में इस उच्चारण की उपलब्धि संभव होती है– यही वर्ण का उचार है।

इस रूप में ओंकार को नाद का प्रतीकत्व प्रदान किया गया। क्षत् रज् तम् के सामंजस्य के कारण सृष्टि प्रारंभ होने का कारण निष्क्रिय ब्रह्म का सक्रिय होना है। क्रियाशीलता के साथ 'नाद' का उद्भव अनिवार्य है। यह सृष्टि के आरंभ से अंत तक विद्यमान रहता है। समकालीन वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर भी यह निष्कर्ष अब तक निकाला गया है कि महाविस्फोट से उत्पन्न ध्वनि ही ओम् थी, जो आज भी सृष्टि–स्पंदनों में विद्यमान और ये सतत है।

ओम् का उच्चारण केन्द्र मूलाधार चक्र है– यहीं से इस प्रणव नाद का उच्चारण होता है। इस रूप में ओम् परा वाक् से निस्रत है। यह वाक् के संपूर्ण चरणों को पार कर बैखरी तक आता है। इसे बैखरी प्रकट करती है। इस तरह ओम् में वाक् के परा, पश्यंती मध्यमा और बैखरी का सांगोपांग समाया हुआ है। ओम् संपूर्ण वाक् सृष्टि है। इस संपूर्णता में समस्त स्वर–व्यंजनों का उच्चारित रूप समाहित है। इसी आधार पर ओम् 'नाद ब्रह्म' के प्रतीकत्व को वहन करता है। 'ओमिति ब्रह्म ओम् इतीदम् सर्वत्र'। तैतिरीयोपनिषद का यह उल्लेख स्पष्ट करता है

कि ओम् ही ब्रह्म हुआ और इसका अस्तित्व सर्वत्र विद्यमान है। यद्यपि बिन्दु के बाद नाद रूप में ओम् को अनुभूति की सत्ता को स्वीकार कर नाद ब्रह्म कहा गया है किंतु यह ब्रह्म तत्व अनादि माना गया है। यदि विज्ञान के इस तथ्य को स्वीकार कर लिया जाए कि ध्वनि तत्व कभी नष्ट नहीं होता है तो नाद का अस्तित्व सतत अस्तित्व में है और सृष्टि पूर्व भी बिन्दु के अंतगर्भ में समाया था। यही महाविस्फोट के साथ अपने वाक् स्वरूप में न केवल ध्वनित हुआ, बल्कि प्रकाशित भी हुआ। वाक् स्वयं प्रकाश है। कठोपनिषद् के अनुसार आत्मा को अधर अरणि और औंकार को उत्तर अरणि बनाकर मंथन रूप अभ्यास करने से दिव्य ज्ञान रूप ज्योति का आविर्भाव होता है। इसका सामान्य अनुभव यही हुआ कि वाक् में निहित ज्ञान ही उसका प्रकाश है और इस ज्ञान अर्थात प्रकाश का निलय भी ओम्कार ही है।

ओम् में अ उ म की विद्यमानता सर्वाक्षरों की सान्निधि प्रकट करती है। इसमें स्वर और व्यंजन का समाहन तो है ही इनकी उच्चरित प्रकिया का भी समावेश इस रहस्यमय 'प्रणव' में छिपा हुआ है। अ कार को अक्षर, उ कार को स्वरित और म कार को प्लुत माना जाता है। यह त्रिक् भू: लोक, भुव: लोक तथा स्व: लोक का बोधक है। उसका मस्तक स्वर्ग है मात्रापद रुद्रलोक है तथा मात्राहीन शिव लोक है– ऐसा वायुपुराण में विवेचित है–

'ओंकारस्तु त्रयो लोका: शिरस्तस्य त्रिविष्टपम्
भुवानानन्तं च तत्सर्वं ब्रह्मं तत्पदमुच्यते
मात्रा पदं रुद्रलोको ह्यमात्रास्तु शिवं परम्।।'

ब्रह्मपुराण में इस त्रिक् का विवेचन विस्तार और अधिक बाह्य वितान को व्यापृत कर लेता है।

'त्रयो लोकास्भयो, वेदास्यैलोक्यं पावक त्रय:
भैकाष्यं त्रीणि कर्माणि त्रयो वर्णस्त्रयो गुणा:।।'

तीन लोक, तीन वेद, तीन अग्नि, तीन काल, तीन कर्म और तीन गुण का अवबोधन ओम् के तीन अक्षरों में प्रतीक कहे गये हैं।

ओम् का अंलर्भावन स्वास्तिक में भी है। हमारी वाणी में स्वर और व्यंजन का प्रभाग आधार ही वर्णमाला का निर्धारक है। मूल स्वर के रूप में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ हैं। अन्य स्वर इनको मिलाकर ही बनते है। स्वास्तिक इस स्वरों का प्रतीक है– यही आधार इसे नाद ब्रह्म के प्रतीक के रूप में प्रकट करता है। स्वास्तिक का संबंध सूर्य से भी है। प्रकाश के प्रतीक ही नहीं प्रकाश के महिमामय स्त्रोत के रूप में सूर्य के गोलक को ही स्वास्तिक का आधार बनाकर स्वास्तिक को प्रकाश ऊर्जा से परिपूर्ण किया गया है। ओम् की लिपि रचना से ही स्वास्तिक का संबंध है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण स्वास्तिक भी अक्षर ब्रह्म का प्रतीक है। ओम की आकृति से निष्कृत देव मूर्तियों में गणेश और हनुमान को अनुभव किया जा सकता है– यह ओम् का मंगल विधान है, तथा उसमें निहित शक्ति का आकृति रूप में प्रकटीकरण है। अक्षरों में ओम् को ब्रह्म के रूप में निरूपित करते हुए गीता में कहा गया है, 'ओमित्यवाक्षरं ब्रह्म'। ओम् ही अक्षर ब्रह्म है।

यह 'अक्षर ब्रह्म' अविनाशी है– जबकि 'क्षर' सृष्टि क्षरित होती हुई नष्ट हो जाती है। इसे गीता में स्पष्ट किया गया है। 'द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च'। इस रूप में अक्षर आदि अनंत और अद्वितीय है। उसमें संपूर्ण सृष्टि निहित है– उसकी ऊर्जा ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, संचालन और समापन का आधार है।

अक्षरों का समूह 'शब्द' है और शब्दों का व्यवस्थित समूह भाषा है। शब्द में अनंत शक्तियाँ निहित है। शब्द का संसार व्यापक है। शब्द के सहारे परब्रह्म को पाया जा सकता है। ऐसा इसलिए कि परब्रह्म स्व प्रकाशित है– भाषा इसी प्रकाश की झलक है। भाषा के सहारे ही सृष्टि के बाह्याभ्यांतर को जाना जा सकता है और अपने आप को भी। यह जानना ही परब्रह्म का अनुभव है, अक्षर पर आधारित भाषा का लोक अव्यय है। ध्वनि के अर्थ

संवदेनों मे चिति की क्रियाशीलता समाई है। यही कारण है कि भाषा अपने अर्थ संवेदनों में विराट से संवाद कराती है। संत तुलसीदास ने 'गिरा अरथ जल वीचि रम' कह कर शब्द और अर्थ के अभेद को बताया है। हम शब्द के द्वार से झाँक कर अर्थ के लीला विलास से जुड़ते हैं। 'शब्द ज्ञान अत्यंत निपुन भव पार न पावै कोई' शब्द की अपरम्पार शक्ति संगीत, कला के विभिन्न रूप जैसे चित्र नृत्य, नाटक स्थापत्य आदि में अर्थ की मूर्तिमती प्रतिष्ठा होती है– यह शब्द का कलाओं में रूपांतरण है। योग साधना और भक्ति के क्षेत्र में शब्द ही साधना का आधार है। इस रूप में 'भासयंती जगत, भाषा, नत्वा भाषा तमव्ययम्।' की शरण में जाना पड़ता है। जप, अजपाजप, सुरति–निरति का आधार शब्द है। यह सब 'अक्षर ब्रह्म' का ही पसारा है। वही नाना रूपों में स्पष्ट होता रहता है।

'कला समय' के इस अंक को संपादित करने के लिए जब मुझ से श्री भँवरलाल श्रीवास ने कहा तब मैने उनसे इस कार्य हेतु असमर्थता जतायी किंतु श्रीवास जी मानने वाले तो है ही नहीं, वे जो निश्चय कर लेते है उसे कर ही डालते है। इस अंक के पूर्व 'नाद ब्रह्म' पर 'कला समय' ने अपना विशेषांक प्रकाशित किया था– उसी क्रम में यह 'अक्षर ब्रह्म' अंक है। दोनों विषय गूढ़ है। इनके लिए लिखना और सामग्री तैयार करना कठिन तो है ही, किंतु लेखकों ने गहरे डूबकर लिखा– वे हमारे आदरणीय हैं। 'अक्षर ब्रह्म' पर विचार करना और सामग्री जुटाना फिर उसे लिपिबद्ध करना जटिल कार्य है। किंतु हमारे विद्वान लेखकों ने परिश्रम पूर्वक यह कार्य किया। हम उनके आभारी हैं। सबने 'अक्षर ब्रह्म' की अवधारणा को अपनी–अपनी तरह से प्रस्तुत किया है। समेकित रूप में हम इस निगूढ़ विषय को इस अंक के माध्यम से किंचित ही समझ सके तो यह हमारे इस उपक्रम की सार्थकता होगी।

–डॉ. श्यामसुंदर दुबे

■

संपादकीय

अक्षर और ब्रह्म

'ब्रह्म ग्यान बिन ध्यान बिन हिरदौ सूध न होई ।
ऐकहि ब्रह्म सकल में व्यापिक और ने दुतिया कोई ।।'

– संत कबीरदास

भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद में अद्‌भुत रूप की स्मृति में अक्षर और ब्रह्म दोनों शब्द भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों ही स्वरूपों के वाचक हैं तथा भगवान का नाम 'ॐ' है उसे ही 'अक्षर और ब्रह्म' कहते है। भगवान ने गीता के आठवें अध्याय में परम अक्षर ब्रह्म है, यहाँ उसी परब्रह्म परमात्मा का लक्ष्य है। भगवान ने कहा कि शब्दों में एक अक्षर अर्थात ओंकार हूँ। जो अव्यक्त 'अक्षर' इस नाम से कहा गया है, उसी अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते भगवान कहते है वह मेरा परम धाम है। मैं अक्षरों में अकार हूँ, समस्त वाणी अकार है। इस कारणों से अकार सब वर्णों में श्रेष्ठ है। अर्जुन ने ग्यारहवें अध्याय में कहाँ है कि आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात परब्रह्म परमात्मा है, जो सत् असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात सच्चिदानंद घन ब्रह्म है, वह आप ही है। जिसका कभी किसी भी कारण से विनाश न हो, उसे अक्षर कहा है। संसार वृक्ष के नाम से क्षर पुरूष का वर्णन किया है। जबकि उसमें जीवरूप अक्षर का स्वरूप बतलाया है। उसी जीवात्मा को भगवान ने अपना सनातन अंश का भाव दिखलाया है।

''अहं ब्रह्मास्मि'' मैं ब्रह्म हूँ गीता में जिस महात्मा अर्जुन के लिये भगवान ने स्वयं अपने श्री मुख से गीता का दिव्य उपदेश दिया, उनकी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है। भगवान ने गीता में यह भी कहा है कि वर्तमान शरीरों की उत्पत्ति के पहले भी हम सब थे और पीछे भी रहेंगे। शरीरों के नाश से आत्मा का नाश नहीं होता क्योंकि आत्मा का शरीर से कोई संबंध नहीं है। अंत:करण और इंद्रियों के सहित समस्त शरीर नाशवान है। भगवान ने कहा है आत्मा न तो किसी को मारती है और न किसी के द्वारा मारी जाती है; आत्मा नित्य और अविनाशी है– उसका कभी नाश नहीं हो सकता इसलिए वह अक्षर है।

'कला समय' के इस प्रतिष्ठापूर्ण 'अक्षर ब्रह्म' विशेषांक के अतिथि संपादक वरिष्ठ ललित निबंधकार, लोक–मानस के मर्मज्ञ विद्वान वरिष्ठ साहित्यकार आदरणीय डॉ. श्यामसुंदर दुबे जी जिन्होंने अपना कीमती समय देकर 'अक्षर ब्रह्म' विशेषांक को एक महत्वपूर्ण अंक बनाने में अपना योगदान दिया हम डॉ. दुबेजी के प्रति हम कृतज्ञ है वे 'कला समय' के सम्मानित संरक्षक भी है। उनका सहयोग और मार्गदर्शन हमेशा पिता तुल्य मिलता रहता है। हम उनके हृदय से आभारी है।

'कला समय' की विशेषांको की श्रृंखला में 'नाद ब्रह्म' और प्रस्तुत अंक 'अक्षर ब्रह्म' जैसे गूढ़ विषयों पर विशेषांक निकालने का यह उपक्रम विद्वान लेखकों के रचनात्मक सहयोग से संभव हो पाया है। हम उनके प्रति भी कृतज्ञ है।

आशा है यह अंक भी पाठकों को पसंद आयेगा। हमें आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतिक्षा रहेगी।

।। शुभमस्तु ।।

– भँवरलाल श्रीवास

आलेख

अक्षर ब्रह्म: भारतीय कला की अस्मिता का मर्म

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

अक्षर की आधारशिला पर ही सृजन की भव्य अट्टालिका आकार लेती है। अ, से ही आरंभ विकसित होता है और स्वयं सृष्टा, भगवान श्रीकृष्ण अपने आपको 'अ' में प्रतिष्ठित करते हैं, साथ ही वे स्वयं को ब्रह्म के रूप में भी घोषित करते हैं।

गीता के 8वें अध्याय में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि ब्रह्म शब्द से हमें क्या समझना चाहिए, अध्यात्म से आपका क्या अभिप्राय है, कर्म से आपका क्या भाव है, अधिभूत का क्या तात्पर्य है और अधियज्ञ शब्द से हमें क्या लेना चाहिए और वह देह में कैसे है ? तब कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि परम अक्षर अर्थात् निर्गुण-निराकार परमात्मा को ब्रह्म कहते हैं। जीव को जो पराप्रकृति के रूप में है, अध्यात्म कहते हैं और मेरा संकल्प जिसके कारण प्राणियों की सृष्टि होती है वह कर्म कहा जाता है। जो सृष्टि नाशवान है वह अधिभूत है, हिरण्यगर्भ ब्रह्मा अधिदेव हैं और मैं इस मनुष्य शरीर में अंतर्यामी रूप में 'अधियज्ञ' हूं।

इस तरह कृष्ण यह समझाते हैं कि एक ही तत्व अलग-अलग स्वरूपों में भले दिखे लेकिन वास्तव में वह एक ही होता है और इन सबका भी अलग-अलग अभिज्ञान भले किया जाए लेकिन ये अपनी सत्ता में एकरूप हैं।

गीता के अध्याय 8 में जब अक्षर ब्रह्म योग को भगवान श्रीकृष्ण समझाते हैं तब वे कहते हैं कि ब्रह्म परम अविनाशी सत्ता है और यह परम अविनाशी सत्ता सर्वोपरि है। यह ब्रह्म उस परमेश्वर के रूप में है जो सभी सत्ताओं से परे है, सर्वव्यापक है और सभी प्राणी उसके अंदर रहते हैं तथा उसे केवल भक्ति के माध्यम से ही जाना जा सकता है। गीता के 8वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि परम अक्षर ब्रह्म है और यही परम अक्षर वासुदेव हैं।

भगवद् गीता के अध्याय 10 के 25वें श्लोक में वे कहते हैं कि शब्दों में एक अक्षर अर्थात मैं ओंकार हूं, श्लोक 33 में वे कहते हैं कि मैं अक्षरों में अकार हूं तथा श्लोक 32 में उनका कथन है कि मैं विद्याओं में अध्यात्म विद्या अर्थात ब्रह्मविद्या हूं। इस प्रकार सृष्टा अपनी सत्ता को अक्षर में अवस्थित घोषित करते हैं। यह उनकी ब्रह्मविद्या है। लेकिन साथ ही वे अक्षर के रूप में ओंकार भी स्वयं को कहते हैं, यह ओंकार नादब्रह्म है। यहां यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि हमारे यहां के बारह ज्योतिर्लिंगों में ओंकारेश्वर का ज्योतिर्लिंग नाद ज्योतिर्लिंग माना जाता है और वह इसलिए कि नर्मदा इस ज्योतिर्लिंग की परिक्रमा ऊँ के रूप में करती है और इस रूप में जब वह ज्योतिर्लिंग के चारों ओर प्रवाहित होती हैं तो ऊँ की ध्वनि इस प्रवाह से प्रस्फुटित होती है। इस प्रकार अक्षर ब्रह्म की अवधारणा के मूल में स्वयं सृष्टा हैं और उनका स्वरूप नादब्रह्म का स्वरूप है। भारतीय दर्शन और चिंतन की यह अवधारणा आगम और निगम दोनों धाराओं में उपस्थित दिखाई देती है।

जैन दर्शन का स्वर है,
जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ

अर्थात् जो एक को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है वह एक को भी जानता है। इस स्वर में भी ब्रह्म की ही अवधारणा प्रतिबिम्बित होती है। इसी प्रकार जैन चिंतक आचार्य कुंदकुंद जब अकर्ता भाव की व्याख्या करते हैं, वे तब अपने ग्रंथ 'समयसार' में उस तत्व को समझाते हैं जो समग्र है और पुद्गल से परे है। बौद्ध दर्शन में भी जब बुद्ध कहते हैं, '**अप्पो दीप भव**' अर्थात् अपने दीपक स्वयं बनो तब उनकी इस देशना में '**अहं ब्रह्मास्मि**' की अनुगूंज सुनाई देती है।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि हमारे वेदांत और दर्शन में हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका सबसे पहले उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। ऋग्वेद का यह सुप्रसिद्ध श्लोक है,

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

– सूक्त ऋग्वेद –10–121–1

अर्थात् सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का जो जगत आधार है और होगा उसका आधार भी परमात्मा जगत की उत्पत्ति के पूर्व था जिसने

पृथ्वी और सूर्य तथा तारों का सृजन किया उस देव की हम प्रेम भक्ति किया करें।

इस श्लोक में हिरण्यगर्भ का अर्थ ईश्वर से है अर्थात् वह गर्भ जहां हर कोई वास करता हो। इस शब्द का प्रयोग विद्वान, चैतन्य ज्ञान के रूप में भी करते हैं। यह हिरण्यगर्भ एक तेजस्वी अवस्था है जो पूर्ण शुद्ध ज्ञान की अवस्था मानी जाती है। स्वर्ण की आभा को पूर्ण शुद्ध ज्ञान का प्रतीक भी माना गया है। इसलिए हिरण्यगर्भ ब्रह्म का स्वरूप है।

यहां यह भी एक रोचक तथ्य है कि इस हिरण्यगर्भ ने हमारे मध्यकालीन लघुचित्रों के चितेरों को भी आकृष्ट किया तथा गुलेर शैली के महान चित्रकार मानकू ने एक सुंदर अंकन अठारहवीं सदी में हिरण्यगर्भ का किया जो अभी भारत कला भवन, बनारस में संरक्षित है तथा जिसे स्व. रायकृष्णदासजी की स्मृति में प्रकाशित ग्रंथ 'छवि-3' के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित भी किया गया है।

यह ब्रह्म हमारे दार्शनिक चिंतकों के मानस में सदैव समाया रहा। इसे शंकराचार्य ने बड़े सम्प्रेषणीय ढंग से समझाया। उन्होंने जगत को भी समझाया और ब्रह्म को भी समझाया। उन्होंने कहा कि ब्रह्म त्रिकाल बाधित, नित्य, चैतन्यस्वरूप और आनन्द स्वरूप है तथा इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का आविर्भाव ब्रह्म से ही होता है। उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि जीव अज्ञान के कारण ही ब्रह्म को नहीं जान पाता, जबकि ब्रह्म तो उसके अंतर में ही है।

शंकराचार्य अद्भुत हैं। वे सगुण और निर्गुण दोनों की आराधना करते हैं और इन दोनों में ही वे सृजन की खोज कर लेते हैं। वे कहते हैं कि ज्ञान की अद्वैत भूमि पर जो परमात्मा निर्गुण, निराकार ब्रह्म है वही द्वैत की भूमि पर साकार होता है। उन्होंने जहां एक ओर अमूर्त ब्रह्म की अवधारणा स्थापित की तो वहीं दूसरी ओर शिव, पार्वती, गणेश तथा विष्णु आदि पर श्लोक रचकर उनकी वंदना की। शंकराचार्य ने 'सौंदर्य लहरी' और 'विवेक चूड़ामणि' जैसे ग्रंथ लिखे जिनमें सगुणोपासना की गई है।

हमारी परम्परा में उस ब्रह्म की प्रतिष्ठा की गई है जो पूर्ण है। वेद कहते हैं,

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते

यह ब्रह्म सोलह कलाओं से युक्त है और इसका सीधा संबंध उस रस से है जो अलौकिक आनंद का पर्याय है, ब्रह्मानंद सहोदर है तथा जो केवल सहृदय को प्राप्त होता है।

इन सोलह कलाओं के नाम अलग-अलग ग्रंथों में अलग-अलग मिलते हैं। ये हैं,

1. अन्नमया, 2. प्राणमया, 3. मनोमया, 4. विज्ञानमया, 5. आनंदमया, 6. अतिशयिनी, 7. विपरिनाभिमी, 8. संक्रमिनी, 9. प्रभवि, 10. कुंथिनी, 11. विकासिनी, 12. मर्यदिनी, 13. सन्हालादिनी, 14. आह्लादिनी, 15. परिपूर्ण और 16. स्वरुपवस्थित।

1. श्री, 2. भू, 3. कीर्ति, 4. इला, 5. लीला, 6. कांति, 7. विद्या, 8. विमला, 9. उत्कर्शिनी, 10. ज्ञान, 11. क्रिया, 12. योग, 13. प्रहवि, 14. सत्य, 15. इसना और 16. अनुग्रह।

1. प्राण, 2. श्रधा, 3. आकाश, 4. वायु, 5. तेज, 6. जल, 7. पृथ्वी, 8. इन्द्रिय, 9. मन, 10. अन्न, 11. वीर्य, 12. तप, 13. मन्त्र, 14. कर्म, 15. लोक और 16. नाम।

इन कलाओं से वह ब्रह्म युक्त है जो हमारा सृष्टा है।

यदि इन कलाओं की व्यंजना पर विचार करें तो ज्ञात होगा कि सृजन की कोई ऐसी मुद्रा नहीं है जो इनकी व्यंजना में समाहित न हो। ऐसी कला के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि जहां कहीं मनुष्य चित्त में सौंदर्य के प्रति आकर्षण है, सौंदर्य रचना की प्रवृत्ति है, सौंदर्य के आस्वादन का रस है वहां महामाया का यह चिन्मय विलास का स्वरूप विद्यमान है जो चित्कला, आनंदकलिका, प्रेमरूपा, प्रियंकरी, कलानिधि, काव्यकला, रसज्ञा, रसशेवधि का है।

अक्षर ब्रह्म को लेकर जो चिंतन है वह चिंतन हमें पूर्णत्व की अनुभूति कराता है। ऐसे पूर्णत्व की जो सृजन का संतोष देता है। सृजन का संतोष ही अक्षर ब्रह्म का मर्म है। यदि अक्षर ब्रह्म को आत्मसात करना हो तो अपने आसपास की कला और लोक के मर्म से हम भिज्ञ होकर इसे आत्मसात कर सकते हैं। किसी अनुष्ठान में, रीति में, पूजा पद्धति में संलग्न होने की आवश्यकता ही नहीं है। यदि ब्रह्म की अनुभूति हमारे अंतर में स्वयं हो जाती है तो फिर इस ब्रह्म के कारण वह सर्जनात्मक ऊर्जा स्वमेव उत्पन्न होगी जो हमारे सृजन कर्म को आगे बढ़ाएगी और जीवन को कलात्मकता प्रदान करेगी। जीवन की कलात्मकता यदि प्राप्त हुई तो इसका आशय है कि हमने उस अक्षर ब्रह्म से साक्षात्कार कर लिया जिस अक्षर ब्रह्म का पर्याय रस है, सृजन है और कहीं इस रसात्मक सृजन के कारण उस संतुष्टि को पाना है जिसके आगे कोई अपेक्षा ही विद्यमान नहीं है।

भारतीय वांग्मय के महान सर्जक इसी रसात्मक सृजन के प्रतिमान व्यक्तित्व हैं। फिर चाहे वे कालिदास हों, भवभूति या बाणभट्ट।

कालिदास के सृजन की आत्मा यही अक्षर ब्रह्म है जो समग्रता और एक्य का पर्याय है। कालिदास ने मेघदूत में अपने इस

दर्शन का संकेत दिया है जिसे बड़े उत्कृष्ट रूप में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन शब्दों में व्यक्त कर दिया है, **'बिन्दु से लेकर पर्वत तक एक ही व्याकुल वेदना समुद्र की लहरों की तरह पछाड़ खा खाकर लौट रही है। एक तार को छुओ और सहस्त्रोतार झनझना उठते हैं। सब तार मिलकर पूर्ण संगीत के निर्माण का कार्य करते हैं। नरलोक से किन्नरलोक तक एक ही व्याकुल अभिलाष भाव उल्लसित हो रहा है। मिलन स्थिति बिन्दु है, विरह गतिवेग है दोनों के परस्पर आकर्षण से रूप की प्रतीति होती रहती है, विचार मूर्त आकार ग्रहण करते हैं, भावना सौंदर्य बनती है, विरह में सौभाग्य पनपता है, रूप निखरता है, मन निर्मल होता है, बुद्धि एकता का संधान पाती है।'**

इस अक्षर ब्रह्म से वह सौंदर्य भी जुड़ा हुआ है जो केवल आंखों का विषय नहीं है बल्कि चेतना के प्रत्येक स्तर पर जिसकी स्वीकृति है। जो वास्तव में चारु है। इस सौंदर्य के साथ वह असुंदर नहीं जुड़ा हुआ है जो हमारी जिजीविषा के प्रतिकूल है। यह सौंदर्य व्यक्ति को सहृदयता प्रदान करता है।

इस संदर्भ में यदि भारतीय कला के सौंदर्य पक्ष पर विचार करें तो यह ज्ञात होगा कि इस सौंदर्य के मूल में वह रस है जो अखंड होने का सार तत्व है। इस सौंदर्य में व्यष्टि का छंद समष्टि के छंद के साथ मिलकर चलता है और उस सुंदर को जन्म देता है। यह छंद शब्द में, रेखा में, गंध और वर्ण में सामंजस्य के भाव को ढूंढ लेता है जिसके कारण वाणी और अर्थ विश्व के सर्वस्व हो जाते हैं और कालिदास इसी को व्यक्त करते हुए कहते हैं,

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये,
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

अक्षर ब्रह्म वास्तव में समष्टि इच्छा का चेतन धर्म है। जब चेतना अपने धर्म में पूरी तरह व्यक्त हो जाती है तब वह अक्षर धर्म से स्वयं को एकाकार कर लेती है और यह एकाकार होना तब होता है जब पूर्ण समाधि की अवस्था प्राप्त हो। यह पूर्ण समाधि आंख मूंदकर समाधि लगाने वाली समाधि नहीं है। यह समाधि उस पवित्र एकाग्रता की है जिसमें मनुष्य विभिन्न गतिविधियों में संलग्न रहकर उन्हें सकारात्मक रूप से संपन्न करता है और यदि वह अपने इस कर्म को सम्पन्न करते पवित्र है तो उसकी समाधि कभी शिथिल नहीं हो सकती, क्योंकि समाधि का अर्थ ही एकाग्र होना है, अनावश्यक तत्वों से निवृत्ति पाना है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अक्षर ब्रह्म वास्तव में हमारी संपूर्ण सत्ता है जो हमारे सृष्टा की सत्ता ही है और यही अक्षर ब्रह्म न केवल हमारे भारतीय दर्शन की अस्मिता की आत्मा है अपितु हमारी कला का भी मर्म इसी में समाविष्ट है।

भारतीय कला इसी अक्षर ब्रह्म के कारण अपनी पहचान रचती है और अपने माध्यम से इस ब्रह्म की अखण्ड सत्ता का आख्यान करती है।

-लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो-: 9425092893

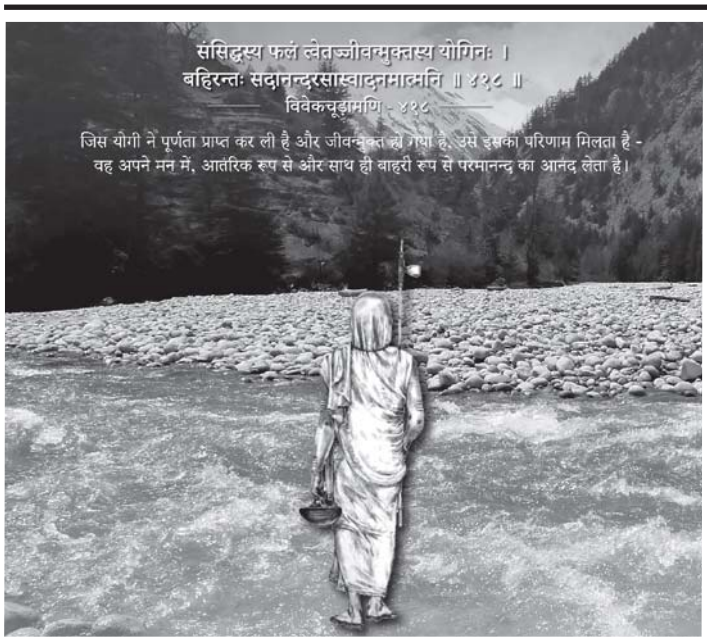

आलेख

काश्मीरीय शैवयोगिनी लल्लेश्वरी के वाखों में अक्षर ब्रह्म

डॉ. अद्वैतवादिनी कौल

नौमि चित्प्रतिभां देवीं परांभैरवयोगिनीम्।
मातृमानप्रमेयांशशूलाम्बुजकृतास्पदाम्।।

–तंत्रालोक 1:2

लल्लेश्वरी को कश्मीरी में ललद्यद अर्थात् ''बड़ी माँ लला'' के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह सम्बोधन उनके प्रति सर्वश्रेष्ठ आदर-भाव को प्रकट करता है। कश्मीर में ही मध्यकाल में जन्मी लल्लेश्वरी का लगाव प्रारम्भ से ही अध्यात्म की ओर रहा। कालान्तर में उन्होंने अपने ही कुल-गुरु श्री सिद्धमोल से, जो आचार्य अभिनवगुप्त की त्रिक-शैव परम्परा में दीक्षित थे, दीक्षा ग्रहण कर ली। लल्लेश्वरी ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों को काव्यात्मक पद्यों में मौखिक रूप से कश्मीरी लोक-भाषा में अभिव्यक्त किया। गहरी अर्थवत्ता से ओत-प्रोत उनके पद्य कालान्तर में 'लल्ल वाख' (लल्लेश्वरी के वाक्) के नाम से जन-जन की जिह्वा पर चढ गये। इतनी सदियों के पश्चात् भी लल्ल वाखों का जादू फ़ीका नहीं पड़ा है। अभी भी विद्वान एवं सामान्य सुधी जन इन वाख़ों के गूढार्थ को समझने के प्रयास में लगे हैं। भगवद्गीता की तरह ये वाख़ तत्व ज्ञान से परिपूर्ण निधि हैं, इन्हें टटोलने से अनन्त ज्ञान के भण्डार खुल जाते हैं। परमयोगिनी पदवी को प्राप्त लल्लेश्वरी कश्मीरी काव्यात्मक लोक-साहित्य की आद्य कवियित्री भी मानी जाती हैं।

शिवाद्वय के अनुसार अक्षर ब्रह्म ही परम शिव हैं, क्योंकि ब्रह्म का चित्-अंश ही अक्षर ब्रह्म है और यह चित्स्वरूप है। चित् शक्ति इसकी प्रकृति है तथा इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया इसी के धर्म हैं। इच्छामयी के रूप में ही इसका वर्णन किया जाता है। यह अक्षर पुरुष के हृदय -रूप कमल की कर्णिका में, अर्थात् हृदयाकाश में निवास करती है। तात्विक सृष्टि में ये ही शिव-शक्ति रूप में परिणत हुए हैं। यह पूरा विश्व शक्ति स्वरूप में बीज रूप में निहित रहता है। उसका ज्ञान वाक् के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। ''स्पन्द तत्त्व वाक् की उस परम अवस्था से एकात्म किया जाता है जो परमेश्वर के स्वरूप प्रकाश का प्रत्यामर्शनमात्र है। इस परावाक् का ही विवर्तन पश्यन्ती, मध्यमा व वैखरी रूप से होता है (स्पन्दकारिका विवरण, रामकण्ठ, पृष्ठ 151-52 ; देखें - काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ, नवजीवन रस्तोगी, पृष्ठ 65 पा. टि. 25)।

कठोपनिषद् (1:2:15-17) के अनुसार ओम् ऐसा अक्षर है, सारे वेद जिस पद का प्रतिपादन करते हैं और सारे तप जिसकी घोषणा करते हैं, साधकगण जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही परब्रह्म है। इसीलिए इसी अक्षर को जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, उसे वही मिल जाता है। अत: ''ॐकार ही श्रेष्ठ आलम्बन है, ॐकार सर्वोच्च (अन्तिम) आलम्बन अथवा आश्रय है। इस आलम्बन को जानकर मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमामय होता है।'' श्रीमद्भगवद्गीता (8:3,11-13) में इसी को विस्तार से कहा गया है।

पातञ्जल योगसूत्र ''तस्य वाचक'' प्रणव:'' (1:27) में प्रणव अर्थात् ॐकार को ईश्वर का वाचक कहा गया है। ॐ - अ उ एवं म - इन तीन अक्षरों से मिलकर बना है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से ॐ का नाद निसृत होता रहता है और मनुष्य के प्रत्येक श्वास से ॐ की ही ध्वनि निकलती है। इस प्रकार यही ॐ मनुष्य के श्वास की गति को नियंत्रित करता है। अत्यन्त पवित्र एवं शक्ति-सम्पन्न आदि ध्वनि होने के कारण प्रत्येक मन्त्र के आदि में ॐ को जोडा जाता है। अपितु मन्त्र के रूप में ॐ ही पर्याप्त है। इस तथ्य को लल्लेश्वरी ने शैवयोग के माध्यम से नीचे उद्धृत वाख़ में प्रकट किया है:

''अकुय् ओंकार युस् नाभि दरे
कम्बुय् ब्रह्माण्डस् सुम् गरे।
अकुय मन्त्र् युस् च्यतस् करे
तस सास् मन्त्र् क्याह् ज़न् करे।।''

अर्थात् -

''एक ओंकार जो नाभि धरे
आब्रह्माण्ड कुम्भक मेल करे।
एक वही मन्त्र जो चित्त में धरे
उसका हज़ार मन्त्र भला क्या करें ।।'' (अनु. अ. कौल)

इस वाख में जो ओंकार को नाभि में धरने का संकेत किया गया है,

नीचे उद्दत आचार्य गोपीनाथ कविराज के वाक्यांशों में उसकी स्पष्ट व्याख्या प्राप्त है:

'यह परावाक् चिन्मय और परम अव्यक्त है। इस भूमि में व्यष्टि देवता का प्रकाश नहीं है -- समष्टि देवता या ईश्वर चैतन्य में समस्त वाक् की परिसमाप्ति हुई है। यह वाक् सृष्टि के ऊर्ध्वतम शिखर से निम्नतम भूमि तक समान रूप से व्याप्त है। यह ऊर्ध्व सहस्रार की सबसे ऊँची भूमि से उठकर मूलाधार तक व्याप्त है, यह जैसे कहा जा सकता है, वैसे ही यह भी कहा जा सकता है कि यह मूलाधार के नीचे स्थित महाकारण समुद्र में प्रकाशमान अध:सहस्रार से उठकर ऊर्ध्व सहस्रार के द्वादशदल में वाग्भव कूट तक व्याप्त है। कोई -कोई ऐसा भी कहते हैं। वास्तव में ऊर्ध्व सहस्रार के ही भिन्न -भिन्न स्तर में इन तीनों वाक् का उद्भव है -- उनमें से एक का (मध्यमा) विस्तार नीचे की ओर हृदय तक, दूसरे का (पश्यन्ती) नाभि या उससे कुछ नीचे तक और तीसरे का (परा) मूलाधार तक। अध:-ऊर्ध्व, सर्वदेशव्यापी सत् रूप चैतन्य ही परावाक् का तात्पर्य है। इसी का नाम नित्य अक्षर है।

इस अवस्था के बाद शब्द की और गति नहीं। मध्यमा वाक् से इस अक्षर -ब्रह्म तक योगी की गति शब्द-ब्रह्म के अन्तर्गत है।

अक्षर -ब्रह्म का भेद होने से ही परब्रह्म का द्वार खुल जाता है। परब्रह्म शब्दातीत है। इसीलिए शास्त्रकार ने कहा है - 'शब्द-ब्रह्मणि निष्णात: पर ब्रह्माधि गच्छति।'

जितनी दूर तक शब्द का विकास है, उतनी ही दूर तक आकाश कल्पित होता है। जो नित्य अक्षर अथवा सत् है, उसी का नाम परमाकाश है, जिसे विभिन्न प्रस्थानों में और वैदिक मन्त्रादि में भी परम व्योम के नाम से निर्देश किया गया है। जो शब्दातीत अवस्था है, वहाँ आकाश नहीं है - वहाँ शक्ति और शिव, दो तत्व अविभाज्य युग्मरूप में विराजित हैं। युगलभाव, यामलभाव अथवा युगनद्धभाव शिव-शक्ति के इस अविनाभाव की ही सूचना करते हैं। समना और उन्मना-शक्ति -- दोनों ही ब्रह्मशक्ति है -- समना शक्ति तत्व को आश्रय करके परब्रह्म की इच्छा के अनुसार सृष्टि का विस्तार करती है और उन्मना शिव-तत्व को आश्रय करके परब्रह्म के विमर्शहीन विश्वातीत दिशा की ओर उन्मुख है। शिव-शक्ति अभिन्न हैं, इसलिए किसी को छोड़कर कोई नहीं रह सकते। इसके बाद और तत्व नहीं है। वहीं तत्वातीत अद्वैत स्थिति है।''

(देखें: तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, गोपीनाथ कविराज, पृष्ठ 344-45)

कुम्भक से ब्रह्माण्ड तक मेल करने को लल्लेश्वरी ने सेतु बनाने के रूपक के द्वारा अभिव्यक्त किया है ''सुम गरे'' कहकर। यहाँ मूलाधार से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सेतु बनाने का निदर्शन है। इसी अभिव्यक्ति को कविराज जी के द्वारा निम्नलिखित वाक्यांश में व्याख्यायित किया गया है :

''वैखरी भूमि में लक्ष्य रहता है बाहर की ओर और नीचे की ओर - अर्थात् मूलाधार की ओर। लेकिन मध्यमा भूमि में वह लक्ष्य बदलता है -- उस समय लक्ष्य बाहर या नीचे की ओर न होकर अन्तर या ऊपर की ओर आकृष्ट होता है। मूलाधार के बदले लक्ष्य सहस्रार या गुरुधाम की ओर अथवा अखण्ड नित्य सत्ता की ओर स्थापित होता है। विषयासक्ति-वर्जित चित्त उस समय शुद्ध होता है। भावना आदि दूसरे उपाय से भी मध्यमा भूमि में उत्थान हो सकता है, मगर अन्य साधना से जप-साधना का सौकर्य अधिक है। 'मध्यमा' शब्द का अर्थ है -- जो दो छोरों के बीच की हो -- एक छोर पर दिव्य पश्यन्ती वाक् और दूसरे छोर पर पाशव वैखरी वाक् -- इन दोनों के बीच संयोजक सेतु-स्वरूप मध्यमा वाक् क्रियाशील है। इसलिए पशुभाव से दिव्य भाव में आने के लिए मध्य पथ के इस सेतु का सहारा लेना आवश्यक है।'' (देखें: तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, गोपीनाथ कविराज, पृष्ठ 343)

अक्षर ब्रह्म से सम्बन्धित लल्लेश्वरी के एक और महत्वपूर्ण वाख़ को यहाँ उद्धृत करना अत्यन्त आवश्यक है। वाख़ है:

''व्वथ् रैण्या अर्च्चुन् सख़र्
अथि अल पल वखुर् ह्यथ्।
योद्र वनय् ज़ानख् परमपद्
अक्षर् हिशीखर् क्षिशीखर् ह्यथ् ।।''

अर्थात् -

''उठो रानी अर्चना के लिए
हाथों में शुद्ध आहुति लिये।
जो कहूं तो जानो परमपद
अक्षर है वह ऐसे (ह अक्षर से) भी वैसे (क्ष अक्षर से)भी।।''
(अनु. अ. कौल)

लल्लेश्वरी के इस वाख़ के पहले पाद में 'व्वथ रैण्या' में 'रैण्या' शब्द का अर्थ रानी है जिससे तात्पर्य है जो राजा की रानी हैं अर्थात् राजा यहां शिव ही हो सकते हैं तथा शिव की रानी शक्ति। नारी, शक्ति स्वरूपा हैं और यहां लल्ला स्वयं को लक्ष्य करके कह रही हैं - 'उठो रानी अर्चना के लिए'। कश्मीरी भाषा में इस प्रकार की अभिव्यक्ति अभी भी प्राप्त होती है, जब किसी कार्य को करने की अनिवार्यता हो ।

दूसरे पाद में प्रयुक्त शब्द 'अलपल' का प्रयोग भी कश्मीरी भाषा में इस समय होता है 'सब मिलाकर' के अर्थ में। इस प्रकार सार रूप में प्रयुक्त 'अलपल' के साथ जो अगला शब्द 'वखुर' है उसका अर्थ 'a cake offered in sacrifice' (Grierson Dic. p. 1109) मिलता है। यहां इस शब्द से तात्पर्य हो सकता है 'किसी गणीभूत वस्तु से'। अत: पूरे पाद 'अथि अलपल वखुर ह्यथ' का अर्थ निकाल सकते हैं – '(अर्चना के लिए) शुद्ध आहुति लेकर'। क्योंकि लल्लेश्वरी का मूल आशय है ॐ कार मन्त्र के जाप से परमतत्व के साथ एकाकार होने का। तीसरे पाद में लल्ला (अपने-आप को ही लक्ष्य करके) कहतीं हैं– 'यदि बोलूं तुम्हें (मन्त्र-जाप के द्वारा) परमपद की प्रत्यभिज्ञा होगी, (तो उससे जिस अनुभव की प्राप्ति होगी, उसको अगले पाद में व्यक्त किया है)–'वह (परमपद) अक्षर है अर्थात् अविनाशी है, चाहे तुम 'ह' अक्षर से अर्चना करो या 'क्ष' अक्षर से' अर्थात् मन्त्र कोई भी हो लेकिन उस मन्त्र के साथ एकाकार होने से ही परम शिव से एकाकार का रहस्य खुल जाता है। इस पाद में लल्लेश्वरी के द्वारा प्रयुक्त 'हिशीखर' और 'क्षिशीखर' शब्दों का यहां क्रमश: 'ह अक्षर' और 'क्ष अक्षर' से तात्पर्य लेने का रहस्य तन्त्रों में निहित है, जिसका सार यहां प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है ।

कश्मीर के शैव तन्त्रों के अनुसार पृथ्वी इत्यादि से लेकर सदाशिव पर्यन्त प्रकाशमान शिव की पराशक्ति का प्रसार शाम्भवोपाय के द्वारा मातृका वर्णों के रूप में अभिव्यञ्जित होता है। तान्त्रिक मन्त्र वर्णात्मक होते हैं। मन्त्रों के उच्चारण में साधक की एकाग्रता (concentration) और चेतना (onsciocusness) के साथ एकाकारता का विशेष महत्व है। आचार्य अभिनवगुप्त परात्रिशिका विवृत्ति (गुर्टू, पृष्ट 384) में मन्त्रों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं, ''मन्त्रा: वर्णभट्टारका: लौकिकपारमेश्वरादिरूपा: मनन-त्राण-रूपा: विकल्प-संविन्मया:'' अर्थात् – महिमामय वर्णों को मन्त्र कहते हैं, तथा (वर्णों की महिमा की व्याख्या में कहते हैं-) लौकिक एवं पारलौकिक, दोनों ही स्तरों पर वर्णों का प्रयोग किया जाता है; मनन करवाना और त्राण देना इनका वास्तविक रूप अर्थात् स्वभाव है; ये लौकिक एवं लोकोत्तर भूमिकाओं पर क्रमश: विकल्प और संवित्-शक्ति स्वरूप होते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमराज स्वच्छन्दतन्त्र की टीका उद्योत (11:13) में लिखते

हैं, ''मन्त्रोऽपि अन्तर्गुप्तभाषणात्मकपरपरामर्शसतत्त्वेन मननत्राणधर्मा परतत्त्वप्रात्युपाय परमेशात्मैव'' अर्थात् मन्त्र आन्तरिक गुप्तभाषण यानि जप-पूर्वक परम परामर्श तक पहुंचाते हुए परम तत्व की प्राप्ति के उपाय हैं। इस प्रकार मन्त्र स्वयं परमेश्वरात्मक ही होते हैं। शिवसूत्र (2:1) में साधक के चित्त को मन्त्र कहा गया है – ''चित्तं मन्त्र:''। इस सूत्र की व्याख्या में विमर्शिनीकार क्षेमराज लिखते हैं, '' मन्त्रदेवताविमर्शपरत्वेन प्राप्तसामरस्यमाराधकचित्तमेव मन्त्र: न तु विचित्रवर्णसंघट्टनामात्रम्।'' अर्थात् मन्त्र देवता के विमर्श में तत्पर और उस देवता से सामरस्य स्थापित कर लेने वाले आराधक का चित्त ही मन्त्र है, न कि वर्णों का विशिष्ट विन्यास।

क्योंकि ''चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसंकोचिनी चित्तम्।'' अर्थात् चित्त (देह में स्थित चेतना/individual consciousness), वैश्विक चित्ति (cosmic consciousness) का ही संकुचित रूप है – आचार्य क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदयम् के 5वें सूत्र में इस रहस्य को व्यक्त करते हैं। अभिनवगुप्त कहते हैं ''तदेव च पदं मन्त्र:'' अर्थात् पद और मन्त्र का ऐक्य है। पद बहिर्मुखता में स्थित रहता है और मन्त्र अन्तर्मुखी अवस्था है। निरन्तर उच्चारण के द्वारा पद अथवा वर्ण का ज्ञानात्मक अंश गौन हो जाता है। इस प्रकार वह साधक की चेतना के ही अंश के रूप में प्रतीत होने लगता है। यह मन्त्र का अन्तर्मुखी भाव है। 'अहम्' पद साधक की अन्त: स्थित चेतना का वाचक है और साथ ही 'अ' से लेकर 'ह' पर्यन्त वर्णमाला का द्योतक भी है। 'अ' अनुत्तर से प्रारम्भ होनेवाली पारमेश्वरी विसर्ग शक्ति 'ह' तक स्वयं को स्थूल रूपों में आभासित करतीं हैं, इसीलिए 'अहं परामर्श' को सम्पूर्ण विश्व का सूचक, प्रमाता से अभिन्न, परम मन्त्रवीर्य माना गया है – यह व्याख्या तन्त्रालोक की टीका में जयरथ ने इस प्रकार की है – ''तदेवमनुत्तरैव इयं पारमेश्वरी विसर्गशक्तिर्हकारपर्यन्तं स्थूलं रूपमाभास्य पुनरपि स्वस्वरूपाप्रच्यावादनुत्तरे स्वात्मन्येव विश्राम्यति, यदवद्योतनाय प्रत्याहृताशेषविश्व: प्रमात्रेकरूप: परमन्त्रवीर्यात्मा अयमहंपरामर्श:'' (तन्त्रालोक विवेक,3:222)।

आचार्य अभिनवगुप्त तन्त्रालोक (3:223)में लिखते हैं:'' आदिमान्त्यविहीनास्तु मन्त्रा: स्यु: शरदभ्रवत्'', अर्थात् 'अहं परामर्श' से रहित मन्त्र शरत्कालीन बादलों की तरह निष्फल होते हैं; और फिर आगे लिखते हैं (तन्त्रालोक, 3:225) ''श्लोकगाथादि यत्किञ्चदादिमान्त्ययुतं तत:। तस्माद्विदंस्तथा सर्वं मन्त्रत्वेनैव पश्यति।'' इसका अर्थ है कि 'अहंपरामर्श' से युक्त होने पर सामान्य श्लोक, गाथा इत्यादि भी मन्त्रस्वरूप होते हैं। अत: इस प्रकार जानते हुए सम्पूर्ण (वर्ण समुदाय) में मन्त्रत्व होता है। यही व्याख्या क्षेमराज के शिवसूत्र वार्त्तिक (1:20:8-11) में इस प्रकार से प्राप्त होती है:

'अकारादिक्षकारान्तशब्दराशिप्रथात्मनः।।
क्षित्यादिशिवपर्यन्ततत्त्वान्तःक्षोभकारिणः।।
मन्त्रवीर्यस्य सर्वेषां मन्त्राणां प्राणरूपिणः।।
पराहन्तापरामर्शमयस्यानुभवःस्फुटम्।।''

अर्थात् ''अकार से लेकर अन्त में क्षकार तक सम्पूर्ण शब्दराशि आत्म तत्व से युक्त होने से, क्षिति आदि से लेकर शिव पर्यन्त तत्वों में गति का कारण होने से; तथा मन्त्रवीर्य (अहं परामर्श) के सभी मन्त्रों का प्राणरूप होने के कारण; पराहन्ता का (अहं)परामर्श मय अनुभव स्पष्ट हो जाता है।''

क्षेमराज प्रत्यभिज्ञाहृदयम् में कहते हैं: ''अत एव अनुत्तराकुलस्वरूपात् अकारात् आरभ्य शक्तिस्फाररूपहकलापर्यन्तं यत् विश्वं प्रसृतं क्षकारस्य प्रसरशमनरूपत्वात् तत् अकार-हकाराभ्यामेव संपुटीकारयुक्त्या प्रत्याहारन्यायेन अन्तः स्वीकृतं सत्
अविभागवेदनात्मकबिन्दुरूपतया स्फुरितं अनुत्तर एव विश्राम्यति - इति शब्दराशिस्वरूप एव अयं अकृतको विमर्शः।''

अर्थात् ''इसलिए अनुत्तरा शक्ति, जिसका स्वरूप अकुल अर्थात् शिव है, उस शक्ति का स्फार यानि विस्तार अकार से आरम्भ होकर ह अक्षर पर्यन्त पूरे विश्व में फैला हुआ है। क्षकार शक्ति के प्रसार का प्रशान्त स्थान है [क्योंकि क्षकार के आगे कोई प्रसार नहीं है। ककार और शकार के संयोग से अर्थात् दोनों के मेल से क्षकार की सृष्टि होती है। अतः सभी मूल वर्गों को लेकर अर्थात् कवर्ग से लेकर स वर्ण पर्यन्त इस मातृका वर्ण (क्षकार)की स्थिति है ऐसा कहा गया है- ''योनि संयोगजः क्षकारः इति'' (तन्त्रसार, पृ. 16)]; वही अकार और हकार, जो संयोजन से (अच) प्रत्याहार बनता है, अन्तर्मुखी होकर बिन्दु रूपमें विश्रान्त अनुत्तरा शक्ति ही हैं। इस प्रकार स्वभावतः (अन्तः)विमर्श शब्दराशि स्वरूप है।''

इसी विमर्श शक्ति का आवाहन आदिशंकराचार्य ने गौरी स्तुति के सातवें श्लोक में यूं किया है:

आदिक्षान्तां अक्षरमूर्त्या विलसन्तीं
भूते भूते भूत कदम्बं प्रसवित्रीम्।
शब्दब्रह्मानन्दमयीं तां प्रणवाख्यां
गौरीमम्बामम्बुरूहाक्षीं अहंईडे।।

अर्थात् '' 'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त अक्षरों के मूर्त रूप में (मातृकाचक्र के रूप में) प्रकट हुईं (परा शक्ति); पंचमहाभूतों में स्थावरजंगम सृष्टि को उत्पन्न करने वाली; आनन्ददायक शब्दब्रह्ममयी (अनाहत शब्द स्वरूपा) जिसका वाचक प्रणव (ॐकार) है; कमल जैसे नेत्रोंवाली उस माँ गौरी की मैं स्तुति करता हूँ।''

अतः प्रस्तुत वाख् में लल्ल योगेश्वरी का आग्रह ॐकार के मन्त्र जाप के माध्यम से भौतिक देह में निहित असीम आत्म शक्ति को जाग्रत कर उसकी अनुभूति कराने की ओर है।

लेखिका - वरिष्ठ साहित्यकार है।

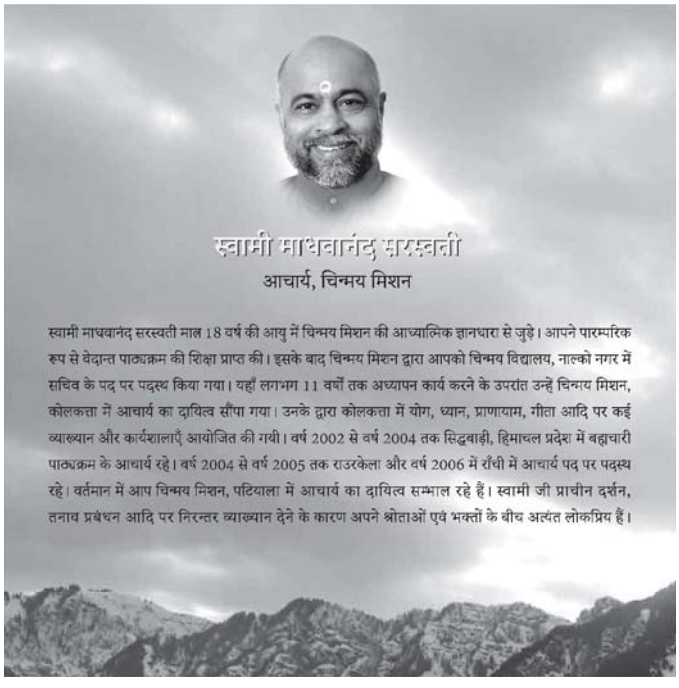

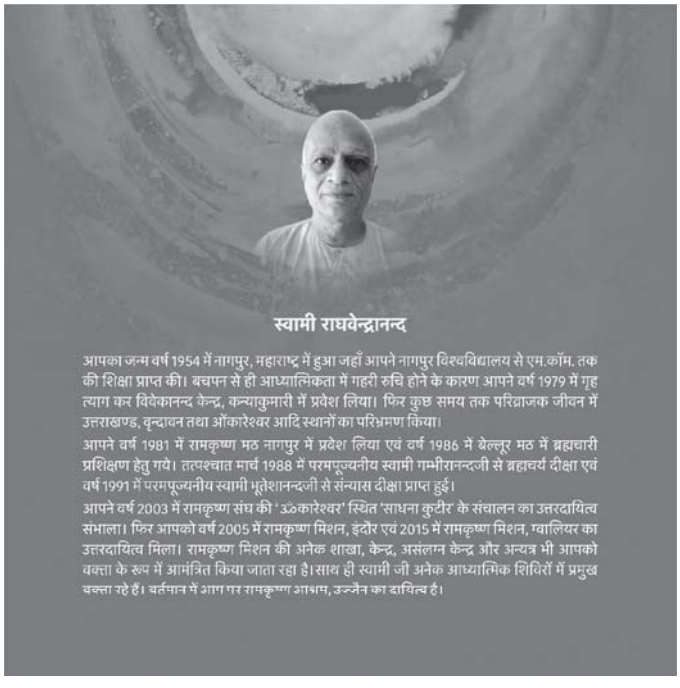

आदि शंकर और बुल्ले शाह

विजय मनोहर तिवारी

किसी एफएम चैनल पर कुछ साल पहले पंजाबी-ऊर्दू का एक गीत सुनाई दिया था। इसकी रूहानी आवाज रूह को छू गई थी। तब लगा था कि इसके बोल भी किसी सिद्धपुरुष की आत्मा से झरे होंगे। इनका अर्थ तो बहुत स्पष्ट समझ में नहीं आया, लेकिन बोल सुनने में इतने प्रिय लगे कि कई-कई बार रेडियो पर सुना। यू-ट्यूब पर सुना। सुनते-सुनते थोड़ा सा मतलब भी समझ में आया। वह बुल्ले शाह का कलाम था। मैंने बुल्ले शाह के बारे में कभी ओशो के प्रवचनों में पढ़ा था। अपनी ही मस्ती में रहने वाला एक सूफी। उस मधुर रचना में एक वाक्य खूब समझ में आ रहा-बुल्ला कि जाणां मैं कौन? बुल्ला क्या जाने कि वह कौन है?

मुझे लगा बुल्ला बड़े साहस की बात कर रहा है। वह साफ कह रहा है कि वह नहीं जानता कि वह कौन है? एक सूफी की चेतना से यह दर्शन कैसे चमका? यह तो उपनिषद के ऋषियों की वाणी है, जो स्वयं की खोज में थे। जो भी खुद को खोजने निकला उसने यह पहचाना कि उसकी सारी पहचानें बाहरी हैं। थोपी हुई हैं। आरोपित हैं। वह किसी का बेटा है, किसी का भाई है, किसी का पति है, किसी का पिता है, किसी का पड़ौसी है, नौकर है, मालिक है, जज है, कैदी है। ये सब बाहरी पहचाने हैं तो वह है कौन?

बुल्ले की बात मूलत: इस्लाम के खिलाफ है। वह आज के पाकिस्तान में 1680 में पैदा हुआ। यह मुगल बादशाहों का दौर था। औरंगजेब की हुकूमत थी। बुल्ला की मृत्यु 1757 में हुई। यह हिंदुस्तान में अंग्रेजों के आने का साल है। प्लासी की लड़ाई में बंगाल के नवाबों की हार का साल, जब अंग्रेजों का दौर शुरू हुआ। बुल्ले के गुरु थे शाह इनायत कादरी। वे बिल्कुल उपनिषद के गुरु-शिष्य जैसे ही मिले। खेती-बाड़ी का काम करने वाले इनायत कादरी निचली मानी जाने वाली अराइन जाति के थे। जबकि बुल्ले शाह की वंश परंपरा अरब में सीधे मोहम्मद पैगंबर के परिवार से जुड़ती थी। एक किस्सा है कि बुल्ले के घर की औरतों ने उससे कहा कि तू किसे अपना गुरु मानता है? पता है वो अराइन है? तब बुल्ले ने अपने उच्च वंश के होने की खिल्ली उड़ाई और आखिर में कहा कि वो नहीं जानता कि वो कौन है?

अब मैं सीधे आचार्य शंकर पर आता हूं। दुर्भाग्य से आदि शंकराचार्य के बारे आम लोगों की जानकारियां बहुत ही सीमित हैं। ज्यादा से ज्यादा चार-छह बातें, जिनसे उनके ज्ञान का कोई आभास भी नहीं होता। बस यही कि वे दक्षिण भारत में पैदा हुए थे। फिर वे देश भर में पैदल घूमे। चार मठों की स्थापना की। और बहुत कम उम्र में देह छोड़ दी थी। इससे ज्यादा कुछ नहीं। उनकी शिक्षाओं के बारे में बहुत ज्यादा किसी को कुछ पता ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा इतना कि वे दक्षिण भारत के केरल से आए थे। मध्यप्रदेश वालों को यह अतिरिक्त जानकारी हो सकती है कि यहां किन्हीं मंडन मिश्र नाम के विद्वान के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ था या ओंकारेश्वर में उन्हें उनके गुरु मिले थे। बस।

शंकर का जीवन कैसा था, केरल में कालडि नाम के गांव से वे क्यों निकले थे, उनके परिवार में कौन थे, वे कहां से होकर कहां गए और क्यों भटके, मध्यप्रदेश के ओंकारेश्वर में उन्हें उनके गुरु मिले, वे कौन थे, किस परंपरा से थे, फिर वे कहां गए, चार मठों को स्थापित करने का उनका तरीका क्या था, वे कश्मीर और कैलाश तक क्यों भटके, क्या वे सत्य की खोज में निकले थे? ऐसे अनगिनत प्रश्न हैं, जो कभी दिमाग में उपजे ही नहीं। सुनी-सुनाई या कहीं आधी-अधूरी पढ़ी जानकारियां ही इस प्रज्ञापुरुष के बारे में रहीं हैं। हमें कभी परिवारों में या स्कूलों में कोर्स से हटकर कुछ बताया नहीं जाता और कोर्स को पढ़ने के पीछे भी मकसद सिर्फ एक मार्कशीट होती है, ज्ञान की चाह नहीं। शंकर को हमारी स्मृतियों में कुछ अधिक जगमगाना चाहिए था। एक ध्रुव तारा हमारे अज्ञान के अंधेरे में पास होकर भी अनुभव नहीं हो पाया। मैं जनसामान्य की बात कर रहा हूं। आध्यात्मिक परंपरा में शंकर का विचार बहुत गहरे उतरा। अद्वैत दर्शन की दार्शनिक परंपरा में भारत ही नहीं पूरी दुनिया में एक से बढ़कर एक विद्वान, मनीषी और विचारक संत हुए हैं।

बुद्ध या महावीर के बारे में हम जानते हैं कि दोनों राज परिवारों में

पैदा हुए थे। विवाहित थे। एक उम्र में आकर उन्हें जीवन की नश्वरता की अनुभूति हुई थी और वे सत्य की खोज में निकल गए थे। दोनों ने करीब 12 साल का तप किया और तब जाकर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। सत्य के दर्शन हुए और वे बुद्ध और तीर्थंकर के रूप में हमारे सामने आए। लेकिन शंकर किसी खोज में निकले हों, ऐसा कहीं नहीं सुना। उन्हें कुछ खोजने में अपना समय नष्ट करना ही नहीं था। उनके पास समय ही बहुत कम था। कुल 32 साल की उम्र मिली थी उन्हें। आठ साल की उम्र में कालडि से कदम बाहर रखे थे और समुद्र के किनारों से दूर हिमालय की श्रृंखलाओं तक फैला अखंड भारत उनके सामने था। अपने समय के तमाम संकटों से घिरा एक प्राचीन देश, जिसके पास दुनिया को देने लायक बहुत कुछ था। वह सब आध्यात्मिक विरासत बिखरी हुई थी। उसे सहेजना जरूरी था। भारत की नियति में शंकर समय के बिल्कुल सही मोड़ पर थे। बस उनके पास समय कम था। उन्हें कुछ खोजना नहीं था। वे सिद्ध स्वरूप में अनुभवसंपन्न ही थे।

शंकर जब ओंकारेश्वर पहुंचे तो यहां उन्हें अपने गुरु गोविंदपाद मिले। एक कथा है कि शंकर ने एक पहाड़ी से नीचे देखा कि कई वस्त्र सूख रहे थे। वे वहां गए। कई साधू वहां डेरा डाले हुए थे। एक से एक पहुंचे हुए साधु। शंकर ने उनसे पूछा तो पता चला कि वे गुरु के बाहर आने का इंतजार कर रहे थे। कोई बीस साल से, कोई पचास साल से। गुरु समाधि में थे। लेकिन शंकर के आने की आहट हुई या कुछ और, वे बाहर आए। पूछताछ की। शंकर से पूछा–'तुम कौन बालक?' शंकर का उत्तर था–'यही खोजने निकला हूं कि मैं कौन हूं।' कहते हैं कि गुरु गोविंदपाद ने तुरंत उन्हें अपने पास बुलाया और दीक्षा दी। ऐसे थे बालक रूप में शंकर।

उनकी कई रचनाओं में से एक निर्वाणषट्कम में शंकर की वाणी है– 'मैं मन, बुद्धि, अहंकार और स्मृति नहीं हूं, न ही कान, नाक, जिव्हा और न आखं हूं। में आकाश, भूमि, तेज और वायु भी नहीं हूं, मैं शाश्वत आनंद और चैतन्य हूं, मैं शिव हूं, मैं शिव हूं।'

'न मैं पुण्य हूं, न पाप हूं। न सुख हूं, न दुख। न मंत्र, न तीर्थ, न वेद, न यज्ञ। न मैं भोजन हूं, न भोज्य और न भोक्ता, मैं शाश्वत आनंद और चैतन्य हूं, मैं शिव हूं, मैं शिव हूं।'

'न मुझे मृत्यु का भय है और न जाति का कोई भेद है। न मेरा कोई पिता है, न कोई मेरी माता है। न मेरा जन्म हुआ है, न कोई मेरा भाई है और न कोई मित्र है। न ही कोई गुरु है और न ही कोई शिष्य। मैं शाश्वत आनंद और चैतन्य हूं, मैं शिव हूं, मैं शिव हूं।'

दशश्लोकी में सिर्फ दस श्लोक हैं। गुरु गोविंदपाद ने उनसे पूछा कि तुम कौन हो? इसके उत्तर में शंकर ने दस श्लोक लिखे। गुरु का उनका उत्तर है–'न मैं भूमि हूं, न जल हूं, न अग्नि, वायु और आकाश हूं। न कोई एक इंद्रिय हूं, न इंद्रियों का समूह ही हूं क्योंकि ये सब अस्थिर हैं। मैं तो सुषुप्ति के एकमात्र अनुभव में सिद्ध हूं। और जो एकमात्र अवशिष्ट पवित्र रह जाता है, वो शिव मैं हूं।'

'न मैं सफेद हूं, न काला हूं। न लाल हूं, न पीला। न बौना हूं, न मोटा। न छोटा हूं, न बड़ा। और ज्योतिस्वरूप होने के कारण निराकार भी हूं। और जो एकमात्र अवशिष्ट पवित्र रह जाता है, वो शिव मैं हूं।'

शंकर के जीवन का एक प्रसंग है। वे श्रृंगेरी जा रहे थे। प्रभाकर नाम के एक ब्राह्मण अपने इकलौते बेटे के साथ उनके समक्ष आते हैं। तेरह साल का वह बेटा जड़वत है। गूंगा। कुछ बोलता ही नहीं। आचार्य शंकर उसी से संबोधित होकर पूछते हैं–हे शिशु, तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, कहां जा रहे हो, तुम्हारा नाम क्या है, कहां से आए हो, इन प्रश्नों का उत्तर देकर मुझे प्रसन्न करो। तुम्हें देखकर मैं आनंदित हूं।

शंकर की वाणी उस मौन बालक के हृदय में उतरती है। वह खिल उठता है। उनके चेहरे पर अपनी दृष्टि केंद्रित करके कहता है–'मैं मनुष्य नहीं हूं, देवता या यक्ष भी नहीं हूं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी नहीं हूं। ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थी, संन्यासी भी नहीं। मैं केवल निज बोध स्वरूप आत्मा हूं...।'

बाद में शंकराचार्य उसके पिता को बालक की पृष्ठभूमि बताते हैं कि कौन सिद्ध पुरुष उसकी देह में हैं और उनकी दिशा क्या है? बहुत बेमन से प्रभाकर अपने बेटे को आचार्य को सौंप देते हैं। हस्तामलक उनका नाम होता है और यह जो जवाब उसने आचार्य शंकर को दिया था, वह हस्तामलक स्त्रोत के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्त्रोत में वह बालक क्या कह रहा है–मैं यह भी नहीं हूं, मैं वह भी नहीं हूं...। वह अपनी सारी बाहरी पहचानों को प्याज की परतों की तरह छीलकर फैंक रहा है।

यह उसी अद्वैत दर्शन का बोध वाक्य है, जो आचार्य शंकर ने दुनिया को दिया। शंकर की विराटता देखिए वे बार–बार कहते हैं कि यह वो ज्ञान है, जो पहले के ऋषियों ने दिया। उन्हें उनके भी पहले के ऋषियों ने दिया। ये मेरा नहीं है। मैं सिर्फ स्मरण करा रहा हूं। ऐसा करके शंकर हजारों साल पुरानी वैचारिक और दार्शनिक परंपरा से भारत को तो जोड़ देते हैं और खुद परदे के पीछे बने रहते हैं। उनकी कोई रुचि नहीं है कि उन्हें स्मरण में भी रखा जाए। उनकी कोई पूजा हो। वे किसी पद पर प्रतिष्ठित हों। वे भारत के चार कोनों पर चार स्थापनाएं करते हैं। आज की कॉर्पोरेट शैली की तरह हरेक मठ को

एक बोधवाक्य और संकल्प देते हैं, जो वह अपने दायरे में पूरा करेगा। चार सूत्रों में भारत की सनातन संस्कृति को बांधकर स्वयं बिल्कुल अलग हो जाते हैं। सदियों बाद वे हमारी स्मृति में भी अंशमात्र ही शेष रहते हैं। बस उनका नाम–आदि शंकराचार्य...

अब रब्बी शेरगिल के एलबम में जो सुना उसमें देखिए बुल्ले शाह ने क्या कहा– 'बुल्ला कि जाणां मैं कौन, ना मैं मोमिन विच मसीताँ, ना मैं विच कुफ्र दियां रीताँ, न मैं पाकां विच पलीताँ, न मैं अन्दर वेद किताबां, न मैं रहदाँ भंग शराबाँ,न मैं रिंदाँ मस्त खराबाँ, न मैं शादी न ग़मनाकी, न मैं विच पलीति पाकी,न मैं आबी ना मैं खाकी, न मैं आतिश न मैं पौण, बुल्ला कि जाणां मैं कौन ?'

इसका मतलब है– 'न मेरी मस्जिद में आस्था है, न व्यर्थ की पूजा पद्धतियों में, न मैं शुद्ध हूँ, न मैं अशुद्ध, मैं न वेदों और धर्मग्रंथों में हूं,न ही मुझे भांग या शराब की लत है, न ही शराब सा मतवालापन, न तुम मुझे पूर्णत: स्वच्छ मानो, न ही गंदगी से भरा हुआ, न जल, न थल, न अग्नि, न वायु हूं।'

इसके आगे बुल्ले ने कहा–

'न मैं अरबी न लहोरी, न मैं हिन्दी शहर नगौरी, न हिन्दु न तुर्क पेशावरी, न मैं भेद मज़हब दा पाया, न मैं आदम हव्वा जाया, न मैं अपणा नाम कराया, आव्वल आखिर आप नूँ जाणां, न कोइ दूजा होर पहचाणां, मैं थों होर न कोई सियाणा, बुल्ला शाह खडा है कौण, बुल्ला कि जाणां मैं कौन?'

इसका अर्थ है– 'न मैं अरब का हूँ, न लाहौर का., न नगौर मेरा शहर है, न मैं हिंदभाषी हूं, न तो मैं हिंदू हूँ, न पेशावरी तुर्क, न मुझे धर्मों का ज्ञान है, न मैं दावा करता हूँ कि मैं आदम और हव्वा की संतान हूँ, ये जो मेरा नाम है वो ले कर इस दुनिया में मैं नहीं आया, मैं पहला था, मैं ही आखिरी हूँ, न मैंने किसी और को जाना है, न मुझे ये जानने की जरूरत है, गर अपने होने का सत्य पहचान लूँ, तो फिर मुझ सा बुद्धिमान और कौन होगा?'

अब देखिए बुल्ले ने क्या कहा– **'न मैं मूसा न फरौन, न मैं जागन न विच सौण, न मैं आतिश, न मैं पौण, न मैं रहदां विच नादौण, न मैं बैठां ना विच भौण, बुल्ला शाह खडा है कौण, बुल्ला कि जाणां मैं कौन? '**

अब इसका अर्थ पढ़िए, बुल्ला कह रहा है– 'न तो मैं मूसा हूँ और न ही फराओ, न मैं जाग रहा हूं, न ही निद्रा में हूं, न तो मैं आग में हूं, न ही हवा में, न मैं ठहरा हूं, न लगातार चल रहा हूं, मैं बुल्ले शाह आज तक अपने अक्स की तलाश में हूँ, मैं नहीं जानता हूं मैं कौन हूं? '

बुल्ले का हर वाक्य, हर शब्द कोई सूफी कलाम नहीं है, जो लिख दिया गया है, जैसा कि माना जाता है। बुल्ले की यह रचना बताती है कि वह कोई कवि नहीं था। यह उसकी चेतना से कौन बोल रहा है? क्या कोई कवि? नहीं। एक कवि इतने गहन अनुभव में नहीं हो सकता। यह एक ऋषि की ही घोषणा है। हालांकि बुल्ला अपनी सारी बाहरी पहचानों को नकार रहा है। मगर वह इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा कि वह है कौन? वह आखिर तक यही गाता है कि वह नहीं जानता कि वह कौन है? शंकर उस चिरंतन सत्य को भी सामने रखते हैं। वह शंकर की दिव्य दृष्टि में अंकित है कि वह हैं कौन? वे मनुष्य का सही परिचय भी देते हैं कि वह कौन है?

पता नहीं किसी ईमान के पक्के मुसलमान की नजर बुल्ले की इस रचना पर क्यों नहीं पड़ी। वर्ना होता यह कि एक फतवा होता, जिसमें कहा जाता कि चौराहे पर खड़ा करके दस कोड़े बुल्ले को मारे जाएं ताकि इस कम्बख्त की समझ में आए कि ये कौन है? अक्ल ठिकाने लग जाएगी। क्या इसे पता नहीं है कि यह एक मुसलमान है और ऐसी बातें करना कुफ्रहै? ये काफिरों जैसी बातें हैं। अल्लाह ने हमें बनाया है। हमें उसकी इबादत करनी है। ईमान पक्का रखना है कि आखिरी पैगंबर और आखिरी किताब आ चुकी है। अब अपनी अकल चलाने की जरूरत नहीं है। कयामत का इंतजार करना है। कुफ्र से दूर रहना है। और देखो ये कह रहा है कि मैं कौन हूं?

इस्लाम की नजर में तो बुल्ले शाह ने जिंदगी भर कुफ्र की ऐसी ही बातें कीं। हो सकता है शाह इनायत कादरी के बाकी चेले भी ऐसी ही अटपटी बातें करते हों। मूल बात यह है कि अद्वैत दर्शन का निचोड़ एक विचार के रूप में हजारों साल से बहता रहा है। इस बीच भारत एक बहुत बड़ी और अंतहीन उथलपुथल से भरा हुआ भी रहा। इस्लाम के अंधे और क्रूर हमलावर लुटेरों ने कोने–कोने में काफी कुछ बरबाद किया। बुल्ले शाह तक आते–आते एक बड़ा इलाका इस्लाम के रंग में रंग चुका था। पुरानी भाषाएं भी बाहरी पहचान की तरह धुंधला चुकी थीं। तुर्की, अरबी और फारसी जुबान पर चल पड़ी थीं। लेकिन चेतना के स्तर पर इससे क्या फर्क पड़ता। शंकर के विचार बीज वहीं भारत की गहरी चेतना में उतरे हुए थे। अद्वैत का वह विचार हमारी चेतना में जड़ें जमाए रहा। बुल्ले को जो भाषा आती थी, उसमें वही विचार प्रकट हुआ, जो आदि शंकर के समय संस्कृत में कहा था।

भाषाओं और सीमाओं के परे एक अमृत विचार ऐसे ही सदियों के फासले तय करता है। अब आप रब्बी शेरगिल की आवाज में बुल्ले का वह कलाम सुनिए। थोड़ा शंकर के अद्वैत दर्शन में झांकिए। तय है आप भी कहेंगे–यार, बुल्ले तेरा शुक्रिया, तूने आदि शंकर की याद दिलाई...

स्मृतियों में जगमगाते आदि शंकराचार्य

पवन कुमार वर्मा राज्यसभा में सांसद रहे हैं। उसके पहले वे कई देशों में राजदूत रह चुके हैं। टीवी चैनलों की बहसों में वे एक ऐसा चेहरा हैं, जिसकी पहचान उनकी गहरी समझ से है। आप ठहरकर उन्हें सुन सकते हैं। उन्होंने कई किताबें लिखी हैं। कृष्ण से लेकर चाणक्य और गालिब तक उनकी लेखनी के विषय रहे हैं। हाल ही में आई उनकी किताब 'आदि शंकराचार्य हिंदू धर्म के महानतम विचारक।' इस किताब को पढ़ने के साथ ही पिछले दिनों उन्हें भोपाल के भारत भवन में सुनने का भी मौका मिला। विषय भी आदि शंकराचार्य ही थे। वे आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास के आमंत्रण पर आयोजित शंकर व्याख्यानमाला के चौथे व्याख्यान में आए थे। संयोग से मैंने ये सारे व्याख्यान सुने।

अब बात आदि शंकराचार्य की। पवन कुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक के कवर पर ही उन्हें हिंदू धर्म का महानतम विचारक कहा है। लेकिन अपने धर्म की इस महान विभूति के बारे में हम कितना जानते हैं? शंकर ने सिर्फ 32 साल की उम्र में भारत की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को सहेजने के लिए जो किया है, वह वाकई रोमांच से भरने वाला है। एकदम यकीन के परे। इस आधुनिक युग में इस उम्र के युवा अपनी रोजी-रोटी की जद्दोजहद में ही जूझते रहते हैं और आदि शंकर अपने हिस्से के इतने कम समय में इतना कुछ कर गए। जरा कल्पना कीजिए, सुदूर दक्षिण के केरल में कालडि नाम के गांव में वे अपनी मां की इकलौती संतान थे। पिता बचपन में ही गुजर गए थे। मां का कोई सहारा नहीं था। प्रतिभा संपन्न शंकर ने सिर्फ आठ साल की उम्र में मां की आज्ञा लेकर कालडि से बाहर कदम रखे। अब उनके सामने पूरा भारत था।

उनके समय को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई उन्हें ढाई हजार साल पहले हुआ मानता है, कोई आठवीं सदी में। हम आठवीं सदी ही मान लें तो इतिहास की मामूली समझ रखने वाले लोग भी यह जानते हैं कि यह वही समय था जब सिंधु नदी के पार अरब के बेरहम लुटेरे और हत्यारे किस तरह भारत पर झपट रहे थे। और इधर भारत में क्या चल रहा था? एक प्राचीन धर्म तरह-तरह के आपसी झगड़ों, कुरीतियों और विवादों में घिरा हुआ था। धर्म का मूल तत्व नदारद था। आत्मा पर धूल जमी थी। कालडि से बाहर आकर शंकर के सामने वैचारिक रूप से जर्जर हो रहा भारत था।

एक गुरु की तलाश किशोर उम्र के शंकर को मध्यप्रदेश ले आई। वे अमरकंटक में नर्मदा के किनारे-किनारे चलते हुए ओंकारेश्वर तक चले आए। यहां उन्हें गुरु गोविंदपाद मिले। कितने लोग यह जानते हैं कि आदि शंकराचार्य ने लगभग तीन साल यहां बिताए। पवित्र नर्मदा पर उनकी रची स्तुति आज भी लाखों कंठों से गाई जाती है-नमामि देवी नर्मदे! महेश्वर के आसपास मंडन मिश्र नाम के अपने समय के धुरंधर परंपरावादी विद्वान के साथ उनका शास्त्रार्थ इतिहास प्रसिद्ध है। उज्जैन में कापालिकों की परंपरा को चुनौती देते हुए वे आगे बढ़े और काशी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, कश्मीर, कैलाश की उनकी अथक यात्रा भी एक रोमांचकारी इतिहास ही है। हर पड़ाव से जुड़े हुए अनगिनत प्रसंग हैं, जो शंकर को अद्वैत दर्शन की एक लपट की तरह प्रस्तुत करते हैं। एक ऐसी ज्वाला जिसने भारत की चेतना पर पड़े कूड़े को जलाकर राख कर दिया और चौबीस कैरेट का मूल विचार अपने समय के सामने रखकर ही अंतिम सांस ली।

आदि शंकर भारत की नियति के एक निर्णायक मोड़ हैं। लेकिन इतिहास के प्रति हमारी बेखबरी ने ऐसे कई महापुरुषों को हमारी स्मृतियों से या तो बाहर रखा या सिर्फ एक धुंधली सी छवि भर रहने दी। एक हजार साल लंबे गुलामी के भीषण समय की आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। शंकर के अवतरण के बाद की सदियों में भारत ने नामालूम किस पाप के फल भोगे। बीसवीं सदी में प्राप्त आजादी के पहले ऋषियों का यह राष्ट्र बेरहम लुटेरों को रौंदने के लिए खुली सराय बना रहा। एक महान विरासत को मिटाने का दुनिया के इतिहास में दूसरा ऐसा उदाहरण नहीं है। लेकिन उपनिषद काल के ऋषियों का वह मूल विचार हमारी चेतना में कहीं न कहीं धड़कता रहा। अपनी यात्रा करता रहा। भारत के एक बड़े वर्ग की पहचानें बदल दी गईं। एक नई भाषा और नई संस्कृति ने घुसपैठ की। एक अजीब सा मिश्रण बन गया। लेकिन अद्वैत दर्शन की चमक हमारी चेतना में बनी रही।

वो कैसे? कभी बुल्ले शाह को सुनिए। जब हिंदुस्तान में औरंगजेब की हुकूमत थी तब आज के पाकिस्तान की जमीन पर पैदा हुआ बुल्ले शाह। पंजाबी-ऊर्दू में उसने खूब लिखा। एक सूफी कवि के रूप में मशहूर है बुल्ला। उसकी वंश परंपरा पैगंबर मोहम्मद के परिवार से जुड़ती है मगर जीवन और मृत्यु के सच को जानने की उसकी जिज्ञासा उसे उपनिषद काल के किसी योग्य शिष्य की तरह सामने रखती है।

मैंने किसी एफएम चैनल पर कुछ साल पहले एक गीत सुना था। रब्बी शेरगिल की वह रूहानी आवाज वाकई रूह को छू गई थी। तब लगा था कि इसके बोल भी किसी सिद्धपुरुष की आत्मा से झरे होंगे। इनका अर्थ तो बहुत स्पष्ट समझ में नहीं आया, लेकिन बोल सुनने में इतने प्रिय लगे कि कई-कई बार रेडियो पर सुना। यू-ट्यूब पर सुना।

वह बुल्ले शाह का कलाम था। मैंने बुल्ले शाह के बारे में कभी ओशो के प्रवचनों में पढ़ा था। उस मधुर रचना में एक वाक्य खूब समझ में आ रहा–बुल्ला कि जाणां मैं कौन? बुल्ला क्या जाने कि वह कौन है?

अब रब्बी शेरगिल के एलबम में सुनिए बुल्ले के शब्द – 'बुल्ला कि जाणां मैं कौन, ना मैं मोमिन विच मसीताँ, ना मैं विच कुफ्र दियां रीताँ, न मैं पाकां विच पलीताँ, न मैं अन्दर वेद किताबां, न मैं रहदाँ भंग शराबाँ,न मैं रिंदाँ मस्त खराबाँ, न मैं शादी न ग़मनाकी, न मैं विच पलीति पाकी,न मैं आबी ना मैं खाकी, न मैं आतिश न मैं पौण, बुल्ला कि जाणां मैं कौन?' इसका मतलब है– 'न मेरी मस्जिद में आस्था है, न व्यर्थ की पूजा पद्धतियों में, न मैं शुद्ध हूँ, न मैं अशुद्ध, मैं न वेदों और धर्मग्रंथों में हूं,न ही मुझे भांग या शराब की लत है, न ही शराब सा मतवालापन, न तुम मुझे पूर्णत: स्वच्छ मानो, न ही गंदगी से भरा हुआ, न जल, न थल, न अग्नि, न वायु हूं।'

गौर कीजिए, बुल्ले की बात मूलत:इस्लाम के खिलाफ है। वह आज के पाकिस्तान में 1680 में पैदा हुआ। बुल्ला की मृत्यु 1757 में हुई। उसके गुरु खेती–बाड़ी का काम करने वाले इनायत कादरी निचली मानी जाने वाली अराइन जाति के थे। एक किस्सा है कि बुल्ले के घर की औरतों ने उससे कहा कि तू किसे अपना गुरु मानता है? पता है वो अराइन है? तब बुल्ले ने अपने उच्च वंश के होने की खिल्ली उड़ाई और आखिर में कहा कि वो नहीं जानता कि वो कौन है?

बुल्ले का कलाम अद्वैत दर्शन का ही निचोड़ है। मिलता–जुलता नहीं। शब्दश:। मिला लीजिए–आदि शंकर की कई रचनाओं में से एक निर्वाणषट्कम में वे कहते हैं–

'मैं मन, बुद्धि, अहंकार और स्मृति नहीं हूं, न ही कान, नाक, जिव्हा और न आखं हूं। में आकाश, भूमि, तेज और वायु भी नहीं हूं, मैं शाश्वत आनंद और चैतन्य हूं, मैं शिव हूं, मैं शिव हूं।'

'न मैं पुण्य हूं, न पाप हूं। न सुख हूं, न दुख। न मंत्र, न तीर्थ, न वेद, न यज्ञ। न मैं भोजन हूं, न भोज्य और न भोक्ता, मैं शाश्वत आनंद और चैतन्य हूं, मैं शिव हूं, मैं शिव हूं।'

'न मुझे मृत्यु का भय है और न जाति का कोई भेद है। न मेरा कोई पिता है, न कोई मेरी माता है। न मेरा जन्म हुआ है, न कोई मेरा भाई है और न कोई मित्र है। न ही कोई गुरु है और न ही कोई शिष्य। मैं शाश्वत आनंद और चैतन्य हूं, मैं शिव हूं, मैं शिव हूं।'

अब शंकर की विराटता देखिए वे बार–बार कहते हैं कि यह वो ज्ञान है, जो पहले के ऋषियों ने दिया। उन्हें उनके भी पहले के ऋषियों ने दिया। ये मेरा नहीं है। मैं सिर्फ स्मरण करा रहा हूं। ऐसा करके शंकर हजारों साल पुरानी वैचारिक और दार्शनिक परंपरा से भारत को तो जोड़ देते हैं और खुद परदे के पीछे बने रहते हैं। उनकी कोई रुचि नहीं है कि उन्हें स्मरण में भी रखा जाए। उनकी कोई पूजा हो। वे किसी पद पर प्रतिष्ठित हों। वे भारत के चार कोनों पर चार स्थापनाएं करते हैं। आज की कॉर्पोरेट शैली की तरह हरेक मठ को एक बोधवाक्य और संकल्प देते हैं, जो वह आने वाले समय में अपने दायरे में पूरा करेगा। चार सूत्रों में भारत की सनातन संस्कृति को बांधकर स्वयं बिल्कुल अलग हो जाते हैं। सदियों बाद वे हमारी स्मृति में भी अंशमात्र ही शेष रहते हैं। बस उनका नाम–आदि शंकराचार्य...

आचार्य शंकर पर केंद्रित व्याख्यानमाला में सबसे अच्छी बात यह थी कि सिर्फ धार्मिक दृष्टि से शंकर को समझने की कोशिश नहीं की गई। यही वजह है कि ज्यादातर नए और युवा श्रोता इसे मिले। भोपाल से बाहर पहला व्याख्यान 22 सितंबर को इंदौर में हुआ। इस आयोजन की अनूठी रूपरेखा से शंकर को समझने का एक व्यापक फलक मिला। हर व्याख्यान में अद्वैत दर्शन में गहरी उतरी एक आध्यात्मिक विभूति को बुलाया गया और दूसरी तरफ कोई वैज्ञानिक या प्रोफेसर आए, जिन्होंने शंकर की विचारधारा में गोते लगाए हैं। हरेक व्याख्यान में तीसरी महत्वपूर्ण कड़ी थी शंकर रचित संस्कृत के पदों पर प्रतिष्ठित गायकों और संगीतज्ञों की प्रस्तुति। मध्यप्रदेश से आदि शंकर का गहरा संबंध रहा। क्या यह गर्व करने लायक नहीं है कि आदि शंकराचार्य के गुरु की भूमि मध्यप्रदेश है। वे तीन साल यहां रहे और कई रचनाएं यहां कीं। जरा याददाश्त पर जमी धूल झाड़िए। देखिए शंकर कैसे जगमगा रहे हैं...

लेखक– सूचना आयुक्त है।
मो– 9893043200

जिस तरह एक प्रज्वलित दीपक के चमकने के लिए दूसरे दीपक की ज़रुरत नहीं होती है। उसी तरह आत्मा जो खुद ज्ञान स्वरूप है उसे और किसी ज्ञान कि आवश्यकता नही होती है, अपने खुद के ज्ञान के लिए।

आदि गुरु शंकराचार्य

आलेख

अक्षरं ब्रह्म परमम्

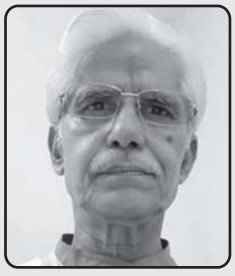

प्रभुदयाल मिश्र

गीता के आठवें अध्याय के आरंभ में अर्जुन ने श्री कृष्ण से सीधा प्रश्न किया– किंतद् ब्रह्म– वह ब्रह्म क्या है ? इसका मूल संदर्भ अध्याय 7 के अंतिम श्लोक 29 में है जहां श्री कृष्ण ने कहा था कि जो लोग उनके आश्रित होकर चेष्टा करते हैं वे उस 'ब्रह्म' को जानते हैं– ते ब्रह्म तद्विदु:। इस प्रश्न का बहुत सीधा और संक्षिप्त उत्तर श्री कृष्ण यह देते हैं–

'अक्षरं ब्रह्म परमं' (गीता 8/3)

परम अक्षर ब्रह्म है । यह प्रश्न उठता है कि यह 'परम' विशेषण अक्षर का है कि ब्रह्म का? तो यह दोनों में ही प्रयोक्तव्य है क्योंकि अक्षर और ब्रह्म भी तदरूप ही हैं। अक्षर के साथ प्रयुक्त करने पर इसका आशय है– परम अक्षर का नाम ब्रह्म है। और ब्रह्म के साथ प्रयोग कर कह सकते हैं– अक्षर ही परम ब्रह्म है।

यहाँ यह प्रश्न भी उठेगा कि अव्यक्त ब्रह्म के लिए इन विशेषणों की क्या आवश्यकता है तो इसके लिए गीता में ब्रह्म की आवृत्ति जिस–जिस अर्थ में हुई है उस पर भी एक दृष्टि डाल ली जानी चाहिए सबसे पहले गीता के तीसरे अध्याय के श्लोक 15 में ब्रह्म शब्द इस प्रकार तीन बार आया है–

कर्म ब्रहमोद्भवविद्धिब्रह्माक्षरसमुद्भवम्
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् ।

अर्थात कर्म समुदाय वेद (ब्रह्म) से और वेद को अक्षर ब्रह्म से प्रकट जानो। इससे यही सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी ब्रह्म यज्ञ में प्रतिष्ठित है। इसके अतिरिक्त गीता में व्यवहृत ब्रह्म के अन्यत्र आशय इस प्रकार स्पष्ट होते है–

(गीता/अध्याय)	श्लोक	आशय
3	15	वेद
4	32	वेद
8	3,24	परमात्मा
8	17	ब्रह्मा
11	37	ब्रह्मा
14	3, 4	प्रकृति
17	24	वेद
18	42	ब्राह्मण

'अक्षर ब्रह्म' की इस विवृत्ति के साथ यहाँ यह भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि सर्वथा उपाधि रहित अव्यक्त ब्रह्म को कुछ विशेषणों से संपृक्त कर हम क्यों समझना चाहते हैं? ज्ञानेश्वर महाराज तो ब्रह्म की 'सत् चित् और आनंद विभूतियों को भी बड़ा आक्षेपात्मक मानते हैं और कहते हैं कि इस तरह जैसे हम उसे असत्, अचित् और निरानंद से ऊपर उठाकर यह सिद्ध करना चाहते हैं मानो इन तत्वों की अवस्थिति परमात्मा से पृथक कोई अतिविशेष भी हो सकती है! ऋग्वेद (10/129) के नासदीय सूक्त में 'नासदासीन्नोसदासीत् (तब नहीं असत् अथवा सत्) तो यही उद्घोष हुआ है कि सत् और असत् परमात्मा की सृष्टि संरचना की ही समवर्ती अनंतर धाराएं ही हैं ।

किन्तु यह स्पष्ट है कि हम ज्ञात से ही अज्ञात, कार्य से ही कारण का अनुसंधान कर सकते हैं, भले ही हमारी यह चेष्टा सर्वथा अविज्ञेय उस अनादि और अनंत 'अक्षर ब्रह्म' को जानने की हो जो हमारे सभी विज्ञातधर्मों का 'विरुद्धाश्रयी' ही क्यों न हो । वेदान्त के परम प्रकर्षसिद्धांत ग्रंथ 'पंचदशी' में विद्यायरण्य स्वामी कहते हैं –

एकमेवाद्वितीयंसन्नामरूपविवर्जितम्
सृष्टेः पुराधुनाऽप्यस्यतादृक्त्वं तदितीर्यते (15/5)

अर्थात् सभी धर्मों (नाम और रूप) के परे परम ब्रह्म सृष्टि के आदि में अवस्थित था । सृष्टि के अनंतर भी वह अपरिवर्तित है। इसका 'तत्' पद (तत् त्वमसि) के रूप में शोधन किया जाता है। भगवत्पादआदिशंकर अपने परम प्रमाण सिद्धांत दर्शन 'विवेक चूडामणि' (237) में इस परम तत्व की अवधारणा इस प्रकार करते हैं –

अत: परंब्रह्म सदाद्वितीयंविशुद्ध विज्ञानघनंनिरंजनम्
प्रशांतमाद्यंतविहीनमक्रियंनिरंतरानंदरस्वरूपम् ।(237)

–इस प्रकार विशुद्ध चेतन– प्रकाश, प्रशांत, आदि और अंत रहित, निश्चेष्ट, सदा आनंद रस–रूप परम ब्रह्म सर्वदा अद्वितीय ही है ।

ब्रह्म के 'परम' युक्त सामासिक परंब्रह्म की तरह ही अक्षरब्रह्म के समास योग की सार्थकता पर भी किंचित विचार उचित प्रतीत होता है। यद्यपि अक्षर एक प्रकार से परम का अर्थ पर्याय ही प्रतिध्वनित करता है किन्तु इसकी वर्णमाला संगत भाषा और ध्वनि की वैज्ञानिकता भी अर्थ संश्लिष्ट हो जाती है। मैं इस सुविधा के लिए विकीपीडिया से साभार निम्न उद्धरण गृहण कर रहा हूँ –

'अक्षर शब्द का अर्थ है – 'जो न घट सके, न नष्ट हो सके'। इसका प्रयोग पहले 'वाणी' या 'वाक्' एवं शब्दांश के लिए होता था। 'वर्ण' के लिए भी अक्षर का प्रयोग किया जाता रहा है। यही कारण है कि लिपि संकेतों द्वारा व्यक्त वर्णों के लिए भी आज 'अक्षर' शब्द का प्रयोग सामान्य जन करते हैं। भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन ने अक्षर को अंग्रेजी 'सिलेबल' का अर्थ प्रदान कर दिया है, जिसमें स्वर, स्वर तथा व्यंजन, अनुस्वार सहित स्वर या व्यंजन ध्वनियाँ सम्मिलित मानी जाती हैं।

एक ही आघात या बल में बोली जाने वाली ध्वनि या ध्वनि समुदाय की इकाई को अक्षर कहा जाता है।

इकाई की पृथकता का आधार स्वर या स्वररत् (वोक्वॉयड) व्यंजन होता है। व्यंजन ध्वनि किसी उच्चारण में स्वर का पूर्व या पर अंग बनकर ही आती है। अस्तु, अक्षर में स्वर ही मेरुदंड है। अक्षर से स्वर को न तो पृथक् ही किया जा सकता है और न बिना स्वर या स्वररत् व्यंजन के अक्षर का निर्माण ही संभव है। उच्चारण में यदि व्यंजन मोती की तरह है तो स्वर धागे की तरह। यदि स्वर सशक्त सम्राट है तो व्यंजन अशक्त राजा। इसी आधार पर प्रायः अक्षर को स्वर का पर्याय मान लिया जाता है, किंतु ऐसा है नहीं, फिर भी अक्षर निर्माण में स्वर का अत्यधिक महत्व होता है।

गीता के दशम अध्याय में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण अपने आपको 'अक्षरणामकारोऽस्मि' (10/33) बताते हैं। स्पष्ट है कि स्वर 'अ' वर्णमाला की प्रथम और सर्वाधिक निश्चेष्ट उच्चारण योग्य ध्वनि है। 'अ'कार से रहित व्यंजन भी उच्चारण योग्य नहीं रहता। इसके उच्चारण के लिए, ओष्ठ, दंत्य, जिह्वा या कंठ्य किसी की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। यह केवल मुख से वायु के निष्करण मात्र से संभव है जिसे मूक व्यक्ति और पशुवर्ग भी उच्चारित करता है। इससे इसकी सार्वभौमिकता सिद्ध है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है – 'अकारोवैसर्वा वाक्' अर्थात समस्त वाणी अकार है।

नाद और बिन्दु के शैव-शाक्त तंत्र में तो सबकुछ अर्धनारीश्वर लीला-लास्य ही है जैसाकि पश्चात महामाहेश्वर आचार्य अभिनव गुप्त की स्तुति 'तव च का किल न स्तुतिरम्बि के सकल शब्दमयीकिलते तनुः', आर्थर अवलोन के 'सरपेंटआफलेटर्स' अथवा कुमार स्वामी की 'डाँस आफ शिवा' से प्रतिपादित हुआ है, अतः अक्षर को ब्रह्म के विशेषण के स्थान पर विशेष्य मानना ही सर्वथा उचित है ।

ब्राहदारण्यक उपनिषद में राजर्षि जनक की ज्ञान सभा में याज्ञवल्क्य और गार्गी के ब्रह्मज्ञान विषयक शास्त्रार्थ के अंतिम चरण के इस संवाद को मैं अपने औपनिषदिक उपन्यास 'मैत्रेयी' से निम्नवत उद्धृत करता हूँ –

''गार्गी, जो द्युलोक से ऊपर, पृथ्वी से नीचे और जो दयुलोक और पृथ्वी के मध्य में है और स्वयं भी जो दयुलोक और पृथिवी है तथा जिन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान कहते हैं, वे सब आकाश में ओतप्रोत हैं'

'आपको मेरा नमस्कार है। अब मैं दूसरा और अंतिम प्रश्न आपसे यह पूछती हूँ कि यह आकाश अंततः किसमें ओत-प्रोत है?'

गार्गी! इस तत्व को ही ब्रह्मवेत्ता अक्षर कहते हैं । वह न मोटा है, न पतला है; न छोटा है, न बड़ा है; न द्रव है न छाया है; वह नभ, वायु, आकाश, रस, गंध, नेत्र, कान, वाणी, मन, तेज, प्राण, मुख आदि कुछ भी नहीं है। वह न तो भीतर है और न ही बाहर है। गार्गी, इस अक्षर के प्रशासन में सूर्य, चंद्रमा, दिन-रात, ऋतु, संवत्सर स्थित हैं । गार्गी, जो कोई इस अक्षर को जाने बिना मरता है, वह अत्यंत दयनीय है। और जो इसे जानकार मारता है, वही ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है। यह अक्षर दृष्टि का विषय नहीं, किन्तु द्रष्टा है; श्रवण का विषय नहीं, किन्तु श्रोता है; मनन का विषय नहीं, किन्तु मन्ता है; यह स्वयं अविज्ञात रहकर दूसरों का विज्ञान है । हे गार्गी ! निश्चय ही इस अक्षर में आकाश ओत-प्रोत है।''

इस तरह जैसे लोक से लोकोत्तर और द्वैत से अद्वैत के निर्विशेष परमतत्व की प्रत्यभिज्ञा के लिए ही महत्पुरुष 'अक्षर' का उन्मेष करते हैं । अब प्रश्न है कि तब विसर्जनीय 'क्षर' क्या है ?

गीता के आठवें अध्याय (श्लोक 4) में श्री कृष्ण 'अधिभूत' को क्षर भाव बताते हैं। उनके अनुसार अपरा प्रकृति और उसके परिणाम से उत्पन्न विनाशशीलक्षयी तत्व का नाम 'क्षर' है। तेरहवें अध्याय (श्लोक 1) में इसी को वे 'क्षेत्र' तथा सातवें अध्याय (श्लोक 5) में 'अपरा प्रकृति' और नवें अध्याय (श्लोक 19) में 'असत्' बताते है।

गीता के बारहवें अध्याय के आरंभ में अर्जुन भगवान की उपासना की पद्धति की निष्पत्ति का प्रश्न जो करते हैं उसमें निराकार साधन को वे 'अक्षर अव्यक्त' की साधना कहते हैं –

'ये चाप्यक्षरमव्यक्तंतेषां के योगवित्तमः' (गीता 12/1)

अर्थात् भक्त और निर्गुणोपाषकों में उत्तम कौन है ?

इसके उत्तर में श्री कृष्ण ने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि सम्पूर्ण समर्पण भाव से उनकी उपासना करने वाले उत्तम हैं किन्तु 'अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त' के उपासक भी उन्हें ही प्राप्त करते हैं परन्तु उन्हें सभी के हित की कामना करने वाले समत्व बुद्धि से युक्त होना चाहिए । दूसरे शब्दों में इसका आशय यही है कि भक्त के लिए जहां

भगवान ही 'सब कुछ' है वहीं ज्ञानी के लिए 'सब कुछ में भगवान' ही है बोध होना चाहिए। इस प्रकार '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' और '**ब्रह्म सत्यंजगन्मिथ्या**' के समन्वय का सूत्र ही जैसे भगवान ने यहाँ प्रदान कर दिया है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में ज्ञान के दीपक और भक्ति की मणि के रूपक के विस्तार द्वारा लगभग ऐसा ही समन्वय सूत्र प्रदान कर अंतत: कहते हैं –

'जिमिथल बिनुजल रहि न सकाई। कोटि भांति कोउकरैउपाई
तथा मोच्छसुख सुनुखगराई। रहि न सकइहरि भगतिबिहाई'
(रामचरित मानस उत्तर 119/5-6)

निर्गुण–सगुण की साधना का यह समन्वय ज्ञान और भक्ति उपासना ही नहीं दर्शन की द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शैव और शाक्त पद्धतियों में भी विधेय है । किन्तु अध्यात्म विषयक इस भ्रांति का निवारण भी आवश्यक है कि जीव और ब्रह्म के एकत्व के परम प्रमाण महावाक्य– **(अहं ब्रह्मास्मि–बृहदारण्यक उपनिषद 1/4/10–यजुर्वेद), तत्वमसि– (छान्दोग्य उपनिषद 6/8/7– सामवेद), अयम् आत्मा ब्रह्म–(माण्डूक्य उपनिषद 1/2– अथर्ववेद), प्रज्ञानं ब्रह्म – (ऐतरेय उपनिषद 1/2 – ऋग्वेद), सर्वं खल्विदंब्रह्मम् – (छान्दोग्य उपनिषद 3/14/1– सामवेद)** यह प्रतिपादित करते हैं कि ब्रह्म से ऐक्य का यह उद्घोष जहां सार्वभौम है वहीं वह यह स्थापना नहीं करता कि इस बुद्धत्व को प्राप्त कर कोई सांसारिक व्यवहार की जीवन स्थितियों से पृथक हो जाता है कभी कोई विज्ञान, भ्रम या सिद्धि से यदि कोई चमत्कार भी प्रदर्शित करता है तो उसे अध्यात्म नहीं कहा जा सकता। शुद्ध अध्यात्म पारमार्थिक बोध के साथ व्यवहारिक निर्वाह की उस अवस्था का द्योतक है जहां एक सामान्य व्यक्ति जिस प्रकार मृग मरीचिका, नीले आकाश और दर्पण के प्रतिबिंब को देखते हुए भी इनके मिथ्यात्व को स्वीकार करता है ठीक वैसे ही संसार के सभी नाम और रूपों को व्यवहार के बाद भी उनके मिथ्या होने की प्रतीति रखता है। अध्यात्म की यह यात्रा– रूपात्मक संसार ही नहीं इसकी अनुभोक्ता देह के स्वत्व को अस्वीकार कर जीव की स्वतंत्र सत्ता का भी परिहार कर देती है। जब श्री कृष्ण गीता के तेरहवें अध्याय में क्षेत्रज्ञ की परिभाषा प्रदान करते हैं तो उनका स्पष्ट यही कथन है कि सभी क्षेत्रों (शरीर) के क्षेत्रज्ञ एकमात्र वही हैं –

क्षेत्रज्ञंचापि मां विद्धिसर्वक्षेत्रेषु भारत
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानंयत्तज्ज्ञानंमतंमम् ।(13/2)

यह कुछ वैसा ही जैसे विद्युत प्रवाह के टुकड़े अलग–अलग यंत्रों,पंखा, वाल्व, फ्रीजर के लिए स्वतंत्र सत्तात्मक इकाई नहीं बनते अथवा मुट्ठी या किसी भवन का सीमित आकाश, परम आकाश का स्वतंत्र भाग नहीं बन जाता, वैसे ही जीव परमात्मा से पृथक कोई स्वतंत्र सत्तात्मक इकाई नहीं है । जीव और ब्रह्म का भेद हमारे मन और बुद्धि का ही विभ्रम है । इनकी सत्तात्मक अवस्थिति का भाव अद्वैत चैतन्य की समग्रता से द्वैत के संसार में स्थित हो जाना मात्र है। इस प्रकार संसार में सभी कुछ मात्र आभासात्मक है, यथार्थ नहीं ।

प्रसंगत: यहाँ वर्ष 2022 के भौतिक शास्त्र के नोबेल सम्मान विभूषित तीन वैज्ञानिकों अलैनआस्पेक्ट (फ्रांस), जॉनएफक्लाजेर (यू एस) और ऐन्टिनजेलिंजर (आस्ट्रिया) की इस शोध का उल्लेख उचित प्रतीत होता है जिसने आइंस्टीन के क्वांटममकैनिक्स के सिद्धांत में परिवर्तन कर यह प्रतिपादित किया है कि क्वेन्टमस्टेट एक पारटिकिल से दूर के पारटीकिल में स्थान्तारित हो जाती है । इस प्रकार उन्होंने 'लोकल रियलिटी' की सत्तात्मक इकाई को अस्वीकार किया है जो कि एक पदार्थ की वस्तुनिष्ठ भौतिक सत्ता को स्पष्ट चुनौती देती है ।

अक्षर ब्रह्म के अनुयायियों को अब अंत में श्री कृष्ण की एक चेतावनी मात्र के प्रति सजग करना अभीष्ट रह जाता है जो इस प्रकार है –

क्लेशोऽधिकतरसतेषामव्यासक्तचेतसाम
अव्यक्ताहिगतिर्दुखं देहवद्भिरवाप्यते ।(गीता 12/5)

–आसक्त चित्त व्यक्ति को 'अक्षर' ब्रह्म की साधना में विशेष परिश्रम आवश्यक है क्योंकि देहाभिमानी द्वारा अव्यक्त की प्राप्ति कष्ट पूर्वक ही संभव है ।

लेखक– 'तुलसी मानस भारती' पत्रिका के प्रधान संपादक है।
अध्यक्ष महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्,
35, ईडन गार्डन, चूनाभट्टी, कोलार रोड, भोपाल, 462016
मो– 9425079072

जब हमारी गलत धारणा सही हो जाती है, तो दुख भी समाप्त हो जाता है.

आदि गुरु शंकराचार्य

आलेख

अक्षर ब्रह्म

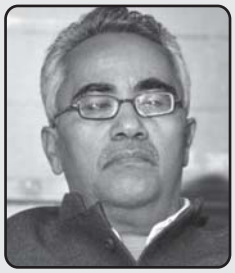

डॉ. कृष्णगोपाल मिश्र

'क्षर' शब्द क्षरित होने अर्थात क्षीण होकर शनैः शनैः नष्ट होने के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। जगत की प्रकृति क्षरित होने की है। जगत अर्थात संसार के समस्त, भौतिक पदार्थ नश्वर हैं। दृश्यमान जगत में जो कुछ प्रत्यक्ष है वह सब नाशवान् है- कोमल हो अथवा कठोर काल के कराल प्रवाह में एक न एक दिन सब कुछ नष्ट होता ही हैं। कोमल फूल दो चार दिन शाख पर खिलकर झर जाता है, पत्ते महीनों तक वृक्ष को हरीतिमा देकर पीले पड़कर गिर जाते हैं; वृक्ष की कठोर मजबूत शाखाएं वर्षों तक पत्र-पुष्प देकर अंततः टूटती गिरती ही हैं। विशालकाय बरगद और पीपल भी एक न एक दिन सूखते-गिरते ही हैं। मिट्टी के बने कच्चे घरों को वर्षा प्रतिवर्ष ढहा देती है तो पत्थरों से निर्मित पक्के भवन भी एक न एक दिन खण्डहर हो ही जाते हैं। तात्पर्य यह है कि न केवल निर्जीव पदार्थ प्रत्युत चैतन्य जीव पशु-पक्षी, कीट- पतंग, मानव आदि भी अपना जीवन चक्र पूर्ण कर काल के ग्रास बन जाते हैं। जीव-देह जन्म से यौवन तक शक्ति का संचय करने के उपरान्त अन्ततः वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होते ही क्षरित होकर जरा-जर्जर अवस्था में आकर मृत्यु को प्राप्त होती है। इस प्रकार संसार 'क्षर' का प्रत्यक्षीकरण है।

'क्षर' शब्द से पूर्व 'अ' उपसर्ग के योग से निर्मित 'अक्षर' शब्द 'क्षर' का विलोम अर्थ व्यक्त करता है।. 'अक्षर' का 'अभिप्राय है जो कभी क्षरित न हो, जो कभी क्षरित नहीं होगा वह नष्ट भी नहीं होगा। इस अर्थ में ''अक्षर' शब्द 'अमर' का पर्याय है। 'क्षर' और 'अक्षर' के उपर्युक्त विपर्यय में विचारणीय तथ्य यह है कि जब संसार में सब कुछ 'क्षर' है--'मरण धर्मा' है तब फिर 'अक्षर' क्या है?

'अक्षर' शब्द स्वयं में अनेकार्थी है। शब्दकोशों में अक्षर का आशय 'अविनाशी' और 'अपरिवर्तनशील' बताया गया है। पुल्लिंग संज्ञा रूप में इसका 'अर्थ' 'ब्रह्म' अथवा 'आत्मा' भी है। वर्णमाला के स्वर और व्यंजन भी अक्षर कहे जाते हैं। अंग्रेजी में अक्षर का एंज्ञारूप 'LETTER' अथवा ''CHARACTER'' है। आकाश 'और मोक्ष के अर्थ में भी अक्षर शब्द प्रयुक्त होता है' किंतु इन विभिन्न अर्थों में 'अनश्वरता' को लक्ष्य करके इस शब्द के 'वर्ण' और 'ब्रह्म' 'अर्थ लोक में अधिक ग्राह्य हैं। सृष्टि क्षर है किन्तु सृष्टि का रचयिता ब्रह्म अक्षर है। स्त्रष्टा की इच्छानुसार सृष्टि उसी प्रकार बार-बार बनती बिगड़ती रहती है, जिस प्रकार कुम्भकार गीली मिट्टी से बार-बार अनेक आकार बनाता और बिगाड़ता है। कुम्भकार की इच्छा अनुसार बनने वाले विभिन्न आकार क्षर' हैं किन्तु उन आकारों का रूप-निर्माता 'कुम्भकार' 'अक्षर' है। ठीक इस प्रकार सृष्टि क्षर और स्त्रष्टा अक्षर है। वही ब्रह्म है।

अनेक वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार ध्वनि अथवा 'शब्द' भी अक्षर है। वह एक बार उत्पन्न होकर अनन्त ब्रह्मांड में सदा-सर्वदा के लिए संरक्षित हो जाता है; अन्तरिक्ष की अनन्त ऊँचाइयों में विलीन होकर भी समाप्त नहीं होता। शब्द का आधार उसकी लघुतम इकाई 'अक्षर' अर्थात 'वर्ण' भी है। अक्षरों के आश्रय से उत्पन्न शब्द और शब्द के साथ संयुक्त अर्थ के योग से सृजित साहित्य भी इस अर्थ में अक्षर है। मूर्तिकार कलाकार की काया के क्षरित-मूत होकर नष्ट हो जाने के उपरान्त भी मूर्ति-कलाकृति दीर्घकाल तक लोक को अपने प्रभाव से प्रभावित करती रहती है। यही कला-साहित्य की 'अक्षरता' है। साहित्यिक कृतियाँ भी उनके रचनाकार के निधन के पश्चात परवर्ती काल में युगयुग तक मानवीय चेतना को परिष्कृत-प्रभावित करती रहती हैं। इसी में शब्द अथवा अक्षर-ब्रह्म की अनश्वरता का मर्म निहित है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, प्रेमचंद निराला, प्रसाद, वंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शेक्सपीयर, मिल्टन आदि विश्वसाहित्य के असंख्य रचनाकारों के भौतिक कलेवर क्षरित होकर कबके नष्ट हो गए किन्तु उनके द्वारा सृजित साहित्य देश-काल की सीमाओं को अतिक्रमित करके आज भी विश्व मन को उद्वेलित करता है। यही अक्षर- ब्रह्म की अनादि, अखण्ड और अनन्त सत्ता है। अक्षर सृष्टि के रचयिता ब्रह्म की भाँति लोक के अनन्त जीवन में प्रतिष्ठित है।, कदाचित इसीलिए अक्षर (वर्ण) भी ब्रह्म के रूप में स्वीकृत हुआ है।

नन्दिकेश्वर के अनुसार वर्णमाला का प्रथम वर्ण अकार सर्व वर्ण में प्रथम स्थान पर है अत: वह स्वयं में प्रकाश स्वरूप परमेश्वर है– ''अकारस्सर्व– वर्णाग्रय: प्रकाश: परमेश्वर: ।'' 'अ' की प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठा केवल संस्कृत– हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में ही नहीं अरबी, अंग्रेजी आदि अन्य अभारतीय भाषाओं की वर्णमाला में भी मिलती है। उर्दू में 'अलिफ' और अंग्रेजी में 'ए' प्रथम स्थान पर है। 'अ' के परमेश्वरत्व का यह विचार अन्य अभारतीय भाषाओं की वर्णमाला में भी प्रकार होकर चकित करता है।

वर्णमाला के प्रथम अक्षर 'अ' का ब्रह्मत्व प्राचीन भारतीय साहित्य में भी व्याख्यायित हुआ है। महाभारत के 'भीष्मपर्व' (अध्याय चौंतीस, श्लोक संख्या तैंतीस) अथवा श्रीमद्भगवद्गीता' के दसवें अध्याय में तैंतीसवें श्लोक में श्रीकृष्ण घोषित करते हैं– 'अक्षराणामकारो डार्स्म'. अर्थात मैं (ब्रह्म रूप श्रीकृष्ण) अक्षरों में अकार हूँ। साहित्य की आधार भूमि अक्षर के साथ ब्रह्म तत्त्व की यह एकात्मता अक्षर–ब्रह्म की अन्विति को विज्ञापित करती है। आर्य मनीषियों ने ब्रह्म के रूप में सभी व्यक्त शक्तियों अर्थात विभिन्न गुण–सामर्थ्य युक्त देवरूपों के एकत्व की संकल्पना की है। ऋग्वेद के अनुसार–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमहुरथो
दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं
यमं मातरिश्वान माहु: ॥

– (ऋग्वेद–1/16/446)

अर्थात उस एक 'सत' (शक्ति) को ही विद्वान लोग इन्द्र, मित्र (सूर्य), वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुण, यम और मातरिश्वा नाम से पुकारते हैं। वस्तुत: सूर्य, जल, काल आदि विविध तत्व अपने–अपने ढंग से जीवन को प्रभावित– और पोषित करते हैं। गुण–कर्म की भिन्नता के कारण उनकी संज्ञाएं पृथक है किन्तु जगत के नियमन–नियंत्रण के लिए सब महत्वपूर्ण हैं, सबकी उपादेयता असंदिग्ध है।

इस प्रकार लक्ष्य प्रभावक सामर्थ्य समान होने से और सब एक ही 'सत्' के अनेक व्यक्त रूप हैं। ब्रह्म एक है किन्तु प्रकट अनेक रूपों में है। अक्षर–ब्रह्म वाङ्मय की स्थिति भी यही है। वह वाचिक अथवा लिखित स्तर पर साहित्य, कला, विज्ञान, शास्त्र आदि विविध रूपों में अलग–अलग कार्यक्षेत्रों में पृथक् विषयवस्तु लेकर प्रकट है किन्तु उसका अक्षर (वर्ण) रूप सर्वत्र एक–सा व्यक्त है। शब्द, वाक्य और भाषा के स्तर पर प्रकट अक्षर ब्रह्म की अभिव्यक्ति सभी में अनिवार्यत: विद्यमान है। जिस प्रकार भाषा का आश्रय लिए बिना अक्षर ब्रह्म की शरण में आए बिना ज्ञान–अनुभव आदि का प्रकाशन सर्वथा असंभव है उसी प्रकार ब्रह्म की शक्ति के बिना इन्द्र, मित्र, वरुण नहीं है। सत्ता आदि की सत्, चित् और आनन्दमय परम ब्रह्म की अनन्त शक्ति से। से समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ जड़ होकर भी चैतन्य हैं।

वनस्पतियों में विकास –वृद्धि, जल प्रपातों का अविरल प्रवाह, पवन का संचरण, ऋतु–काल–चक्र, जीवों का जन्म–मरण सब उस अव्यक्त ब्रह्म के अस्तित्व को सांकेतिक रीति से प्रमाणित करते हैं। मनुष्य की समस्त ज्ञान सम्पदा भी इसी भाँति अक्षर– ब्रह्म की अपार शक्ति की प्रतीति कराती है। उपनिषद कहते हैं कि उसी ब्रह्म का प्रकाश सर्वत्र प्रकाशित है। 'मुंडकोपनिषद' के अनुसार वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा और न ही तारागण। ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाश नहीं देतीं, फिर अग्नि के लिए तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। उस ब्रह्म के प्रकाशित होने से ही ये सब उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है–

''न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:।
तमेव भान्तं अनुभाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।''–

(मुण्डकोपनिषद् – 2/2/10)

वाङ्मय में विशेषत: साहित्य के स्तर पर इस अक्षर–ब्रह्म का प्रकाश ही समस्त अनुभूतिमय चैतन्य जगत को प्रकाशित करता है। अक्षर ज्ञान के बिना पूर्व लिखित ज्ञान–संपदा का अनुशीलन नहीं किया जा सकता और 'अक्षर के उच्चारण–श्रवण के अभाव में ज्ञान का हस्तान्तरण नितान्त असंभव हो जाता है। तात्पर्य यह है और कि ज्ञान का प्रकाश अक्षर–ब्रह्म के आलोक में हो संभव है। साक्षर मनुष्य ज्ञान के लिपिबद्ध और वाचिक दोनों रूपों से लाभान्वित होता है जबकि अक्षर के लिपिबद्ध लिखित रूप से अपरिचित जन वाक् के माध्यम से बोल–सुनकर उसी अक्षर से निरक्षर होकर भी ज्ञानी बन जाता है। अक्षर–ब्रह्म की यह कृपा सब पर बरसती है– साक्षर तुलसीदास पर भी, अन्धे सूरदास पर भी और निरक्षर कबीर पर भी। अक्षर–ब्रह्म के संदर्भ में 'तस्य भासा सर्वमिदम् विभाति' का यही मर्म है।

ब्रह्म अभय की आधारभूमि है। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' का वाक्य है 'अभयं वै ब्रह्म' (4/4/25) अर्थात अभय ही ब्रह्म है। जो ब्रह्म को जान लेता है, जिसे ईश्वरीय शक्ति की अनुभूति हो जाती है, वह निर्भय हो जाता है। उसे लौकिक जगत की आतंककारी शक्तियाँ भयभीत

नहीं कर पातीं; लोभ लुभा नहीं पाते और चमत्कार भ्रमित नहीं करते। उसकी चेतना अपराजेय हो जाती है। दण्डाययन् को सिकन्दर का, चाणक्य को महापद्म नन्द का, कबीर को सिकन्दर लोदी का, सिख गुरुओं को मुगल शासकों का भय नहीं रह जाता। बन्ध वैरागी के नाम से विख्यात संत शूरमा राजा लक्ष्मण सिंह अमानुषिक यातनाएं सहकर गर्म चिमटों से शरीर का मांस नुचनाकर भी विचलित नहीं होते यही ब्रह्म के अभय रूप का रहस्य है। ब्रह्मवेत्ता अर्थात ईश्वरीय-सत्ता को अपने अन्तर्मन में सत्यता से अनुभव करने वाला जीव-साधक अभय हो जाता है। वस्तुत: व्यक्ति के मन में भय का कारण अज्ञानता, मोह, लोभ आदि दुर्बलताएँ हैं। ब्रह्मवेत्ता के चित्त से थे दुर्बलताएं दूर हो जाती हैं अत: वह अभय की मनोभूमि में सहज ही स्थित हो जाता है। अक्षर-ब्रह्म रूप ज्ञान भी- मनुष्य के चित्त का परिष्कार कर उसकी उपर्युक्त मोह लोभ आदि दुर्बलताओं का परिहार कर देता है। परिणामत: अक्षर-ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने वाला ज्ञानी साहित्यकार, कलाकार भी अपनी साधना के प्रति समर्पित होकर अभय हो जाता है। संसार में अनाचार और अत्याचार का जितना विरोध अक्षरब्रह्म-साहित्य, पत्रकारिता आदि के माध्यम से हुआ उतना सामरिक शस्त्र शक्ति से भी संभव नहीं हो सका। अत्याचारी शक्तियाँ निश्चय ही उन्मादित और बलवती होती हैं, यदि वे सबल पाशविकत से युक्त न हों तो अत्याचार ही नहीं कर सकतीं। शीर्ष पर बैठकर ही निरीह मानवता पर कहर दाया जा सकता है- हिंसा, लूट, अपहरण, बलात्कार और विध्वंस किए जाते हैं तथापि इनके समस्त आतंक से बिन आतंकित हुए शब्द रूप में साहित्य; शास्त्र आदि रूपों में अक्षर-ब्रह्म अपना तीव्र स्वर मुखर करता है और ऐसी दुर्दान्त शक्तियों का नाश करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस संदर्भ में अक्षर-ब्रह्म का अभयकारी रूप स्वत: प्रमाणित है।

आनन्द का मूल निर्भयता में है। जो अभय है वही आनन्द का अनुभव कर सकता है। ब्रह्म को जानने वाला अभय होता है अत: आनन्दमग्न रहता है। 'कठोपनिषद्' के अनुसार **'य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति'- (2/3/9)** अर्थात जो इस ब्रह्म को जानते हैं वे अमृत हो जाते है। आध्यात्मिक संदर्भों में शंकराचार्य, विवेकानन्द आदि का यशरूप अमृतत्व और अक्षर-ब्रह्म के साधक असंख्य साहित्यकारों का कृतित्व रूप अमृतत्व इस तथ्य को सर्वथा प्रमाणित करता है। भोगी, सिद्ध-साधक, ब्रह्म साधना में लीन होकर जिस दिव्य-अलौकिक आनन्द की अनुभूति करते हैं, अक्षर-ब्रह्म का उपासक, साहित्यकार भी साहित्य के सृजन अथवा अनुशीलन में उसी भावसमाधि को प्राप्त कर दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार दर्शन-ग्रन्थों में वर्णित आध्यामिक ब्रह्म की भाँति साहित्य - वाङ्मय का अक्षर-ब्रह्म भी अभय एवं आनन्द का अक्षय स्रोत है। इसी लिए ब्रह्म को रसरूप कहा गया है **'रसो वै स:'- तैत्तिरीयोपनिषद्-वल्ली: अनुवाक् 7)** - अर्थात वह (ब्रह्म) रस रूप है। यहाँ रस का आशय आनन्द से है और रस की यह सत्ता ब्रह्म एवं अक्षर ब्रह्म यह -दोनों में संव्याप्त है। यदि दार्शनिक, योगी, संत-साधक आदि को अपनी साधना- सत्ता भक्ति में रस (आनन्द) की अनुभूति नहीं होती तो उसकी सिद्धि अधूरी है और यदि साहित्य का साधक अक्षर-ब्रह्म का उपासक साहित्य के सृजन- अनुशीलन में भावमग्न होकर अखण्ड रसानुभूति (आनन्द प्राप्ति) नहीं करता तो उसका सृजन- अनुशीलन सफल नहीं कहा जा सकता। अभय और आनन्द की उपलब्धि ही ब्रह्म अथवा शब्द-ब्रह्म की प्राप्ति-सिद्धि का निकष है। ब्रह्म और अक्षर-ब्रह्म दोनों की प्राप्ति के लिए निश्छल पवित्र मन और शुद्ध आचरण पूर्ण साधनामय जीवन अनिवार्य साधन हैं। मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि यह ब्रह्म सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मच: से ही सदा प्राप्य है'-

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।'' मुंडकोपनिषद् - 3/1/5)

अक्षर ब्रह्म का साधक रचनाकार यदि सत्यता, सम्यक् ज्ञान तपस्या अर्थात अध्ययन मनन की साधना और ब्रह्मचर्य अर्थात काम क्रोध, लोभ, मोह आदि मनोविकारों से मुक्त होगा तब ही सत्साहित्य की सृष्टि संभव है। सुरा और सुंदरी के मोहपाश में जकड़ा अर्थापेक्षी रचनाकार वाक्विलास प्रस्तुत कर क्षण भर के लिए स्वयं और समाज को विस्मय विमुग्ध और भ्रमित कर सकता है, अस्थायी यश लूट सकता है, पुरस्कार भी प्राप्त कर सकता है किन्तु समाज को सत्पथ पर प्रेरित करने वाले, युगयुग तक जीवन को दिशा देने वाले सत्साहित्य का सृजन नहीं कर सकता। ब्रह्म की उपासना के लिए भगवा धारण करने से अधिक आवश्यक मन का वैरागी होना है उसी प्रकार अक्षर-ब्रह्म की आराधना के लिए आचरण की पावन साधना अनिवार्य है। अक्षर-ब्रह्म ब्रह्म का लोकोपकारक प्रत्यक्ष रूप है। अत: उसकी उपासना अनुभूति और सिद्धि भी लोकमंगल का महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

लेखक- वरिष्ठ साहित्यकार है।
9. चैतन्यनगर मालाखेड़ी रोड, नर्मदापुरम - 461001
मो.-9893189466

आलेख

अक्षर पुरुष में ब्रह्म की अवधारणा

डॉ. सरोज गुप्ता

भारतीय ज्ञान परम्परा अक्षुण्ण है। ऋषियों ने प्रज्ञाशील प्रतिभा से सृष्टि की रहस्यमयी प्रक्रिया को नाना विद्याओं द्वारा सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित किया है। सृष्टि अनादि और अनंत है। अणु और महत् दोनों का मूल अनन्त ,अव्यक्त, अक्षर तत्व है। ''**अणोरणीयान्,महतो महीयान**'' के द्वारा ब्रह्मर्षियों ने दोनों की एकता का दर्शन कर अव्यक्त सरोवर, ब्रह्म सर, वाक् समुद्र , अपौरुषेय ज्ञान और अव्यय पुरुष की पांच कलाओं का विस्तार से विवेचन किया है। जिनके नाम हैं–आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् उपनिषदकार का कथन है कि – ''**यदक्षरम् पंचविधं समेति युजो युक्ता अभियत् संवहन्ति। सत्यस्य सत्यम्मनु यत्र युज्यते,तत्र देवाः सर्व एका भवन्ति**''। सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच का उपादान कारण– क्षर पुरुष, निमित्त कारण– अक्षर पुरुष और सबका अधिष्ठान कारण– अव्यय पुरुष है। अव्यय पुरुष की पांच कलाओं में–आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् इनमें शक्ति के द्वारा परिच्छिन्न होने पर सबसे पहले मन का प्रादुर्भाव माना गया। मन की सूक्ष्म और स्थूल अवस्थाओं के साथ मन का श्वोवसीयस नाम से श्रुतियों में व्यवहृत है। वृहदारण्य उपनिषद में तन्मनोऽकुरुत कहकर मूलतत्व आत्मा से मन का प्रादुर्भाव बताया गया है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में –''**कामस्तदग्रे समवर्त्ततादि मनसो रेतः प्रथमं तदासीत्।**'' इस मंत्र के द्वारा मन में इच्छा वृत्ति की बात कही है। मन में रस और बल दोनों तत्व विद्यमान हैं। मन बन्धन और मोक्ष का कारक है। मुक्ति के रुप में एक खोलने वाला दूसरा संसार में आसक्ति द्वारा बांधने वाला। गांठ लगाने और खोलने दोनों में बल की आवश्यकता है। खोलने वाले बल से मन के अनन्तर विज्ञान और आनन्द की अभिव्यक्ति हो जाती है । आनन्द, विज्ञान और मन में मुक्ति साक्षिक कलायें कही जाती हैं, जिनका सृष्टि प्रक्रिया में उपयोग नहीं होता। किंतु बांधने वाली कलायें –मन, प्राण और वाक् सृष्टि साक्षिक कलायें कही जाती हैं। दोनों में मन की महती भूमिका है अतः ऋषियों द्वारा कहा गया है –''**मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो**''। अव्यय पुरुष की पांच कलाओं का विस्तार से निरुपण तैत्तिरीय उपनिषद् में हुआ है। साथ ही शतपथ ब्राह्मण में ''**सोऽयमात्मा मनोमयः प्राणमयो वांग्मय**'' बार बार कहा गया है। ज्ञान,क्रिया और अर्थ इसके मूल तत्व माने गये हैं। सम्पूर्ण ज्ञान का मूलतत्व मन है, क्रिया का मूलतत्व प्राण और अर्थ का मूलतत्व वाक् है। मन और प्राण के बिना वाक् का कोई अस्तित्व नहीं, सूक्ष्म रूप वाक् में मन और प्राण सर्वत्र व्यापक हैं। जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण प्रपंच सृष्टि में क्रिया शक्ति का प्राधान्य परिलक्षित है। जड़ चेतन जगत ज्ञान मय है। महामुनि चरक ने जड़ चेतन की उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट किया है कि –''**सेन्द्रियं चेतनद्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्।**'' अर्थात जहां इंद्रियों का विकास हो गया, वहां चेतनता होती है जहां इंद्रियां गुप्त रह जाती हैं, विकास नहीं पा सकतीं, वह जड़ कही गयीं हैं। जड़ पदार्थ में भी इन्द्रियों का विकास हो जाये तो वह चेतन रुप में परिणत हो जाती हैं। फलों के सड़ जाने पर कीड़े उत्पन्न हो जाते। लकड़ी में आर्द्रता के कारण घुन लग जाता है। चेतन में भी यदि इन्द्रियों का विकास नहीं हो तो वह शिथिल, निष्क्रिय हो जाती हैं। उनमें जड़ता आ जाती है। मन, प्राण और वाक् इन तीनों कलाओं में प्राण के आधार पर अक्षर पुरुष का विकास होता है। अक्षर पुरुष क्रिया प्रधान है। वाक् के आधार पर क्षर पुरुष विकसित होता है जो अर्थ प्रधान है। गीता कहती हैं कि समस्त जीव संसार के क्षर हैं और इनके भीतर विराजमान जो ब्रह्मतत्व है वह अक्षर है।''**क्षरा सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरम् उच्यते**'' **(15.16 श्रीमद्भगवतगीता)** जड़ चेतन रुप सब एक ही है ,सापेक्ष हैं । अक्षर पुरुष प्राण प्रधान एवं क्रिया प्रधान है, इसकी पांच कलाएं हैं– ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अग्नि और सोम। यही पांच कलाएं सृष्टि में परिव्याप्त हैं। पहली तीन कलाएं सृष्टिकाम हैं और अंतिम दो मुक्तिकाम हैं। अक्षरपुरुष रुप ईश्वर के यही पांच रुप हैं। श्रुतियों में अक्षर पुरुष के लिए निर्देश है कि एक वृत्त है परिधि के भीतर के तत्व को बाहर फेंकने वाली शक्ति का नाम इन्द्र है और बाहर फेंकने से जो स्थान रिक्त हो गया उसकी पूर्ति के लिए बाहर से तत्व लेकर पालन करने वाली शक्ति का नाम विष्णु है।

इसप्रकार भीतर बाहर होते रहने पर भी वस्तु को एक रुप में दिखाने वाली प्रतिष्ठा शक्ति का नाम ब्रह्मा है। प्रतिष्ठा स्थिरता रखने के कारण यही सबका उत्पादक कहलाता है। ये तीनों शक्तियां केन्द्र स्थान नाभि में रहती हैं। नाभि में रहने के कारण अक्षर की तीनों कलाएं नभ्य कहलाती हैं। केन्द्र से फेंके हुए रस का प्रतिष्ठाप्राण की सहायता से एक पृष्ठ बन जाता है जिसके दो तत्व होते हैं- एक बाहर जाने वाले और बाहर से अन्दर केन्द्र की ओर जाने वाले। बाहर जाने वाले तत्व का नाम अग्नि है और बाहर से केन्द्र की ओर जाने वाले तत्व का नाम सोम है। ये दोनों कलाएं पृष्ठ कहलाती हैं। इन कलाओं का आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक रुप में विकास हो जाता है। जैसे हृदय आधिभौतिक है। हृदय में देवात्मा का विद्यमान होना आधिदैविक रुप हुआ। शरीर में जो पिंड है उसका अन्तर्वाह्य विस्तार आध्यात्मिक कहलाता है। प्रत्येक पुरुष की पांच कलायें वेदों में वर्णित हैं। इसप्रकार तीन पुरुषों की पंद्रह कलायें हो जाती हैं और सबमें अनुप्रविष्ट विशुद्ध मूल तत्व को एक कला के रुप में गिन लेने पर यह षोडषी कला वाला पुरुष प्रजापति के रुप में श्रुतियों में प्रसिद्ध है।

श्रुतियों में कहा गया है कि प्रजापति का अर्ध भाग अमृतमय है और आधा मर्त्य हो जाता है। अक्षर पुरुष अपने स्वरूप में बना रहता है और उसी का अंश भूतों में विकसित होता हुआ क्षर कहलाता है। यह क्षर पुरुष ही संसार है।

इसमें शक्ति के तत्व जब जाग्रत रहते हैं तब वह परात्पर कहलाता है। यही एकमेवाद्वितीयम् परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर शब्द परात्पर के हैं। इसी अव्यय पुरुष से अक्षर पुरुष उत्पन्न होता है और अक्षर पुरुष से क्षर पुरुष उत्पन्न होता है। अव्यय पुरुष ही सबका मूल आधार है । अव्यय के बढ़ने घटने पर ये सब भी बढ़ घट जाते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ऋषि की वाणी- **''संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरम् च व्यक्ताव्यक्ते भरते विश्वमीशः।''** द्वारा व्यक्त हुई है। क्षर पुरुष नाशवान है इसके विपरीत अक्षर पुरुष है जो कि भगवान की मायाशक्ति है , क्षर पुरुष की उत्पत्ति का बीज है तथा अनेक संसारी जीवों की कामना और कर्म आदि के संस्कारों का आश्रय है वह अक्षर पुरुष कहलाता है। इसमें अक्षर की मदद से पांच कलायें बनती हैं-प्राण, आप, वाक्, अन्नाद और अन्न। शतपथ ब्राह्मण के षष्ठम काण्ड में कलाओं की उत्पत्ति का क्रमिक विवेचन है और प्राणों का नाम ऋषि लिखा है। प्राण से आप् की उत्पत्ति बताई गई है फिर इन कलाओं का आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक रुप में विकास दर्शाया गया है। सबके उत्पादक तत्व आधिदैविक प्रकरण में आते हैं। इनसे दो प्रकार की धाराएं चलती हैं- आधिभौतिक और आध्यात्मिक। प्रत्येक प्राणी का पृथक पृथक शरीर-रुप एक एक पिण्ड बनता जाता है, उसका वाह्य और आन्तर विस्तार आध्यात्मिक रुप कहा जाता है। ब्रह्माण्ड की एक एक शाखा में जड़ चेतन रुप समस्त तत्वों को उत्पन्न करने हेतु जो पांच पिण्ड हैं, उन्हें आधिभौतिक रुप कहते हैं। अतः यह सिद्ध है कि सबके मूल में आधिदैविक रुप है। इससे आधिभौतिक और आध्यात्मिक रुप विकसित होते हैं। आधिदैविक स्थित में क्षर कलाओं के वही नाम हैं जो अक्षर पुरुष कलाओं के थे। ब्रह्मा विष्णु इन्द्र अग्नि और सोम। आधिभौतिक रुप में पांच मण्डलों के नाम हैं- स्वयंभू, परमेष्ठि, सूर्य, पृथ्वी और चंद्रमा। इनके परस्पर संयोग से उत्पन्न होने वाले प्राणिशरीरों की पांच कलाओं के नाम से पहले -बीज-चिति (कारण-शरीर) देव-चिति (सूक्ष्म-शरीर) भूत-चिति (स्थूल-शरीर) प्रजा (सन्तति) और वित्त (सम्पत्ति) ये क्षर प्रकृति के नाम हैं। श्रुतियों में इन्हें ब्रह्म कहते हैं। संसार में दो ही तत्व अनुभव में आते हैं -सत्ता और ज्ञान। असत् से विलक्षणता दिखाने वाली सत्ता सर्वत्र व्यापक रुप से विद्यमान है और जड़ चेतन का विभाग करने वाला ज्ञान भी चेतन जगत में सर्वत्र व्याप्त है। दोनों ही प्रिय हैं। हमारी प्रवृत्ति पदार्थों के संग्रह की खूब रहती है और ज्ञान सम्पादन में भी निरन्तर इच्छा जागृत रहती है। जिस बात को नहीं जानते उसे जानने के लिए सघन प्रयास सब करते हैं। सृष्टि का मूलतत्व रुप परब्रह्म में ऐसी शक्ति है जो प्रपंच को रच देती है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि का कथन है कि **''परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते। स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च।''** शक्ति का नाम बल रखा जाता है। जब वह सुप्त अवस्था में रहता है, कुछ नहीं करता तब वह बल है। जब कार्य करने को समुद्यत हो तो शक्ति कहा जाता है। अन्त में क्रिया रुप होकर उपशांत हो जाता है इसप्रकार एक ही तत्व को बल, शक्ति, क्रिया नाम से कहा जाता है। रसो वै सःरस और बल मूलतत्व शक्ति और शक्तिमान की तरह अभिन्न हैं। एक ही सत्ता यदि एक दूसरे में संक्रान्त होती जाये तो पृथक नहीं मानी जाती। जैसे वस्त्र में बहुत सारे धागे और धागा रुई से अनुगत है। उसीप्रकार शक्ति अपने आश्रय से भिन्न अपनी सत्ता नहीं रखती।

ब्रह्म की शक्ति के धारण करने से मनुष्य में ब्रह्म वेग पैदा होता है। सोम ब्रह्म का तेज है। ब्रह्म तेज ही अव्यक्त को व्यक्त करता है। जिसे ब्रह्म वाजपेय अर्थात ब्रह्म तेज कहा जाता है। ब्रह्म शब्द बृह धातु से बना है जिसका अर्थ बढ़ना, फैलना, व्यास या विस्तृत होना। ब्रह्म परमतत्व है। वह जगत का कारण स्वरुप है। ब्रह्म तत्व से सारा विश्व

उत्पन्न होता है, उसी में लीन और लय होता है। ''**एक मूर्तिःत्रयो देवा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः** '' एक ही अक्षर ब्रह्म में तीन रुप,एक ही शक्ति के तीन व्यापार,एक ही विंदु पर तीन शक्तियां रहती हैं। अ उ और म अक्षर हैं, त्रिपाद ब्रह्म की भास्वती तनू है। जब ओम या प्राणसंज्ञक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण किया जाता है तब परा अपरा ये दो रुप कहे जाते हैं। ''**परे अव्यये सर्व एकीभवन्ति**'' अथवा ''**यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्**'' अव्यय परब्रह्म के लिए ही कहा जाता है। इसप्रकार अक्षर पुरुष में ब्रह्म की अवधारणा पर चिंतन करते हुए यह सृष्टि किसी महान कवि की विलक्षण कविता सी प्रतीत होती है। यह भारतीय दर्शन का हृदय भाग है। भारतीय दर्शन के मूलतत्व को समझने के लिए उसकी जड़ों को समझना होगा। भारतीय ज्ञान परम्परा में श्रृद्धा भक्ति तपस्या साधना की आवश्यकता है। अक्षर ब्रह्म को जानने समझने के लिए साधक को सर्वप्रथम भारतीय दर्शन का प्रारम्भिक ज्ञान आवश्यक है। अक्षर ब्रह्म विषय बहुत जटिल, दुरुह, गूढ़ज्ञानयुक्त एवं रहस्यमय है। इसपर सूक्ष्म निरीक्षणी दृष्टि के साथ अनुशीलन करना उचित होगा । मैंने भी यह लेख अपने परम श्रद्धेय गुरुदेव आचार्य पं दुर्गाचरण शुक्ल जी की प्रेरणा परामर्श मार्गदर्शन में सम्पन्न किया है।

1- वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति-महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा , पृष्ठ-6 से 15

2- बृहस्पति देवता-वेद मार्तण्ड भगवत दत्त वेदालंकार पृष्ठ-202

3- नटराज -जगदीश चन्द्र , पृष्ठ -9/10,

लेखिका: वरिष्ठ साहित्यकार एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
पं दीनदयाल उपाध्याय शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
सागर म. प्र. 470001

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'**कला समय**' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'**कला समय' की एजेंसी के नियम**- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ₹ 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

आलेख

सूखे सरवर उठे हिलोरा, बिन जल चकवा करत किलोला

गोविंद गुंजन

बचपन के स्कूल वाले दिनों में हमारा एक सहपाठी एक दिन अपने साथ एक कागज़ ले कर आया, जो एकदम कोरा दिख रहा था, पर उसे जब धूप में ले जाते, तो उस पर कुछ अक्षर उभर आते. तब वह एक चमत्कार सा लगता था. वह अपनी उस जादुई स्याही के बारे में बहुत उत्साह से बताता, और हम सब मंत्रमुग्ध से उसके इस चमत्कार को देखते रहते। उसके पास वह जादुई स्याही थी जिससे लिखने पर लिखावट गायब हो जाती थी। वह एक गुप्त पत्र लिखने की कला थी, और जिसे यदि पता नहीं हो कि इसे धूप में ही पढ़ा जा सकता है, तो वह उसे पढ़ नहीं सकता था। हम भी उस जादुई स्याही का राज जानने के लिए उत्सुक थे, हम भी वह गुप्त लिखावट की स्याही पाना चाहते थे, पर वह दोस्त अपना राज़ किसी को बताने को तैयार नहीं था. आखिर वह बताता भी क्यों? इस चमत्कारी गुप्त स्याही ने उसे हम सब के बीच 'ख़ास' जो बना दिया था। हम सबको उससे ईर्षा भी होती थी पर तब हम उसकी तारीफ़ भी करते थे।

अक्षरों की यह लुकाछिपी तब एक खेल लगती थी। उस समय हमें यह पता नहीं था कि कोई अक्षर ब्रह्म भी होता है, और ब्रह्म के साकार और निराकार दो रूप होते भी हैं। यदि तब पता होता तो शायद हम यह गुमान भी कर लेते कि हमने उस ब्रह्म के साकार रूप को निराकार में बदलते और उसके निराकार स्वरुप को साकार होते हुए देख लिया है। तब यह सोचना भी मुश्किल था कि किसी चीज़ का दिखाई न देना ही उसका निराकार हो जाना नहीं होता। फिर भी उस बाल सुलभता में धूप में उस छिपे हुए अक्षर ब्रह्म को निराकार से साकार होते देखना चमत्कार लगता था, पर अब लगता है कि उस साकार और निराकार ब्रह्म की यह पल पल परिवर्तित होती हुई लीला को देखने के लिए जो धूप का उजाला चाहिए, उसे देने वाला सूर्य कहीं बाहर नहीं होता, बाहर के आकाश में जो सूर्य है, उससे भी ज्यादा प्रकाशवान किंतु उससे बहुत अधिक शीतल एक और सूर्य भी होता है, जो हमारी आत्मा के भीतर छुपा होता है।

यह वही सूर्य है, जिसे अनादि काल से गायत्री पुकारती रही है। पूरा आकाश आज भी उसी पुकार से स्पंदित है। हमारे ब्रह्मांड के निर्माता पंच महाभूतों या पंच तत्वों में सर्वथा मूक तत्व कोई है, तो वह आकाश है। पर यह मूकता उसकी विकलांगता नहीं है.यह आनन्दलहरी से स्पंदित सौन्दर्य का मौन है। जो सबको नहीं दिखता इसलिए बाहर के आकाश से उसे अपने अर्ध्य की जलधारा के सहारे अपने भीतर उतारा जाता है, क्योंकि बाहर से ज्यादा हमें भीतरी उजाले चाहिए।

जैसे बाहरी आकाश का सूर्य वर्षाकाल में घने बादलों में छिप जाता है, तो अंधकार ही फैल जाता है, उसी प्रकार जब यह हमारी आत्मा का भीतरी सूर्य भी हमारे भ्रम जालों के अँधेरे में छिपा रहता है, तो उसका उजाला हम तक पहुँच नहीं पाता कई बार जीवन में अंधेरों के कितने शेड्स महसूस होते हैं। जब सूरज छिप जाने के बाद हम किसी अंधेरी गली में ठोकर खा कर उल्टे मुंह गिरते हैं और आँखों में तारे झिलमिला जाते है, तब अँधेरे के जो नये शेड्स हमें दिखाई देते हैं , क्या भला हम उसे किसी दिखा सकते हैं? कई बार तो दिन दहाड़े अंधकार ऐसे झटके लगाता हैं कि दिन में भी तारे नजर आ जाते हैं, तब अंधकार के जो शेड़स मन के केनवास पर उभरे आये होंगे , उसे आज भी ब्रह्माण्ड की दसों दिशाओं में कलाएं सदियों से ढूंढ रही है।

इस अंधकार के अनंत शेड़स हैं, कुछ शेड्स जो राहू और केतु हमारे भीतर उभारते हैं उनकी ' आवरणीय शक्ति इतनी अधिक होती है कि वह मध्यान्ह के सूर्य को भी हमारी आँखों के सामने आवृत कर सकती है। तब हमें उस समय सब कुछ नहीं दिखता। ना भला न बुरा। न सुन्दर न कुंदर।

इसी तरह हमारे भीतरी सूर्य के छिपे रहने पर उसकी धूप के बिना हमारे चित्त के कागज़ पर हम उस ब्रह्म की निराकार से साकार होने की जादुई अमृता लीला को निरंतर घटित होते हुए भी, हमें उसकी कोई अनुभूति तक नहीं होती। उसकी कोई थोड़ी सी झलक तक नहीं मिलती जिसमें अनंत इन्द्रधनुष अपने समस्त रंगों के अनंत शेड्स पहने किसी आनन्दोत्सव में झूम झूम कर नाच रहे हैं। हमारी आँखें इस लीला उत्सव की कोई झलक तक नहीं पाती।

हम तो अपने बाहरी आकाश के सूर्य से ही घबराते हैं। हम उसकी धूप

से बचने के लिए कितनी छतरियां बना लेते हैं, उसका क्या कोई हिसाब संभव है? पर उसकी धूप में झुलसते हुए, पसीना बहाते हुए, किसी मन का मुरझा जाना क्या होता है, इसे वही जान सकता है जिसने बाहरी सूर्य की प्रखर धूप से झुलसती हुई किसी कोमल लता को मुरझाते हुए देखा हो। उसे ही पता होता है कि दु:ख, दर्द और वेदनाओं से कोई मन कैसे मुरझाता है। जहां कोई छतरी काम नहीं आती।

इस बाहरी सूरज के ही दिए हुए दिन रात काटते हुए ध्यान ही कहाँ रहता हैं कि कोई दूसरा सूर्य भी है, हमारे अंदर, जो झुलसाता नहीं, शीतलता भी देता है। यह अंदर का सूर्य बाहरी सूर्य से अनंतगुना विराट हैं, पर उसकी तरफ ध्यान ही नहीं जाता।

स्कूल के दिनों में जिस सहपाठी के पास वह गुप्त लिखावट वाली स्याही थी उस का रहस्य जानने की हमारी तीव्र उत्सुकता के चलते जल्दी ही यह पता चल गया था कि नींबू के रस में कोई बारीक सी सलाई डूबों कर कुछ लिखा जाता है तो कुछ देर में वह लिखावट गायब हो जाती है, यदि उसे धूप में ले जा कर कागज़ पर थोड़ी देर धूप आने दे, तो वह लिखावट दिखायी देने लगती है। यही रहस्य था उस गुप्त स्याही का. इस रहस्य को जान लेने के बाद बचपन में उस खेल ने कितना आनंद दिया, उसका विवरण देने की गुंजाइश नहीं है, यह जादुई लिखावट का खेल दूसरों को दिखाते हुए हमें कितना रोमांच होता था, क्या बताया जाए! साँसें गरम हो जाती थी खुशी से. आखें चमकने लगती थी। आवाज़ में गर्व की कोई महीन सी बिजली कौंध जाती थी बिना जाने कि घमंडी होना क्या होता है।

लिखावट गायब हो जाती थी आँखों के सामने से कागज़ कोरा रह जाता था या कोरा दिखता। साकार अक्षर ब्रह्म का देखते ही देखते निराकार हो जाना किसी चमत्कार से कम न था, और अब ये सोचता हूँ कि क्या वह सब इस एक छोटे से नींबू के रस का ही चमत्कार था? क्या होता है नींबू में जो इस चमत्कार को संभव करता है? अब जानता हूँ कि एक अम्ल है उसके भीतर जिसका नाम है– 'सिट्रिक एसीड' जो बड़ा ही रहस्यमय है। इसके अणुओं को खुर्दबीन से देखें तो इसके बड़े बड़े सम–चतुर्भुजीय प्रिज्म के क्रिस्टल दिखते हैं, और यह प्रकृति का बड़ा ही चमत्कारी उत्पाद है। यह जीवों के भीतर खायी हुई वस्तुओं को पचाने के लिए जरुरी होता है। कितनी सारी वस्तुएं जीव खा जाते हैं, और यह सबको पचा देता है। ये जीवात्माएं दग्गड पत्थर तक खा जाती है. इस 'सिट्रिक एसीड का बड़े बड़े सम–चतुर्भुजीय प्रिज्म के क्रिस्टल जब खायी हुई चीजों को चूमतें है, तो चीजे पच जाने की हद तक पिघलने लगती है। कभी जिनका क्षर नहीं होता वो अक्षर भी जब पचा लिए गए तो दूसरी चीज़ों की औकात ही क्या है? ऐसा है ये एसीड ! जो नींबू के भीतर भरा हुआ है. इसका स्वाद खट्टा है, पर इसकी खटास दूसरे स्वादों को बढ़ा देती है. खट्टे के साथ मीठे की जोड़ी है और यह जोड़ी चूँकि स्वर्ग में बनी हुई है, इसलिए इनकी जुड़ाई अमृत से हुई है. खटास के बिना मिठास टिक नहीं सकती, यह वैज्ञानिक सत्य है. जीवन के सारे स्वादों पर यह सत्य लागू होता है। यही है जो जीवन को खटमीठा बनाता है. यह खटास हमारे संसार के षट रसों का एक अनिवार्य अंग है जो अनुभवों को अपना अपना स्वाद देते हैं. हमारे जीवन के अनुभव भी इन रसों की तरह मधुर, अम्लीय या खट्टे, नमकीन, कटु, तिक्त या कषाय (कसैले) होते हैं। इन सारे षट रसों की जड़े शब्दों के भीतर निराकार अवस्था में शब्दामृत से सिंचित होती रहती हैं, और शब्दों से उतर कर वस्तुओं से ले कर फलों फूलों तक में इसकी सत्ता व्याप्त है. वाणी के भी अपने रस होतें है. ये सारे रस उसकें नाद में अभिव्यक्त होतें हैं. शब्दों में नाद होता है,जिसके कारण हम उन्हें सुन पाते हैं। कुछ शब्दों के नाद हमारी अशांति को सोख लेतें हैं, और एक माधुर्य से भरी गहरी प्रसन्नता चित्त को शांति की सुधा से भीगों देती हैं. जैसे गुलाब जामुन चासनी में भीग रहें हों, ऐसी माधुर्य से सुगंधित कोई मिठास व्यक्तित्व से प्रसारित होने लगती है।

कोई वाणी शब्दों से झरते हुए ऐसा नाद करती हैं कि सुन कर मन कसैला हो जाता हैं। ऐसी कडुवाहट भर जाती है मन में उन शब्दों के उच्चारक के प्रति, कि कितना भी थूक लो, कडवाहट दूर नहीं होती. यह सब उसी शब्दब्रह्म की लीला है, जो अक्षय अक्षर हैं. इसलिए बोले हुए शब्दों का प्रभाव मन से मिटता नहीं।

सृष्टि के प्रथम प्रहर का नाम ब्रह्म कल्प है, जिसमें सर्व प्रथम ब्रह्मा का उदय हुआ था. एक विराट कमल की गादी पर जब ब्रह्मा ने स्वयं को विराजित देखा, तब सर्वत्र उसी विराट कमल का प्रसार था.सारी सृष्टि जल में डूबी हुई थी। देर तक कमल की गद्दी पर बैठे बैठे इस अक्षरब्रह्म को जब कहीं कोई लोक दिखाई नहीं दिया तो वह आँखें फाड़ कर आकाश में चारों तरफ देखने लगा, वह गर्दन घुमा घुमा कर चारो दिशाओं में देख रहा था इसलिए उसके चारों दिशाओं में चार मुख हो गये, इसलिए अब हमारे इस अक्षर ब्रह्म के भी सारे स्वर और सारे व्यंजन भी चतुर्मुखी है। हमारे अक्षर भी चारों दिशाओं में देखते हैं, और उन दिशाओं के चारों कोने भी टटोल लेते हैं, और फिर चारों दिशाओं को ऊपर और नीचे दोनों तरफ से भी देख लेते हैं. जब ये चारों दिशाओं को दसों तरह से देख लेते है,तो इनकी आँखों से कुछ भी छुपा नहीं रहता।

इसी अक्षर ब्रह्म ने हमारे संसार को रचा है. इसी अक्षर ब्रह्म का एक नाम 'क' है। इसी 'क' से काया शब्द आया है. हमारे संसार को रचने के लिए इस 'क' ब्रह्म ने स्वयं को दो भागों में बाट लिया था, जिसके एक भाग से एक पुरुष जन्मा था जिसका नाम मनु था, दूसरे भाग से एक स्त्री का जन्म हुआ, जो अत्यंत रूपवती थी, उसका नाम था 'शतरूपा'। जो शत शत रूपों से सृष्टि में मातृत्व रूप से व्याप्त हुई है। इसी प्रथम पितृ पुरुष मनु और माता शतरूपा से हमारी मानवीय सृष्टि का भी विस्तार हुआ है। हम सभी उसी प्रथम पुरुष मनु की संतानें हैं, इसलिए मनुष्य कहलाते हैं।

इस सृष्टि के विस्तार होने पर फिर यह अक्षर ब्रह्म समस्त मानवीय एवं समस्त जैविक सृष्टि के मुख में वास करने लगा. हम उसी प्रथम पुरुष मनु की संतानें हैं, इसलिए मनुष्य कहलाते हैं. वही परम पिता ब्रह्म मुख में वाणी बन कर रहने लगा. मुख में से यह अक्षर ब्रह्म कंठ, तालु, मूर्धा, दंत एवं ओष्ठ इन पांच स्थलों से प्रकट होता है. ये स्वर एवं व्यंजन दो स्वरूपों में रहता है। प्रथम स्वर रूप में यह अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है, अत: इनका उच्चारण स्वतंत्र रूप से होता है, दूसरा रूप उसकी बनायी हुई व्यंजन सृष्टि का है, जिन्हें बिना स्वर-ब्रह्म की सहायता के उच्चारित नहीं किया जा सकता। हम सभी प्राणी उसके व्यंजन रूप है, जिनका नाद स्वतंत्र नहीं है। हमारे भीतर भी उस स्वर ब्रह्म के बिना कोई ध्वनि स्पन्दन नहीं हो सकती क्योंकि वह अक्षर ब्रह्म ही हमारे भीतर वाणी का वरदान संभव करता है। वह स्वयं निराकार हैं, पर हमारे कल्याण के लिए साकार शब्द रूप भी धारण करता है। हमारी वाणी, हमारी बोली, हमारी भाषा, हमारे अक्षर, हमारे शब्द ये सभी उसी अक्षर ब्रह्म की लीला है, जिसके बिना हमारे जीवन को कोई अर्थ नहीं मिल सकता।

इस अक्षर ब्रह्म ने वाणी का जैसा वरदान मनुष्य को दिया है, वैसा दूसरे प्राणियों को नहीं मिला है। बोलते तो अन्य प्राणी भी है, पर संपूर्ण वाक् का वरदान ब्रह्मा की सृष्टि में केवल मनुष्य को ही मिला है. इसका कारण यह है कि पंच महाभूतों को अपने वास के लिए यही मनुष्य देह रुची। ऐतरेयोपनिषद में इस विषय में विस्तार से चर्चा मिलती है। इसके अनुसार सृष्टि के निर्माण काल में परमात्मा ने हिरण्यगर्भ पुरुष को उत्पन्न किया। परमात्मा के तप रूपी संकल्प से हिरण्यगर्भ पुरुष के शरीर में सर्वप्रथम अंडे की भांति फूट कर मुख छिद्र निकला। मुख से वाक् इन्द्रिय उत्पन्न हुई। वाक् इन्द्रिय से वाक् का अधिष्ठाता देवता अग्नि उत्पन्न हुई। फिर नासिका के दोनों छिद्र हुए, उनमें से प्राण वायु प्रकट हुआ। नासिका से ही प्राण इन्द्रिय और उसके देवता अश्विनीकुमार भी प्रकट हुए। मुख से वाक् इन्द्रिय के साथ साथ रसना इन्द्रिय और उसके देवता उत्पन हुए। इसी प्रकार से क्रमश: नेत्र इन्द्रिय एवं उसके देवता सूर्य, तथा श्रोत इन्द्रिय तथा उसके देवता और दिशाओं की उत्पत्ति हुई। फिर त्वचा या स्पर्श इन्द्रिय, ह्रदय एवं मन की उत्पत्ति हुई। परमात्मा के द्वारा रचे गए सभी इन्द्रियों के देवता संसार रूपी समुद्र में आ पड़े। उन्हें रहने के लिए कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं होने से एवं परमात्मा द्वारा ये सब भूख एवं प्यास से संयुक्त किये जाने के कारण व्याकुल हो कर परमात्मा से अपने रहने के लिए उपयुक्त स्थान की मांग करने लगे।

परमात्मा ने तब उन्हें रहने के लिए एक गौ का शरीर बना कर दिखाया। उसे देख कर उन्होंने कहा–भगवान् ! यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। इससे श्रेष्ठ किसी दूसरे शरीर की रचना कीजिये। तब परमात्मा ने उनके लिए घोड़े का शरीर रच कर दिखाया। उसे देख कर वे बोले– 'भगवान् ! यह भी हमारे लिए यथेष्ठ नहीं है, इससे भी हमारा काम नहीं चल सकता। तब परमात्मा ने उनके लिए मनुष्य की रचना की और यह शरीर उन्हें दिखाया. उसे देखते ही सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'यह हमारे लिए बहुत सुंदर निवास स्थान बन गया. इसमें हम आराम से रह सकेंगे और हमारी आवश्यकताएं भी भलीभांति पूरी हो सकेंगी।

सृष्टिकर्ता की आज्ञा से अग्नि देवता ने वाक् इन्द्रिय का रूप धारण किया और मनुष्य के मुख में प्रवेश कर के जिव्हा को अपना आश्रय बना लिया। वरुण देवता भी रसना इन्द्रिय बन कर मुख में आ बसे. वायु देवता ने प्राण बन कर नासिका में जगह बनायी. सूर्य देवता ने नेत्रों में स्थान पाया। इसी प्रकार अन्य देवता भी मनुष्य की देह में अपने अपने स्थान चुन कर प्रविष्ठ हो गए।

इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट है कि परमात्मा ने सब इन्द्रियों के अधिष्ठित देवताओं के निवास हेतु जिस सर्व श्रेष्ठ देह की रचना की, वह मनुष्य की ही देह है. यही कारण है कि मनुष्य अपनी वाणी, रसना, नेत्र, कर्ण एवं स्पर्शेन्द्रिय से जो सुख पा सकता है, वैसा सुख अन्य प्राणियों के लिए दुर्लभ है ; क्योंकि इन सभी इन्द्रियों के देवता उसकी देह में सुखपूर्वक वास करते हैं।

आज हम यह भूल गए हैं, कि हमारी वाणी में स्वयं ब्रह्मा का वास है, हमारे मुख में अग्नि, वरुण, वायु, सूर्य चंद्र जैसे देवताओं नें भी अपने रहने की जगह पसंद की है। रघुवंशी राजाओं ने यह समझा था, इसीलिये वे अपने वचन का इतना मान रखते थे।' रघुकुल रीति सदा चली आयी, प्राण जाय पर वचन न जाई।' तुलसीदास ने ऐसे ही नहीं कहा था। इस ब्रह्मा एवं देवताओं का वास जब तक हमारे भीतर रहता हैं, तब तक ही हम जीवित रहते हैं। अत: उनका सम्मान करना हमारा

धर्म है। यह ब्रह्म ही जीवन का सत्य है. वायु देवता जैसे ही इस देह को त्याग जाते हैं, वैसे ही हमारी साँसें भी थम जाती है। वायु देवता के जाने के बाद अग्नि देव भी जाने लगते हैं, और यह देह ठंडी हो जाती है. आप लाश को छू कर उसके ठंडेपन से ही बता सकते हैं कि यह एक लाश है, जीवित देह नहीं; क्योंकि अग्नि देवता की उपस्थिति से देह में जो एक गर्मी बनी रहती है वह उनके चले जाने के बाद बचती नहीं। अत: हमारे भीतर यह भाव बना रहना चाहिए कि हमारे जीवन को जो संभव करते हैं, वे देवता हमारे भीतर वास करते हुए कभी लज्जित ना हों।

मुंडकोपनिषद में 88 हजार ऋषियों के गुरुकुल के अधिष्ठाता शौनक ऋषि से महर्षि अंगिरा ने स्पष्ट रूप से कहा था कि सत्य ही इस वाक् देवता की शक्ति है। वे घोषणा करते हैं कि– **'सत्यमेव जयति नानृतं, सत्येन पंथा विततो देवयान:'** (सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। ईश्वर सत्य स्वरुप है, अत: उनकी प्राप्ति के लिए के लिए सत्य ही उस ब्रह्म को पाने के लिए अनिवार्य साधन है। यह समझना कि मिथ्याभाषण और मिथ्याचरण से हम जीवन में सफल हो सकते हैं, बहुत बड़ी भूल है। क्षणिक समय के लिए जिसे हम अपनी विजय या सफलता समझ रहे हैं वह हमारे लिए विनाश का कारण बन जाता है। उपनिषद के ऋषि ने यह भी कहा है कि असत्य भाषण से सर्वनाश हो जाता है। जो मार्ग हमें परब्रह्म के शक्ति केंद्र या परम जीवन की ओर ले जाता है, वह मार्ग देवयान कहलाता है, और वह मार्ग सत्य का ही मार्ग है।

बोलते समय यदि यह ध्यान रहे कि हम वाणी के द्वारा अक्षर ब्रह्म की शक्ति का उपयोग कर रहे हैं तो वाणी मंत्र बन जाती है. तुलसीदास की चौपाइयाँ उनके मुख से निकल कर मंत्र बन गयी है. कबीर कहते हैं– **'ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय, औरन को शीतल करे, आपहूं शीतल होय।'** इस पंक्ति में बोलने की विधि समझाई गयी है। जब हम बोलते हैं, तब हमारे भीतर यह भाव बना रहता है,कि यह हम बोल रहे हैं। यह हमारा अहं है। मन का यह अपनापन, अहं या आपा हमारी वाणी को अहं की गर्मी से तप्त रखता है, इसलिए वह ब्रह्म की वाणी नहीं रह जाती। जब हम अपना यह आपा विसर्जित कर देते हैं, तब वाणी में अक्षर ब्रह्म की ब्रह्मशक्ति जाग्रत होती है। ब्रह्म और मैं के बीच से इस– 'मैं पन' को विसर्जित करते ही वाणी मंत्र बन जाती है. फिर हमारी वाणी से हम नहीं ब्रह्म बोलने लगता है. कबीर साहब ने हमें एक चेतावनी भी दी है –**'शब्द सम्हारै बोलिए, शब्द के हाथ न पाँव/ एक शब्द औषधि करे, एक करे घाव।** ' शब्द के हाथ पैर या आकृति नहीं होने का संकेत यह है कि यह शब्द निराकार अक्षर ब्रह्म है।

हमारी वाणी से हम बोल रहे हैं या ब्रह्म ही आकाशवाणी कर रहे हैं यह अंतर ब्रह्म और मैं के बीच से मैं के गिर जाने प्रकट होने लगता है। कोयल बोल रही है या कागा, यह तो बोलने पर ही प्रकट होता हैं, अन्यथा दोनों दिखने में एक जैसे ही लगते हैं। रहीम के वचन है– **'दोनों रहिमन एक से, जो लौ बोलत नाहि/जान परत है काक पिक, ऋतु बसंत के माहि।'**

जब हमारे जीवन की वसंत ऋतु आये, तब हमें यह परीक्षण कर लेना चाहिए कि हमारे भीतर से कौन बोल रहा है। कागा बोल रहा है या कोकिल बोल रहा है. हमारा मैं (अहं) बोल रहा हैं या ब्रह्म बोल रहा है। यदि कागा ही बोल रहा हो तो सावधान होने की आवश्यकता है, अन्यथा हमारा अक्षर ब्रह्म बोलेगा ही नहीं।

रघुवंश में कालिदास ने शब्द और अर्थ के एक्य को शिव एवं शिवा की तरह अभिन्न माना है. शब्द साक्षात शिव है, उसका अर्थ पार्वती है– **'वागार्थाविव संपृकतौ वागर्थ प्रतिपत्तये / जगत: पितरौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ।'** जैसे वाणी और उसका अर्थ विलग नहीं होता, उसी प्रकार जगत पिता शंकर और माँ पार्वती भी शब्द और अर्थ की भांति कभी विलग नहीं होते। मैं वाणी और वाणी का अर्थ प्राप्ति के लिए भवानी शंकर की प्रार्थना करता हूँ। तुलसी दास ने भी शब्द और अर्थ के युगल की एकता को शिव पार्वती की एकता की तरह ही माना है, किन्तु उसमें उन्होंने श्रध्दा और विश्वास का अमृत भर दिया है। शिव विश्वास रूपी शब्द है, और पार्वती अर्थ रूपा श्रध्दा। यदि वाणी ब्रह्म रूपी शिव की हैं तो वह तर्कातीत ही होगी. उस पर विश्वास करने के अलावा कोई उपाय नहीं है। यदि यह विश्वास रूपी शब्द श्रध्दा रूपी अर्थ शक्ति से संयुक्त हो जाए तो वाणी सार्थक हो जाती है—**'भवानी शंकरौ वंदे, श्रद्धा विश्वास रूपिणौ/ याभ्या बिना न पश्यन्ति, सिद्धा स्वांतस्थमीश्वरौ।'**

इस गुप्त रहस्य को जानने के बाद लड़कपन का वह कागज़ पर लिखी गुप्त लिखावट का खेल याद करके हँसी आती है, जब नींबू के रस से लिखे शब्द लुप्त हो जाते थे, और धूप में उसे ले जाने पर फिर से दिखने लगते थे।

काश! अब तो अपनी अंतरगुहा में स्थित महासूर्य के प्रकाश में इस अलोकिक, सर्व समर्थ निराकार अक्षर ब्रह्म की सत्ता के वैभव से अपनी आत्मा को संपन्न करने की घड़ियाँ आये। श्रद्धा और विश्वास रूपी शब्दार्थ से अपनी आंतरिक शुष्कता को सरसता से भरने की ऋतु आये, उस अनाहत ओंकार नाद का अमृत हमारी चेतना में भी झरे और जीवन को सार्थक कर जाए।

18, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल के पीछे, खंडवा (म.प्र.) 450001
मोबाईल 094253-42665

आलेख

शब्द ब्रह्म

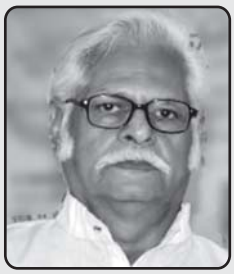

कैलाश चंद्र घनश्याम पांडेय

शब्द ब्रह्म हो जाते हैं यही सत्य है। मानव विकास की श्रृंखला में यदि हम पाषाण युगीन जीवन को छोड़ दें तो भी शब्द से मनुष्य का नाता सैकड़ों-सैकड़ों शताब्दियों के बाद ही जुड़ा यह प्रामाणिक रुप से कह नहीं सकते। तब शब्द थे या नहीं थे ? तब मानव व्यवहार आज की तरह था या मूक पशुओं की तरह। हो सकता है जिस प्रकार पशु-पक्षी, चौपाये या अन्य प्राणी कुछ संभाषण करते हैं वैसा ही मानव स्वभाव रहा हो।

विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में जिनकी गणना की जाती है उनमें मिश्र मेसोपोटामिया सिंधु तथा चीन की सभ्यताएं प्राचीनतम मानी गई हैं। जहां तक शब्दों का प्रश्न है इन चारों सभ्यताओं के पास शब्द मौजूद थे किसी ने उन्हें चित्र लिपि में गड़ा तो किसी ने उन्हें कील लिपि में बनाया। चारों सभ्यताओं में जो लिपियॉ मिली हैं वे सैकड़ों सालों बाद लोगों के लिए ''ब्रह्म'' के समान हो गई। जिस तरह ''ब्रह्म'' को पाया नहीं जा सकता उसी प्रकार प्राचीन शब्दों के रूप में लिखी प्रत्येक लिपि को पढ़ा नहीं जा सकता। यों, समझ लीजिए कि वह गूंगे को गुड़ के समान हैं। पढ़ने का दावा तो कर सकता है पर प्रमाणित करने में असमर्थ होता है। ब्रह्म का आनंद कैसा होता होगा? उसे पाने वाला ही जानता है। पर इसे आज दिन तक कोई व्यक्त नहीं कर पाया। शब्द जब ब्रह्म हो जाता है तो मनुष्य उसकी पहुंच कायम करके कुछ रहस्य को सर्वमान्य कर देता है वहीं तक उसकी प्राप्ति स्वीकृत हो जाती है। मेरा यह ''शब्द'' अव्यक्त ''शब्द ब्रह्म'' से बहुत अन्य हैं। पाठक जिसकी कल्पना कर रहे हैं पर मेरा ''शब्द'' याने 'काल विशेष में लिखी गई लिपियां' हैं और ''ब्रह्म'' से तात्पर्य 'उनका अर्थ जानने वाले लोग' हैं।

प्राचीन मिस्त्र में जिस प्राचीन लिपि का प्रयोग होता था वह ''हाइरोग्लाइफिकं'' कहलाती हैं। इसका प्रचलन कोई 5000 हजार वर्ष पूर्व प्राचीन मिस्त्र में रहा। मिस्त्री सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक है और वहां लिखी-पढ़ी जाने वाली चित्रलिपि थी जिसमें वहां की राजाज्ञाएँ लिखी जाती थी। इस लिपि का विकास मिस्त्र के प्राचीन पुजारियों ने किया था जिसमें वे अपनी उद्घोषणा को लिपिबद्ध करते थे। कोई 3000 वर्षों में इन पुजारियों ने अपनी इस चित्रलिपि का इतना विकास कर लिया था कि उन्होंने मिस्त्र साम्राज्य के सैकड़ों विवरणों को पत्थरों एवं मकबरों की दीवारों पर चित्रित कर दिया था। समय एकसा नहीं रहता। यूरोप में इसाईयत का जोर बढ़ा। चैथी शताब्दी में जब ईसाई धर्म रोमन साम्राज्य का राज्य धर्म बन गया। रोमन सम्राट थिओडोसियस प्रथम ने 391 ईस्वी में पेंगनों के सभी मंदिरों को बंद कर दिया। मिश्र, रोम का पराजित देश था अत: वहां की संपूर्ण धार्मिक विधियां भी धीरे-धीरे बदल गई और मिस्त्र के प्राचीन पुजारियों द्वारा तैयार की गई चित्रलिपि के अक्षर ब्रह्म हो गए। छठी शताब्दी आते-आते मिस्त्र की लिपि तथा मेसोपोटामिया (ईरान के दजला और फरात नदियों के बीच विकसित सभ्यता) की कील लिपियां विलुप्त हो गई।

सिंधु घाटी सभ्यता में भी चित्रलिपी का प्रयोग होता है था। इसका प्रमाण हमें हड़प्पा मोहनजोदड़ो और इसके समकालीन अन्य ताम्राश्मीय नगरों से प्राप्त मृण मोहरों पर प्राप्त हुआ है। परवर्ती काल में आर्यों के पास लिपि नहीं थी, ऐसा पाश्चात्य इतिहासकार बताते हैं। परंतु, भारतीय अस्मिता से जुड़े अनेक इतिहासकार जिन में विष्णु श्रीधर वाकणकर ''पद्मश्री'' आदि सम्मिलित हैं, अपना यह मत देते हैं कि वैदिक साहित्य में सोने-चांदी से बनी चूड़ियों से लेखन का विवरण मिलता है। इसके कुछ प्रमाण वैदिक साहित्य में उपलब्ध भी है जैसे- **अथर्ववेद में उल्लेखित है कि - ''लोहिणे स्थाधितिना मिथुन कर्णयो कृधि।'' अर्थात लौह सूची से गायों के कानों पर मिथुन चिन्ह अंकित किया जाना चाहिए ताकि अच्छी प्रजा उत्पन्न हो।** ऐसे अनेक विवरण है जिससे अब प्रमाणित किया जाता है जा सकता है कि आर्यों के पास भी अपनी कोई लिपि थी। परंतु, आर्य ऐसे प्रदेश में निवास करते थे जो मैदानी था जहां मिस्त्र और मेसापोटामिया की तरह पाषाण उपलब्ध नहीं था, नहीं वैसे पहाड़ थे जिन पर कुछ खोदा जा सकता था अथवा चित्रित किया जा सकता

था इसलिए यह निर्विवाद स्वीकार करना पड़ता है कि आर्यो का अपना ही ब्रह्म था।

भारत में सम्राट अशोक के लेखन कला विकसित थी और उसका सर्वप्रथम प्रयोगधम्म के प्रचार-प्रसार पर उपयोग किया। अशोक ने अपने समकालीन अरेमाइक, खरोष्ठी, यूनानी और ब्राह्मी लिपि को अपने शिलालेखों में खुदवा कर भारत में शब्द परंपरा की शुरुआत की। अब यूं समझिए कि यह सारे शब्द किस प्रकार ब्रह्म हो गए। मिस्र मेसोपोटामियां की लिपियां धर्म परिवर्तन के कारण समाप्त हो गई। सम्राट अशोक की चलाई हुई ब्राह्मी लिपि अपने परिवर्तन के साथ-साथ कोई 1000 वर्ष बाद किस प्रकार विलुप्त हो गई इसका विवरण तारीख-ए-फिरोजशाही में मिलता है। लेखक शम्स-ए-सिराज लिखता है कि- ''खिजराबाद दिल्ली से 90 कोस पहाड़ियों के पास स्थित हैं जब सुल्तान फिरोजशाह इस जिले में गया तो उसने तोबरा गांव में एक स्तंभ देखा। उसने निश्चय किया कि इसे दिल्ली ले जाना चाहिए। यह अगली पुश्तों के लिए स्मारक रहेगा। तब सुल्तान ने आदेश दिया कि दोआब और दोआब के बाहर रहने वाले लोग और सारे सैनिक चाहे सवार हो चाहे प्यादे सभी उपस्थित हों और अपने साथ उपयुक्त औजार लाएं यह भी आदेश हुआ कि सेमल की रूई के गद्दे लाए जाएं ------ और कुछ दिन बाद स्तंभ जमीन पर रख दिया गया। जब नींव को देखा तो मालूम हुआ कि स्तंभ एक चैकोर पत्थर पर खड़ा था। उसको भी वहां से हटाया गया। फिर ऊपर से नीचे तक स्तंभ को कच्चे चमड़े से ढका गया फिर 42 पहियों की गाड़ी बनाई गई प्रत्येक पहिए में रस्से बांधे गए बड़े परिश्रम से स्तंभ को उठाकर गाड़ी में रखा। इस प्रकार उसको जमुना नदी के तट पर पहुंचाया गया फिर बहुत सीना में खट्टी की गई बड़ी चतुर्दशी स्तंभ को इन नामों पर रखा गया और दिल्ली में फिरोजाबाद ले जाया गया वहां उतार कर अपार श्रम और कला के साथ कुछ तुम्हें पहुंचाया गया। जब स्तंभ महल में लाया गया तो उसके लिए एक भवन का निर्माण शुरू हुआ जो जामी मस्जिद के निकट था। इस काम के लिए बड़े योग्य कारीगर लगाए गए। यह चुने और पत्थर का बनाया गया था और इसमें कितनी ही सीढ़ियां थीं। जब एक सिड़ी बन जाती थी तो स्तंभ को उसके ऊपर रखकर फिर दूसरी सीड़ी बनाकर स्तंभ रखा जाता था। फिर उसको सीधा खड़ा करने के कई उपाय किए गए। ---स्तंभ कों बांस के समान खड़ा किया गया।--- चोकोर पत्थर का उपयोग तोहरा गांव में किया जा चुका था उसको स्तंभ के नीचे रख दिया। जब यह खड़ा हो गया तो इसके सिर पर काले और सफेद पत्थर के अलंकरण रखे गए। इसके ऊपर एक सोने का कलश चढ़ाया गया। **स्तंभ की ऊंचाई 32 गज थी जिसमें से 8 गज जमीन के अंदर और 24 गज बाहर दिखाई देता था। स्तंभ पर नीचे की ओर हिंदी अक्षरों में कई पंक्तियां लिखी हुई थी बहुत से ब्राह्मणों और हिंदू साधुओं को पढ़ने के लिए बुलाया गया परंतु कोई नहीं पढ़ सका।''**

फोटो- दूत यूनेस्को, नवम्बर 1988 के सौजन्य से

वास्तव में यह स्तंभ सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था। आजकल यह दिल्ली गेट के बाहर फिरोज शाह के तीन मंजिलें कोटले पर खड़ा है। कोई 1000 साल के अंतराल में ही भारतीय लोग सम्राट अशोक को भूल गए थे। लोग इन स्तंभो को ''भीम की गदा'' बताते थे। इस अशोक स्तंभ पर सम्राट अशोक के सात अभिलेखों के साथ-साथ विसलदेव चैहान के तीन लघु लेख तथा मध्यकालीन यात्रियों के कुछ अन्य लेख उत्कीर्ण हैं। लोग पढ़ना नहीं जानते थे इसलिये मसके बाजी के साथ कह दिया- **''हजूर, इनके लिखने वाले देवता लोग थे वे लिखकर ब्रह्म लोक चले गये।'' हो गया न शब्द ब्रह्म?** जब लोग सम्राट अशोक को ही भूल गए तो उस पर लिखे शब्द ब्रह्म हो गए। यह विश्वास कर लिया गया कि इन्हें ब्रह्माजी के सिवा कोई नहीं पढ़ सकता। मेरी दृष्टि में यही शब्द ब्रह्म है।

हम अंग्रेजों को अक्सर कोसते रहते हैं- उन्होंने हमारा इतिहास बिगाड़ दिया, हमारे इतिहास के साथ छेड़छाड़ की, पर वास्तविकता से देखा जाय तो इतिहास उनके पहले था ही कहां? हम अपने देश के राजाओं की रचनाओं को महाभारत और रामायण के पात्रों से जोड़ देते थे। बस इतना ही इतिहास भर था क्योंकि भारतीयों को अपनी ही प्राचीन लिपियों का ज्ञान नहीं के बराबर रहा। भारत में सम्राट अशोक के शिलालेखों को पढ़ने का सर्वप्रथम श्रेय सर जान प्रिंसेप को दिया जाता है। जिन्होंने हमें यह बताया कि भारत में सम्राट अशोक नाम का एक महान शासक हुआ जिसने अपने काल में सबसे पहले शब्द लेखन की परंपरा प्रारंभ की।

भारतीय तो क्या मिस्र के लोग भी 2000 साल के अंतराल में इन दौरों से गुजरे। जब मिस्र ईरान-इराक का संपूर्ण क्षेत्र मुस्लिम धर्मावलंबी हो गया है और प्राचीन मिस्र की परंपराएं काफिर हो गई लेकिन शब्द ''ब्रह्म'' है वह कभी मिटता नहीं है। प्राचीन मिस्र की हाइरोग्लाइफिक साथ भी यही हुआ।

18 वीं शताब्दी में यूरोप से चलकर नेपोलियन जब मिस्र पर आक्रमण करने गया तब वह अपने साथ 150 से अधिक विद्वानों को भी ले गया ताकि विजित क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जा सके। साथ गये विद्वानों ने भी अथक परिश्रम कर मिस्र के इतिहास लेखन महत्वपूर्ण कार्य किया। यह काम कार्य नौ खंडों में प्रकाशित है। कहते हैं कि प्राचीन काल में ब्राह्मण नदियों के किनारे ''ब्रह्म'' की उपासना करते थे। नेपोलियन भी जब अपने मिस्र विजय के अभियान पर गया तो उसने नील नदी के उद्गम स्थल पर अपना पड़ाव डाला।

नेपोलियन के युद्ध अभियान के दौरान ही 1799 में अलेक्जेंड्रिया के पूर्व में रोजेटा के पास खुदाई हो रही थी। वहां नेपोलियन के एक अधिकारी को एक काले रंग का पत्थर दिखाई दिया जिस पर कुछ खुदा हुआ था। उसके वरिष्ठ अधिकारी जनरल मेनाओं ने इस पत्थर को अलेक्जेंड्रिया पहुंचा दिया। विद्वानों ने पाया कि इस पर तीन प्रकार के पाठ खुदे हुए थे। सबसे ऊपर चित्र लिपि की आकृतियां खुदी हुई थी, दूसरे भाग के अक्षर अरबी भाषा के समान दिखते थे और सबसे नीचे के भाग में ग्रीक अक्षर खुदे थे। दल के कई विद्वानों को ग्रीक भाषा आती थी अत: उन्होंने शीघ्र ही पत्थर पर खुदे हुए नीचे के पाठ को पढ़ लिया और यह अनुमान लगा दिया कि यही पाठ अन्य दो भाषा में भी खुदा हुआ है।

अब इन विद्वानों के हाथ में मिस्र की प्राचीन लिपि को पढ़ने की कुंजी हाथ आ गई थी लेकिन दुर्भाग्य से आगे चलकर फ्रांसीसी सेना को ब्रिटिश सेना के साथ के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा और अंग्रेजों ने इस रोजेटा पत्थर को अपने कब्जे में ले लिया तब से यह अभिलेख लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में है। शब्द अगर ब्रह्म है तो ब्रह्म की उपासना करना पड़ती है। जो ब्रह्म उपासक होता है वही शब्दों को समझ पाता है। रोजेटा अभिलेख भले ही इंग्लैंड पहुंच गया परंतु इसका पढ़ने का श्रेय फ्रांसीसी विद्वान जीन फ्रैंकोइस चैंपोलियन को है। जब यह व्यक्ति 13 वर्ष का था तभी उसने रोजेटा अभिलेख को पढ़ने की सौगंध ले ली थी। उसका दृढ़ निश्चय था कि वह इस चित्रलिपि को पढ़ने वाला पहला व्यक्ति होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने 13 वर्ष की आयु में लेटिन ग्रीक, हिब्रू, अरबी और सीरियाई भाषा में सीखीं। 17 वर्ष की उम्र होते-होते उसने फारसी व कॉप्टिक भाषा का भी अध्ययन किया और आगे चलकर रोजेटा पाषाण अभिलेख को पढ़ने का संकल्प पूरा किया। यह शब्द

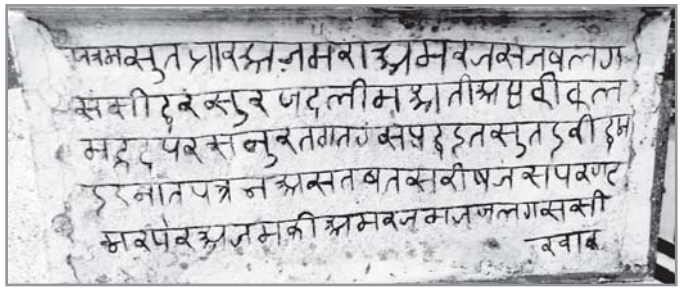

''ब्रह्म'' का रहस्य जो बिना साधना के पूरा नहीं होता।

दुनिया के विभिन्न भागों में आज भी हजारों ऐसे अभिलेख मौजूद हैं जिनका कोई प्रामाणिक वाचन नहीं कर पाया, उन्हें हमारी सिंधु लिपि भी सम्मिलित है। इसके वाचन के दावे तो अनेक हो चुके हैं परंतु शब्द ब्रह्म का रहस्य अभी तक नहीं सुलझा है। आशा है पाठकों को यह 'शब्द ब्रह्म' की 'उलट बासी' समझ में आ गयी होगी, ना आवे तो इस लेख के साथ मैं एक अभिलेख लगा रहा हूं। यह अभिलेख ना तो हाइरोग्लाइफिक लिपि में लिखा है और नहीं सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि में। **यह केवल 200 वर्ष पहले लिखे हुए शब्द हैं यदि किसी को इसका ब्रह्म ज्ञान हो जावे तो लेखक को अवश्य अवगत करावे। सिद्धिरस्तु।**

लेखक- वरिष्ठ पुरातत्वविद् है।
श्री दशपुर प्राच्य शोध संस्थान, मंदसौर, मो-9424546019

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

आलेख

''अक्षर ब्रह्म''

-डॉ. तारूणी कारिया

ब्रह्म तत्व सर्वव्यापी है। जो शाश्वत है, अजर अमर है और अविनाशी स्वरूप है। सृष्टि के कण कण में उसका निवास है। इस प्रकार सृष्टि का मूलाधार परमात्मतत्व ही है। सब कुछ उसी की चेतन शक्ति से परिचालित होता है।

प्रत्येक पदार्थ तथा प्राणी उसी तत्व के अंश हैं। व्यक्तिगत जीवन, समष्टिगत जीवन, सीमित और असीमित के मिथ्या भेद के बावजूद ब्रह्म तत्वत: एक ही है।

उपनिषदों में परमात्मतत्व को सच्चिदानंद के रूप में देखा गया है। सत् अर्थात शाश्वत, अजर अमर और अविनाशी स्वरूप, चित् अर्थात चेतना, दिव्य गुणों से परिपूर्ण, उच्च स्तरीय आदर्शों, आस्थाओं से युक्त तथा आनन्द अर्थात भाव-संवेदनाओं, सरसता और मृदुता से सिक्त तत्व।

यह सच्चिदानन्द सत्ता उपास्य के रूप में ईश्वर, निराकार व्यापकता के रूप में देवता, जीवों के अस्तित्व के केन्द्र के रूप में बिराजमान अन्तरात्मा तथा सृष्टि के व्यवहार को सुधारने और इसे सौंदर्यमण्डित करने आये अवतार के रूप में अपनी अनुभूति देती है।

यह तत्व बुद्धि और तर्क से परे होते हुए भी बुद्धि और तर्कयुक्त है।

प्रकृति की समस्त हलचलों की केंद्र बिन्दु यही एक केंद्रीय शक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त इस महाशक्ति को ब्रह्म कहते हैं।

''एकोब्रह्म द्वितीयोनाऽस्ति'' की उक्ति इसी तथ्य पर आधारित है कि ब्रह्म के अतिरिक्त ब्रह्मांड में और कुछ भी नहीं है।

अथर्ववेद इसीका उद्घोष करता हुआ कहता है -

''भूतं च भाष्यं च यश्चाधितिष्ठति''

अर्थात ईश्वर तीनों कालों से परे है साथ ही तर्कों से भी परे है।

सृष्टि की गहराई में उतरने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके कण कण में नियम और नियंत्रण व्याप्त है।

यहाँ पर सारा सूत्रसंचालन इस प्रकार हो रहा है मानो किसी बाज़ीगर की उंगलियों में बंधे धागे सारी कठपुतलियों को तरह तरह के नाच नचा रहे हों। कर्ता के बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती।

सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने अपनी इच्छा शक्ति से जीवों को उत्पन्न किया। सृष्टा की सृजन शक्ति का मूर्त रूप ही सृष्टि है।

''एकोऽहं बहुस्याम'' के संकल्प ने ही विश्व/ब्रह्माण्ड के सौंदर्य का रूप लिया है। परमात्मा ने सृष्टि बनाई और बनाकर इसे नियम सूत्रों में बांध दिया है। सब कार्य यथावत चल रहा है।

विश्व के अन्तराल में काम करनेवाला इसका शक्तिप्रवाह केवल ज्ञानयुक्त ही नहीं वरन् न्याय (तर्क)और औचित्य के तथ्यों से भी परिपूर्ण है। क्योंकि वो अक्षर है।

श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय के तीसरे श्लोक से 'अक्षर ब्रह्म' की व्याख्या आरम्भ हो जाती है। सम्पूर्ण अध्याय में अर्जुन के प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान श्री कृष्ण ने 'अक्षर ब्रह्म' के स्वरूप का ही वर्णन किया है। इसीलिए इस आठवें अध्याय का नाम 'अक्षरब्रह्मयोग' है।

इसी आठवें अध्याय के तीसरे श्लोक में सर्वप्रथम भगवान कहते हैं -

''अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावो अध्यात्म उच्यते''

अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म है और परा प्रकृति यानि जीव को अध्यात्म कहते हैं

यद्यपि गीता में 'ब्रह्म' शब्द प्रणव, वेद, प्रकृति आदि का वाचक भी आया है फिर भी यहाँ 'ब्रह्म' शब्द के साथ 'परम' और 'अक्षर' विशेषण देने से यह शब्द सर्वोपरि सच्चिदानन्दघन, अविनाशी, निर्गुण-निराकार परमात्मा का वाचक है।

इसी अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में

''यदक्षरं वेदविदो वदन्ति'' और तेरहवें श्लोक में ''ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'' ऐसा कहकर 'ऊँ' इस एकाक्षर ब्रह्म का मानसिक उच्चारण और निर्गुण-निराकार परम अक्षर ब्रह्म का स्मरण करते हुए सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति आदि में एक ही सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सत्ता रूप से परिपूर्ण है इसका प्रतिपादन किया गया है।

अव्यक्तोक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम्।
ये प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। (गीता अ.8/ श्लोक 21)

भगवान कहते हैं कि उसीको अव्यक्त और अक्षर कहते हैं और उसीको परमगति कहते हैं जिसको प्राप्त होने पर जीव लौटकर फिर नहीं आते। वह मेरा परमधाम है अर्थात् मेरा सर्वोत्कृष्ट रूप है।

श्री भगवान ने सातवें अध्याय के अट्ठाइसवें, उन्तीसवें और तीसवें

श्लोक में जिसे 'माम्' कहा है तथा आठवें अध्याय के तीसरे श्लोक में 'अक्षर ब्रह्म', चौथे श्लोक में 'अधियज्ञ:', पाँचवें तथा सातवें श्लोक में 'माम', आठवें श्लोक में 'परमं पुरुषं दिव्यं', नवें श्लोक में 'कविं पुराणमनुशासितारम् अणो: अणीयांसम' आदि, तेरहवें, चौदहवें, पंद्रहवें और सोलहवें श्लोक में 'माम', बीसवें श्लोक में 'अव्यक्त' और 'सनातन' कहा है, उन सबकी एकता करते हुए भगवान कहते हैं कि उसीको 'अक्षर' कहते हैं। उसीको परमगति कहते हैं जिसको प्राप्त हो जाने पर जीव फिर लौट कर नहीं आते। वह मेरा परमधाम है अर्थात् मेरा सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है।

ऐसे ही चौदहवें अध्याय के सत्ताइसवें श्लोक में भी 'ब्रह्म' अविनाशी, अमृत, शाश्वत धर्म और एकान्तिक सुख का आश्रय है ऐसा कहकर भगवान ने 'प्रापणीय' वस्तु की एकता की है।

जैसे जलती हुई अग्नि साकार और काष्ठ आदि में रहने वाली अग्नि निराकार है। ये अग्नि के दो रूप हैं लेकिन तत्वत: अग्नि एक ही है. इसी प्रकार भगवान साकार रूप से हैं और ब्रह्म निराकार रूप से है।

जैसे भोजन में सुगंध भी होती है और स्वाद भी। नासिक की दृष्टि से सुगंध होती है और रसना की दृष्टि से स्वाद होता है पर भोजन तो एक ही है। ऐसे ही ज्ञान की दृष्टि से ब्रह्म है और भक्ति की दृष्टि से भगवान हैं किन्तु तत्वत: भगवान और ब्रह्म एक ही है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षर: सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोक्षर उच्यते।।

(गीता, अ.15/ श्लोक16)

अर्थात् इस संसार में 'क्षर' (नाशवान) और 'अक्षर' (अविनाशी) ये दो प्रकार के पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर नाशवान हैं और कूटस्थ (जीवात्मा) अविनाशी कहा जाता है। क्षर: सर्वाणि भूतानि अर्थात् जो भी क्षरण हो रहा है, तिल-तिल घट रहा है, नष्ट हो रहा है, जो प्रतिपल नाशवान है वह 'क्षर' है तथा 'सर्व भूतानि' से तात्पर्य है कि सभी प्राणी, स्थावर-जंगम, जो भी नाशवान है वह 'क्षर' नाम से जाना जाता है। जो इससे परे है वह 'अक्षर' है, वही 'ब्रह्म' है।

'अक्षर' और 'ब्रह्म' शब्द परमात्मा के 1.निर्गुण-निराकार 2.सगुण-निराकार और 3.सगुण-साकार इन तीनों स्वरूपों के वाचक हैं। इन तीनों में से किसी भी स्वरूप का चिंतन करने से परमात्मा के साथ योग (सम्बन्ध) हो जाता है।

अक्षर ब्रह्म पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री कुबेर मिश्र कहते है-

चाहता हूँ मैं सदा ही जीव मुझको जान ले
कुछ कठिन नहीं है दृढ़ प्रतिज्ञ हो जो ठान ले
एकनिष्ठ ब्रह्म हूँ, मैं कृष्ण वासुदेव हूँ
पिता महाअनन्त विष्णु, शंभु, आदिदेव हूँ
इस जगत का मैं ही एक सर्वश्रेष्ठ सत्य हूँ
जल का स्वाद, सूर्यचंद्र का प्रकाश नित्य हूँ
मन्त्र ओंकार हूँ, व्योम का निनाद हूँ
अग्नि की हूँ ऊष्मा, सुगंधि भूमि आद्य हूँ
सतो रजो तमो गुणों की एकमात्र शक्ति हूँ
मैं ही एक ईश, ईश की अनन्य भक्ति हूँ।
धर्मयुक्त काम हूँ, स्वतंत्र सब गुणों से हूँ
सर्वशक्तिमान हूँ, प्रथक प्रकृति क्षणों से हूँ।।

इस प्रकार प्रबुद्धजनों ने ब्रह्म तत्व को अपने अपने तरीकों से अभिव्यक्त किया है।

फिर भी जिसे योगी-यति, ऋषि-मुनि 'नेति-नेति' कहकर पार नहीं पाते ऐसे असीम, सर्वेश्वर परमब्रह्म को व्याख्यायित करना हम जैसे अज्ञजनों के लिए क्या कभी सुगम होगा ?

विज्ञान व्रत के तीन नये ग़ज़ल संग्रह

सहज प्रकाशन
113-लाल बाग, गांधी कालोनी,
मुजफ्फर नगर, 241001 (उ.प्र.)

आलेख

अक्षर ब्रह्म : आज की जीवनचर्या के संदर्भ

बी.आर.साहू

''अक्षर ब्रह्म'' भारतीय हिन्दू सनातन धर्म- संस्कृति का अत्यंत गूढ और सारगर्भित शब्दबंध है जिसमें अनादि अनंत परमशक्ति की प्रेरणा से उनके आकर्षण और प्राप्त्यभिलाषा से उत्पन्न सकल प्रयासों, चतुर्वेदो, उपनिषदो, पुराणों से लेकर वर्तमान के सभी भाष्यो, अनुवादो आदि सहित अगम्य ब्रह्मण्ड के सुक्ष्मातिदीर्घ समस्त सहित अधुना विज्ञानादि सतत् संलग्न हैं।

इस शब्दबंध को समझने में ही सतयुग से अबतक सभी मुनि, ऋषि, महर्षि, राजर्षि ने स्वयं को स्वाहा किया है।

आज कलियुग के घोर भौतिकवादी सामाजिक परिवेश और परिपेक्ष्य में हम जनसामान्य में से कथाकथित प्रबुद्ध बुद्धिजीवी इसकी अथाह गहराई को पाने की जिद छोड़ कर सहजता पूर्वक सरल जीवनचर्या स्थापित करने की कोशिश करलें तो ही बहुत है।

अमेरिका स्थित ''नासा'' ने अपने प्रयासों से पाया है कि हमारे सौर मंडल के केन्द्र में हीलियम गैस के जलने से वहाँ जो कंपन उत्पन्न हो रहा है, उसे यदि हम सुन सकें तो वह ''ऊँ'' की ध्वनि उत्पन्न कर रहा है। ''नासा'' ने उस ध्वनि को मानव कर्ण द्वारा श्रवणीय बनाया भी और वह ''ऊँ'' ही का उच्चारण है।

यह ''ऊँ''अक्षर तीन संयुक्त ध्वनियो का संयोग है: अ+३+म्। इस ऊँ को विच्छेद करके ''ओऊम'' इस तरह भी लिखने की परंपरा है,ध्वनिशास्त्र के हिसाब से। इस ''ओइम'' को संयुक्ताक्षर संज्ञा दी गई है।

इसे साधारण रुप मे समझने के लिये दूध अच्छा उदाहरण है। दूध मे अनेक तत्व होते है, जिन्हें मोटे तौर पर तीन भागो मे बांटें-

1. दूध तत्व या दूधत्व (पनीर)
2. जल तत्व और
3. घृत

वैसे देखें तो पानी मे घी अघुलनशील है, लेकिन दूध में दूध तत्व (पनीर), जल और घृत ये तीनो चीजें अनन्य और अभिन्न रूप से एक होते है तब तक, जब तक गलत रखरखाव वश वह फट नहीं जाता।

दूध फट जाने पर भी ग्राह्य (भोज्य) होता है। बीमार, कमजोर बच्चों को दूध फाड़ कर उसका पानी पिलाने की प्रथा है जो वैद्य और डॉक्टर भी प्रिस्क्राइब करते हैं। दूध से कई खाद्य बनते है- दही, पनीर, मावा, मठा, मक्खन, चीज आदि जबकि दूध स्वयं मे परिपूर्ण पोषक पेय (खाद्य) है।

ठीक उसी प्रकार ''ऊँ'' या ''ओ३म'' या ''ओंकार'' अपने मे पूर्ण परिपालक अक्षर है किन्तु इसके खराब, गलत उच्चारण पर भी हमें सदगुणो की ही प्राप्ति होती है।

''ऊँ'' की शक्ति, सामर्थ्य का अंदाज़ इतने से ही लगाया जा सकता है कि एक घडी यानी आज के 24 मिनिट के चौथे समय मतलब 6 मिनट ही अगर हर दिन सही तरह से ''ऊँ'' का ऊच्चारण (जाप) किया जाए तो मानव को अनेकानेक शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, हार्दिक, आत्मिक और देविक लाभ होंगे। होते ही हैं, सिर्फ शर्त है निरंतरता और अखंडता की।

इस तरह आज कलियुग के परिवेश और परिपेक्ष्य मे हम जनसामान्य (अग्रेजी मे ''ले मैन'' शब्द है) के लिए अक्षर ब्रह्म का सीधा और सरलतम अर्थ और रूप है ''ऊँ''।

यही ''अक्षर ब्रह्म'' उच्चारित होने पर ''नाद ब्रह्म'' बन जाता है जिसके नियमित अभ्यास से ''ब्रह्मनंद'' की प्राप्ति होती है। ब्रह्मानंद में तन, मन, मस्तिष्क, हृदय और आत्मा सभी आनंदित (स्वस्थ,सहज और स्वाभाविक) रहते हैं।

अभिनेता, लेखक, निर्देशक, (नाट्य व फिल्म)मुम्बई
मो. 8055204733

■

आलेख

मेरा गाँव और गांधी

डॉ. सुमन चौरे

हमारी कॉलोनी में बहुत छोटे-छोटे बच्चे वैन से स्कूल जाते हैं। स्कूल से लौटकर बच्चे वैन से उतरे। वे बड़े रंग-बिरंगे परिधान में उछलते कूदते उतर रहे थे। मैंने पूछा, ''अरे! आज स्कूल यूनिफ़ार्म नहीं पहनी?'' उन बच्चों में से एक ने कहा, ''अरे दादी, देखा नहीं, मैं 'एप्पल' बना हूँ।'' खुशी से दूसरे ने कहा, ''और मैं आरेंज बना हूँ ना, दादी।'' तब तक तीसरा दौड़कर मेरे पास आकर बोला, ''देखो, मैं मैंगो बना हूँ।'' मैंने पूछा, ''बच्चो, आज स्कूल में क्या था?'' बच्चों ने बताया, ''कल इनडिपेंडेंस डे है ना, तो आज फैंसी ड्रेस काम्पिटिशन था।'' मैंने पूछा, ''क्या होता है, 'इनडिपेंडेंस डे'?'' बच्चों ने एक साथ कहा, ''वो तो टीचर को मालूम है दादी।'' ''किसी को गांधीजी नहीं बनाया?'', मैंने पूछा। उनमें से कोई भी मेरी बात नहीं समझ पाया। मैं सोचने लगी, ''पर्यावरण के प्रति इतने जागृत और स्वतंत्रता दिवस के प्रति इतने उदासीन क्यों?'' तभी सभी बच्चे अपनी-अपनी ममाओं के साथ घर की ओर दौड़ पड़े।

मैं सोचती रह गई, क्या इनकी ममा लोगों को स्वतंत्रता दिवस का अर्थ नहीं मालूम? हाँ, शायद, उनके तक आते आते स्वतंत्रता दिवस का अर्थ धूमिल हो चुका होगा। मैं सोच रही थी, इतने सुन्दर बच्चे हैं, गर इन्हें गांधीजी बनाकर स्कूल भेजते तो कितने प्यारे लगते; किन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर भी मैंने ही दे लिया-'गांधीजी बहुत दूर हो गये क्या? जितना ज़रूरी है पर्यावरण, उतनी ही ज़रूरी है स्वतंत्रता दिवस के साथ गांधीजी की याद भी'!

मुझे लगा, क्या जब हम स्कूल में पढ़ते थे, तब हमारे स्कूल में कोई ऐसी गतिविधियाँ, ऐसे क्रियाकलाप नहीं होते थे? हाँ, याद है, होते थे। हमारे गुरुजीजन स्वतंत्रता दिवस पर स्कूली बच्चों की प्रभात फेरी निकालते थे और प्रमुख क्रान्तिकारियों की छवियों को बच्चों में उतारते थे। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों और राष्ट्रीय नेताओं के संबंध में बच्चों को बताते थे। देश के लिए किए गए उनके त्याग और बलिदान की झाँकियाँ भी निकालते थे।

प्रभात फेरी में नारे लगाते थे- 'हमारी स्वतंत्रता अमर रहे,' 'गांधीजी अमर रहें', आदि आदि। प्रभात फेरी के बाद स्कूल में पहुँचकर सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे। गांधीजी का वेश धारण किया छात्र मंच पर खड़ा होकर अभिनय के साथ यह गीत गाता था -

माँ खादी की चादर दे दे
मैं गांधी बन जाऊँगा,
सब मित्रों के बीच बैठकर
रघुपति राघव गाऊँगा
घड़ी कमर में लटकाऊँगा
सैर सबेरे कर आऊँगा
माँ मुझे रुई की पोनी दे दे
तकली खूब चलाऊँगा

स्कूलों में इसी प्रकार के गांधीजी के जीवन पर आधारित बहुत से गीत और अभिनय होते थे। वह समय था, जब आज़ादी मिले चार-छह साल ही हुए थे। आज़ादी को प्राप्त करने के लिए गांधीजी के बलिदान को ग्रामीण लोग भी भलीभाँति जानते थे, समझते थे। हमारे लोक जीवन में गांधीजी की गौरव गाथा और गीत ऐसे प्रचलित थे, कि सबके मुँह से 'गांधी बाबा की जय' के नारे स्वत: ही फूट पड़ते थे।

उन दिनों गांधीजी से संबंधित गीत और लोक गीत बहुत प्रचलित थे। उनमें एक प्रमुख गीत था -

दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल
आंधी में भी जलती रही गांधी तेरी मशाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल
रघुपति राघव राजा राम

यह गीत गाँवों में स्कूलों के अतिरिक्त स्वतंत्रता दिवस समारोहों में चावड़ी-चौपालों पर भी लोकगीतों की भाँति गाया जाता था। इसका अंतिम बंद सबकी आँखों को बहा जाता था। गीत का अंतिम बन्द -

जग में कोई जिया तो बापू तू ही जिया
तूने वतन की राह पर सब कुछ लुटा दिया

माँगा न कोई तख्त, न ताज ही लिया
अमृत दिया सभी को मगर खुद ज़हर पिया
जिस दिन तेरी चिता जली, रोया था महाकाल
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल

स्कूल में बच्चों के अलावा, गाँव के लोग भी अपनी-अपनी बोलियों में स्वतंत्रता प्राप्ति में गांधीजी के योगदान और बलिदान की बातें बड़े आदर और श्रद्धा के साथ करते थे। उन दिनों रेडियो, टीवी जैसे उपकरण गाँवों में नहीं थे। लोग स्वत: ही एक दूसरे से सुनकर गीत भी गाते थे और चर्चाएँ भी करते थे। हमारे स्कूल में गांधीजी के अनेक बड़े-बड़े चित्र लगे थे। साथ ही गाँव के कई घरों में भी श्री राम और श्री कृष्ण के फोटो के साथ ही गांधीजी के भी फोटो लगे रहते थे। संध्या समय भगवान् की आरती के साथ ही लोग गांधी बाबा की आरती भी करते थे। आरती के बाद जयकारे लगाते थे - 'भोले बब्बा की जय', 'भगवान् राम की जय', 'भगवान् कृष्ण की जय', 'गांधी बब्बा की जय'। हमारे घर की बैठक में भी गांधीजी के बड़े-बड़े चित्र लगे थे। एक आड़ी फोटो में सूत कातते गांधीजी और बा थे। एक अन्य बड़ा फोटो था, जिसमें बापू के साथ सरदार पटेल चर्चा कर रहे थे। एक और लम्बा फोटो था जिसमें गांधीजी जवाहरलालजी के साथ वार्ता कर रहे थे।

हमारे गाँव में कई ऐसे घर थे, जहाँ पर लोगों ने गांधीजी के फोटो को दरवाज़े पर सबसे आगे टाँग रखा था। गांधीजी के प्रति ग्रामीणजन का आदर करने का यह उत्कृष्ट भाव था। हमारे गाँव में हर गुरुवार को महिलाएँ एकत्रित होकर राम-कीर्तन और भक्ति-गीत-भजन करती थीं। कीर्तन की अवधि में वे एक भजन हनुमानजी का ज़रूर गाती थीं और साथ ही एक दो गीत गांधीजी की महिमा के भी ज़रूर गाती थीं। गांधीजी की स्तुति जैसे उन्होंने निमाड़ी में भजन बना लिये थे। जिन भजनों में श्रीराम और श्रीकृष्ण के साथ ही गांधीजी का जीवन परिचय भी मिलता है। अब वह परम्परा समाप्त हो गई।

एक निमाड़ी गांधी-भजन -

गांधीजी जग मंऽ प्रकट भया,
इनी भारतऽ भूमि तारणऽ रवऽ।
सिरी राम का साथऽ मंऽ लछमण था
अरु कृष्ण का साथऽ मंऽ अर्जुन था,
गांधीजी का साथ जवाहर, पटेल था,
इनी भारतऽ भूमि तारणऽ खऽ।
सिरी राम का हाथ मंऽ धनुष थो
अरु कृष्ण का हाथऽ मंऽ चक्र थो
गांधी का हाथऽ मंऽ चरखो थो,
इनी भारतऽ भूमि तारणऽ खऽ।
सिरी रामऽ का कापड़ा रेसमऽ का
अरु कृष्ण का कापड़ा जरी का
गांधी की लंगोटी खादी की
इनी भारतऽ भूमि तारण खऽ।
सिरी रामऽ की राणी सीता थी
अरु कृष्ण की पटराणी रुखमणी थी
गांधी की पतनी कस्तूरबा थी
इनी भारतऽ भूमि तारणऽ खऽ।
सिरी रामऽ नंऽ रावणऽ मार्यो थो,
अरु कृष्ण नंऽ कंस पछाड़्यो थो
गांधी नंऽ अंग्रेज भगाड़्या था
इनी भारत भूमि तारणऽ खऽ।

भावार्थ : भारत भूमि का उद्धार करने के लिए गांधीजी इस जगत में प्रकट हुए। श्रीराम के साथ में लक्ष्मण थे और श्रीकृष्ण के साथ में अर्जुन थे। गांधीजी के साथ में जवाहरलाल और पटेल थे। भारत भूमि का उद्धार करने के लिए। श्री राम के कपड़े रेशम के थे और श्री कृष्ण के वस्त्र जरी गोटे के थे। गांधीजी की धोती लंगोटी खादी की थीं। इस भारत भूमि का उद्धार करने के लिए। श्री राम की रानी सीता थी और श्री कृष्ण की पटराणी रुखमणी थीं, गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा थीं भारत भूमि का उद्धार करने के लिए। श्री राम ने रावण को मारा था और श्री कृष्ण ने कंस को पछाड़ा था, गांधीजी ने अंग्रेजों को भारत से खदेड़ा था। भारत भूमि का उद्धार करने के लिए।

निमाड़ी लोक में गांधीजी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। वे राम और कृष्ण के अवतार पुरुषों के साथ ही गांधीजी को भी अवतार पुरुष मानते थे। उन्हें राम और कृष्ण जैसा ही पूज्य मानते थे। पुरुष वर्ग भी झाँझ मिरथंग पर गांधीजी के यश के गीत गाते थे। एक गीत -

गांधी नी कवोऽ रेऽ ऐखऽ आँधी कवोऽ
गोरा नऽ की बरबादी कवोऽ
गोरा नऽ नऽ घणा जुलुम कर्याऽ
लोगऽ नऽ नऽ दु:ख दरदऽ सह्या
गांधी नऽ जीवऽ सबको हळको कर्यो
भारत माता खऽ छुट्टो कर्यो
तेका लेणऽ एखऽ देवता कवोऽ
गाँधी नी कवोऽ खऽ आंधी कवोऽ

भावार्थ: इस महापुरुष को गांधी मत कहो, उसको तो आँधी कहो। गोरे लोगों की, अंग्रेज लोगों की बरबादी कहो। गोरे लोगों ने भारतीय लोगों पर बहुत जुल्म किए। भारतवासी उन जुल्मों को सहते रहे; उन दु:खों को सहते रहे; किन्तु गांधीजी ने सबका दु:ख दर्द दूर कर दिया। अपना सम्पूर्ण जीवन देश को समर्पित कर दिया। यही कारण है, कि लोग गांधीजी को देवता तुल्य समझते हैं, उनकी पूजा आरती करते हैं।

गांधीजी का विचार था स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश को स्वावलम्बी बनाने का। इसी विषयक हमारी शालायें बुनियादी शिक्षा का पूरी आस्था के साथ पालन कर रही थीं। जिस शिक्षा को आज के युग में कौशल का नाम दिया गया हैं, वही शिक्षा हमने अपनी शाला में ग्रहण की थी। हम अपनी शाला में कढ़ाई, बुनाई, सिलाई के साथ-साथ, कपड़े और मिट्टी के खिलौने, पलाश के पत्तों से दोना-पत्तल और खजूर की पत्तियों से झाड़ू-चटाई, पंखा व टोकनी बनाना सीखते थे। हमने सन से रेशे निकालकर उनसे रस्सी बनाना, उस सन के महीन रेशों से ताना-बाना बुनकर आसन और पट्टी बनाना भी सीखा था। स्कूल में बच्चों द्वारा जिन वस्तुओं का निर्माण किया जाता था, उनकी प्रदर्शनी गाँव में ही लगाई जाती थी। गाँव के गणमान्य लोगों सहित एक बड़ी संख्या में अन्य लोग भी इसे देखने आते थे। वे बच्चों द्वारा निर्मित वस्तुओं की खूब प्रशंसा भी करते थे।

हमारे बड़े गुरुजी इन वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था भी करते थे। वस्तुओं की बिक्री से आई हुई राशि शाला को ही दी जाती थी, ताकि उससे और कच्चा माल ख़रीदा जा सके। शेष राशि छात्र कल्याण में लगा दी जाती थी। लेकिन हम धीरे-धीरे गांधीजी के 'करके सीखो, करके कमाओ' वाली शिक्षा को भूलते गए। अगर गांधीजी द्वारा निर्देशित इस बुनियादी शिक्षा को हमारी शिक्षा में व्यवहार रूप में लागू करते, तो आज चीन जैसे ही हमारी भी आर्थिक स्थिति मज़बूत होती। गांधीजी की कुटीर उद्योग नीति को यदि हमने अपनाया होता, तो हमारे देश की बनी वस्तुओं का भी एक बड़ा विश्व बाज़ार होता और लोग हमारा आदर करते।

स्कूल समय से हटकर हमारे गुरुजी हमको सूत कातना सिखाते थे। छोटी कक्षा में, चौथी तक, तो तकली से सूत कातना सिखाते थे। यह काम अनिवार्य था। फिर बड़ी कक्षा में पाँचवीं से आठवीं तक के बच्चों से चरखे पर सूत कातने का अभ्यास कराया जाता था। हम लोग बड़ी कुशलता से कपास से बिनौले निकालते थे और धुनैया से धुनकर रुई को मुलायम कर लेते थे। फिर लोहे के बेलना से लकड़ी के पटे पर रुई की पूनी बनाते थे। पूनी जितनी गसी हुई होती थी, सूत का तार उतना ही बारीक निकलता था।

सूत कातकर हम लकड़ी के लपेटा-पटिये पर तकवे का सूत लपेट कर तार की लच्छी बनाते थे। पहली लट्टी स्कूल में लगी गांधीजी के फोटो पर माला रूप में पहनाते थे। सूत की अगली लट्टियों को गुरुजी की कटोरी नुमा छोटी तराजू में तोलते थे। जिसकी लट्टी का वजन कम होता था, गुरुजी उसे शाबासी देते थे, प्रोत्साहित करते थे। जिस लट्टी का जितना बारीक सूत होता था, उसका उतना ही वजन कम होता था। सूत के तारों की एक निश्चित संख्या लपेटे पर लपेटी जाती थी। ऐसी चालाकी नहीं कर सकते थे, कि कम वजन की लट्टी के लिए तार कम लपेटे जाते थे। गुरुजी हर लट्टी के तार गिनते थे। सूत के साथ कर्म और ईमानदारी का पाठ भी स्कूल में बालकों को सिखाया जाता था। हमारे इस सूत की लट्टियों को इकट्ठा करके गुरुजी महीने में एक बार खण्डवा के खादी भण्डार में दे आते थे। तकली-चरखे के साथ ही सूत कातते समय हम बच्चों की दो पंक्तियाँ आमने सामने बनाई जाती थीं। बीच में दो छोरों पर दो गुरुजी बैठकर गीत गाना भी सिखाते थे। इन गीतों में तकली-चरखे का जीवन उपयोगी महत्व बताया जाता था। एक तकली गीत -

तकली चलाने वाले, तकली चलाते रहना
तकली चलाते चलाते, हिम्मत न हार जाना
तकली हाथों की रेखा,
तकली तकदीर का लेखा
तकली ने जीवन देखा
तकली चलाते रहना...।
तकली है पेट पालन वारी
तकली है तन ढाकन हारी
तकली विपदा हटाये सारी
तकली चलाते रहना...।
तकली के बाबा गांधी
तकली ने जीवन जीने की दी आँधी
तकली ने छुड़ाई फांदी
तकली चलाते रहना...।

भारत की आज़ादी के बाद लोगों में एक नई चेतना जाग उठी। गांधीजी के दर्शन और विचारों तथा उनके आदर्शों व समर्पण को लोगों ने अपने जीवन का मूलमंत्र बना लिया था। वे गाँव व ग्रामीण जीवन को हृदय से प्यार करते हैं। इसी भाव से उनकी आस्था उभलाती रहती थी। शालेय छात्र और ग्रामीणजन स्वतंत्रता दिवस,

गणतंत्र दिवस, गांधी जयंती और गांधीजी के निर्वाण दिवस के अवसर पर संध्या समय तकली या चरखा चलाते हुए हम ग्रामीणजन गांधीजी के प्रिय भजन गाते थे। गांधीजी के प्रिय भजन –

वैष्णव जन ते तेणे कहिए
जो पीर पराई जाणे रे
पर दुख्खे उपकार करे तोये
मन अभिमान नऽ आणे रे
और दूसरा भजन–
रघुपति राघव राजा राम
सबको सन्मति दे भगवान्
ईश्वर अल्लाह तेरे नाम
सबको सन्मति दे भगवान्

ग्रामीण लोग मात्र इन भजनों को गाते ही नहीं थे अपितु, वे उन्हें गुनते भी थे, आत्ससात् भी करते थे। इन भजनों के बोलों का आशय क्या था? गांधीजी क्यों पसंद करते थे?, वे अपनी सहज बुद्धि से कहते थे, गांधीजी किसी को दु:खी नहीं देख सकते थे। वे कहते थे, गांधीजी ने अपनी ही नहीं, सबकी सन्मति की ईश्वर से याचना की है। वे कहते थे, ''हे ईश्वर सबको उत्तम मति प्रदान कर। जो व्यक्ति दूसरों के दु:ख में दु:खी है। वही व्यक्ति उत्तम इंसान कहलाने के लायक है।'' स्वयं गांधीजी की उत्तम प्रकृति के कारण ही लोगों के मन में उनके प्रति बड़ी आस्था थी। उनका प्रभाव जनता पर इतना गहरा पड़ा, कि लोग खादी ही पहनते थे और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करते थे। वह समय था, जब बिना गांधी दर्शन के, बिना गांधी विचार के, किसी भी क्षेत्र में चलना, बिना गांधी के स्वतंत्रता प्राप्ति की बात करना, न्याय संगत नहीं लगती थी। तब गांधी दर्शन और विचारों के माध्यम से वे लोगों के मध्य सदैव उपस्थित रहते थे। आज हमारे मध्य से गांधी दर्शन और गांधी विचार लुप्त होते जा रहे हैं। हम और हमारी पीढ़ी के लोगों को गांधी आज भी बहुत याद आते हैं।

देश की इस नन्ही पौध और युवा पीढ़ी को भी हमें गांधी दर्शन के प्रति जागरूक करना है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह इस पीढ़ी को ऐसी सन्मति दे कि वह पर्यावरण के साथ ही गांधी और हमारी स्वतंत्रता को भी याद रखे। गांधी दर्शन का सदा सर्वाधिक सामयिक महत्त्व है। आज गांधी सर्वाधिक प्रासंगिक हैं, आवश्यक हैं, अनिवार्य हैं।

लेखिका – वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्स्टेन्शन, बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफ़िस त्रिलंगा, भोपाल – 462039
मो.: 09424440377, 09819549984

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

संस्था आयोजन

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति भोपाल (म.प्र.) का प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन...
सहयोग : संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन

संस्कृति पर्व - 5
आज़ादी का अमृत महोत्सव - 2

तिरंगे की शान पर केन्द्रित तीन दिवसीय महोत्सव सम्पन्न

तिरंगे की शान पर केंद्रित तीन दिवसीय उत्सव शहीद भवन और स्वराज संस्थान की कला-वीथिका में सम्पन्न हुआ।

प्रदर्शनी, पुस्तकों का लोकार्पण, सम्मान, विमर्श, दुर्लभ जनजातीय वाद्य बाना के साथ गाथा-गायन, गीतिनाट्य, नृत्यनाटिका और आज़ादी के तरानों की आकर्षक प्रस्तुतियाँ हुई।

भोपाल राजधानी की प्रतिष्ठित सांस्कृतिक संस्था कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति का 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' पर केन्द्रित उत्सव की दूसरी कड़ी का आयोजन 7 से 9 नवंबर 2022 तक भोपाल के शहीद भवन और स्वराज भवन संस्थान की कला-वीथिका में किया गया। उल्लेखनीय है कि यह तीन दिवसीय प्रतिष्ठा आयोजन का केन्द्रीय भाव 'तिरंगे की शान' था।

उत्सव का आरंभ स्वराज भवन कला-वीथिका में 'आज़ादी के महानायक और चरणरज' प्रदर्शनी से शुभारम्भ हुआ। इसमें स्वराज संस्थान के सौजन्य से प्राप्त स्वांतत्र्य वीरों के चित्रों और प्रख्यात पुराविद डॉ.नारायण व्यास द्वारा देश के सौ से अधिक स्थलों से संकलित अमर शहीदों की पवित्र चरणरज के दर्शन राष्ट्रप्रेमी दर्शकों ने किये। इसी कला-दीर्घा में 8 नवंबर को 'मौखिक साहित्य और स्वतंत्रता संग्राम' विषय पर डॉ. किशन तिवारी (बुंदेली), जगदीश कौशल (बघेली), कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय (मालवी), प्रवीण चौबे निमाड़ी सहित जनजातीय मौखिक साहित्य पर लक्ष्मीनारायण पयोधि सहित विमर्श का सत्र रहा। 9 नवंबर को प्रज्ञा विद्यालय के छात्र-छात्राएँ 'आज़ादी का अमृत महोत्सव और युवा भारत की अपेक्षाएँ' विषय पर अपने विचार रखें। समारोह में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. धर्मेन्द्र सरल शर्मा को 'कला समय राष्ट्र आराधना सम्मान' से सम्मानित किया गया। 7 नवम्बर को शहीद भवन सभागार में आयोजित हुआ। आई.ए.एस. अधिकारी श्रीमती मीनाक्षी सिंह (प्रबंध संचालक वन्या एवं उप सचिव, म.प्र.शासन) के मुख्य आतिथ्य और मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग द्वारा कबीर सम्मान से अलंकृत वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. बिनय षडंगी राजाराम की अध्यक्षता में आयोजित इस कार्यक्रम में वरिष्ठ जनजातीय कलाकार मुरारीलाल भार्वे का शहनाई वादन, दुर्लभ जनजातीय वाद्य के वादक फुल्लूसिंह सेंद्राम द्वारा आज़ादी के अमर नायक राजा शंकर शाह और रघुनाथ शाह की गाथा का गायन, वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि की कोशल पब्लिकेशन्स, अयोध्या द्वारा हालिया प्रकाशित पुस्तकें (सोमारू, जमोला का लमझना, शब्द के आरपार, सुगंधों का सफ़र) तथा काव्यकृति 'सोमारू' पर वरिष्ठ लेखिका डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा' की आलोचनात्मक पुस्तक 'उत्तर सोमारू' का लोकार्पण हुआ। इस कार्यक्रम में वरिष्ठ रंगकर्मी ज्योति दुबे के निर्देशन में अचिंत्य कला, साहित्य, संस्कृति समाज संस्था द्वारा लक्ष्मीनारायण पयोधि के राष्ट्रीय भावधारा के गीतों पर आधारित गीतिनाट्य 'तिरंगे की शान' प्रस्तुत हुआ।

श्री के. के. मोहम्मद साहब, पद्मश्री सम्मान से सम्मानित

कार्यक्रम का प्रमुख आकर्षण पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' द्वारा पं. माखनलाल चतुर्वेदी की अमर कविता 'पुष्प की अभिलाषा' का गायन, स्नेहा खेर के निर्देशन में ताधा अकादमी द्वारा कथकशैली में नृत्यनाटिका 'मणिकर्णिका' (झाँसी की रानी) तथा वाणी पुरोहित द्वारा आज़ादी के तरानों की प्रस्तुति हुआ। तथा कला समय पत्रिका का स्वतंत्रता आंदोलन में मध्यप्रदेश की गौरव गाथा विशेषांक 1857–1947 का लोकार्पण भी सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम की सूत्रधार वरिष्ठ उद्घोषिका और रेडियो कलाकार प्रमिला मुंशी दिवाकर द्वारा संचालन किया गया।

संस्कृति-पर्व-5
आजादी का अमृत महोत्सव-2
तिरंगे की शान
पर केन्द्रित तीन दिवसीय महोत्सव
7,8,9, नवम्बर 2022

कला समय

कला समय

संस्कृति-पर्व-5
आजादी का अमृत महोत्सव-2
तिरंगे की शान
पर केन्द्रित तीन दिवसीय उत्सव
7,8,9, नवम्बर 2022
9 नवम्बर 2022

संस्कृति-पर्व-5
आजादी का अमृत महोत्सव-2

कला समय

कला समय
कला समय

अली अहमद सईद एस्बर की कविताएं

विश्व कविता में आज विख्यात आधुनिक सीरियाई कवि , निबंधकार , अनुवादक और आलोचक अली अहमद सईद एस्बर (जन्म1930) जिन्हें अदब की दुनिया में उनके उपनाम अदुनिस के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्तुत है अदुनिस की दो महत्वपूर्ण कविताओं का छायानुवाद ।

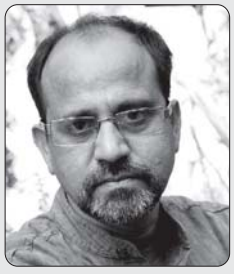

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रति: शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

बचपन का उत्सव मनाते हुए

यहाँ तक कि हवा भी
गाड़ी बनना चाहती है
जिसे तितलियां धका रही हों ।

मुझे याद है पागलपन
जो टिका हुआ था ज़ेहन के तकिए पर
पहली बार ।
मैं अपनी देह से बात कर रहा था तब
और मेरी देह एक विचार थी
जिसे मैंने लाल रंग से लिखा था ।

लाल सूर्य का सबसे खूबसूरत सिंहासन है
और बाकी तमाम रंग
लाल कालीनों पर आराधना करते हैं ।

रात एक दूसरी मोमबत्ती है।
हरेक शाख में , एक हाथ है ,
हवा में एक संदेश जा रहा है
देह की साँसों से प्रतिध्वनित ।

सूर्य कोहरे के कपड़े पहनने की ज़िद करता है
जब भी वह मुझसे मिलता है:
क्या उजाले के द्वारा मुझे डाँटा जा रहा है ?

ओह , मेरे अतीत के दिन –
वे अपनी नींद में चला करते थे
और मैं उन पर झुका करता था ।
प्रेम और सपने दो कोष्टक हैं ।
इन दोनों के बीच मैं अपनी देह को रखता हूँ
और इस दुनिया की खोज करता हूँ।

अनेक बार
मैंने हवा को घास के पैरों के साथ उड़ते देखा था
और सड़क को हवा के पैरों के साथ नृत्य करते

मेरी इच्छाएं फूल हैं
जो मेरे दिनों को धुंधला कर रहे हैं

बहुत पहले मैं ज़ख्मी हुआ था
बहुत पहले मैंने जान लिया था
कि ज़ख्मों ने मुझे बनाया है ।

मैं अभी भी उस बच्चे के पीछे चलता हूँ
जो अब भी मेरे भीतर चल रहा है।

अभी वह खड़ा है रोशनी से बनी सीढ़ियों पर
सुकून के लिए एक कोने को तलाश करता
और रात के चेहरे को फिर से पढ़ने की कोशिश करता।

यदि चाँद एक घर होता ,
मेरे पैर उसकी देहरी को छूने से मना कर देते।

वे धूलधूसरित हैं
लिए जा रहे हैं मुझे हवा की ऋतुओं की तरफ।

मैं चलता हूँ ,
एक हाथ हवा में ,
दूसरे से बालों को सहलाता
जिसकी मैं कल्पना करता हूँ ।

कोई सितारा भी तो
एक कंकड़ ही है अंतरिक्ष के मैदान में ।

सिर्फ वही
जो जुड़ा है क्षितिज से
नई सड़कों का निर्माण कर सकता है ।

यह चाँद , एक बूढ़ा आदमी ,
उसकी कुर्सी रात है
और रोशनी उसकी सहारे की छड़ी है ।

मैं उस देह से क्या कहूँ जिसे छोड़ आया हूँ
उस मकान के मलबे में
जहां मैं पैदा हुआ था ?
मेरे बचपन को कोई बयान नहीं कर सकता
सिवा उन सितारों के जो उस मकान के ऊपर झिलमिला रहे हैं
और शाम के रस्ते में छोड़ रहे हैं अपने पदचिह्न ।

मेरा बचपन अभी भी
जन्म ले रहा है रोशनी की हथेलियों के बीच
जिसका नाम मुझे नहीं पता
और जो मुझे नाम से पुकारता है ।

उसने नदी से एक आईना बनाया
और उससे अपने दु:ख के बारे में पूछा ।
उसने अपने दु:ख से बारिश बनाई
और बादलों का अनुसरण किया ।

तुम्हारा बचपन एक गाँव है ।
तुम उसकी सीमाओं के बाहर कभी नहीं जा पाओगे
इससे फ़र्क नहीं पड़ता
कि तुम कितनी दूर निकल गए ।

उसके दिन तालाब हैं
उसकी स्मृतियां तैरती देह हैं ।

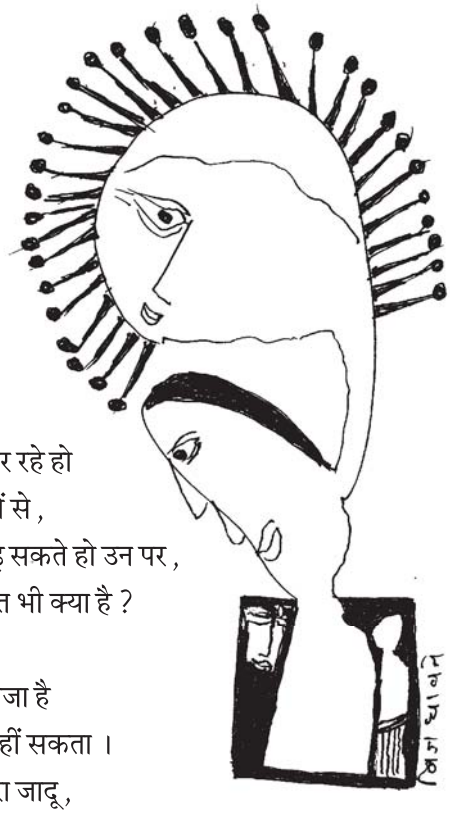

तुम जो नीचे उतर रहे हो
अतीत के पहाड़ों से ,
वापिस कैसे चढ़ सकते हो उन पर ,
और फिर जरूरत भी क्या है ?

समय एक दरवाजा है
जिसे मैं खोल नहीं सकता ।
घिस चुका है मेरा जादू ,
सुप्त हो चुके हैं मेरे मंत्र ।

मैं एक गाँव में पैदा हुआ था ,
छोटा और रहस्यमय , कोख की तरह ।
मैंने इसे कभी नहीं छोड़ा ।
मुझे किनारों से नहीं समंदर से प्रेम है ।

ज़ख्म

सपनों और आईनों की धरती पर
यदि मेरे पास कोई ठिकाना होता, कोई जहाज होता,
यदि मेरे पास किसी शहर के अवशेष होते
बच्चों और रुदन की धरती पर
कोई शहर होता,
मैंने यह सब लिखा होता इस ज़ख्म की खातिर,
एक गीत भाले की तरह
जो भेद सके दरख़्तों, पत्थर और आसमान को,
पानी की तरह लचीला
उच्छृंखल, विजय की तरह स्तब्ध।

■

गीत

राघवेन्द्र तिवारी के अभिनवगीत

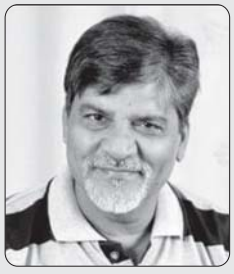

राघवेन्द्र तिवारी

जन्म-30 जून 1953 उत्तर प्रदेश । ख्यात नाम रेखा चित्रकार शिक्षा का नया विकल्प: दूर शिक्षा नामक पुस्तक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा वर्ष 1997 में प्रकाशित, भारत में जनसंचार और सम्प्रेषण के मूल सिद्धान्त पीपुल्स ग्रुप द्वारा 2009 में प्रकाशित। 'स्थापित होता है शब्द हर बार' नई कविता में तथा 'जहाँ दरक कर गिरा समय' भी नवगीत-2014 में प्रकाशित। सम्पर्क: ए-1, 2/3, फार्च्यून सिग्नेचर, बावड़िया, भोपाल, मो-9424482812

1

टपरे में था बचा आज को
एक पाव आटा
बाकी बरतन में पसरा था
केवल सन्नाटा

फूंक-फूंक हारा बेचारा
सुरसति का दूल्हा
सुलग नहीं पाया बेशर्मी
से गीला चूल्हा

गीली लकडी कठिन
परीक्षा होती निर्धन की
जहाँ शुरु होता दुर्दिन
का अन्तहीन घाटा

रोटी माँग -माँग कर सोया
अभी-अभी बच्चा
उसके जीवन का अनुभव
बस भूख रही सच्चा

अपनी माँ को राहत देदी
बच्चे ने सो कर
भूखा ही सोया भविष्य
का सम्भावित टाटा

सोचे बाप उछाह भरा
बेटे के बारे में
यह प्रकाश भर देगा
जीवन के अँधियारे में

खुश होऊँगा बैठक में
यों ही बैठा-बैठा
भरा करेगा बेटा जब
गाड़ी में फर्राटा

2.

जितने बेटे, उतने कमरे
कहाँ रहेगी माँ, यह भय है
बेशक यह बूढ़ी अम्मा का
सुविधा वंचित कठिन समय है

माता जो निश्चेष्ट बैठकर
देख रही सारी गतिविधियाँ
क्या ग्यारस,रविवार काटने
दौड़ा करते वासर-तिथियाँ

जिन बहुओं के होने का वह
गर्व सदा करती आयी
उनकी घनाक्षरी के आगे
चकित अचंभे में छप्पय है

सुबह नाश्ता दोपहरी हो
या फिर संध्या की ब्यालू
क्रम से बँटी तीन बेटों में
पर माँके हिस्से आलू-

की चीजें उस मधुमेही को
मिलती रहती हैं प्रतिदिन
जान सकी है पति न रहनेकी
विपदा का क्या आशय है

तीनों बहुयें स्वांग किया
करती हैं लोगों के आगे-
''अम्मा जैसी सासू माँ
से भाग हमारे हैं जागे''

कोई अगर न देखे तो मुँह
फेर चली जाया करतीं
मगर लोग भी जान गये थे
उनका यह नकली अभिनय है।

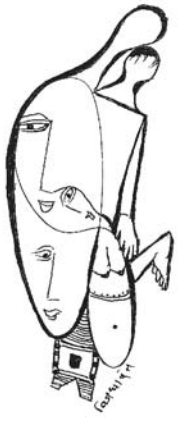

■

कविता

कुमार सुरेश की कविताएँ

कुमार सुरेश

जन्म शिवपुरी में 9 सितंबर 1962 को। प्रकाशित पुस्तकें - कविता संग्रह- 'शब्द तुम कहो', 'आवाज एक पुल है', 'भाषा सांस लेती है', व्यंग्य उपन्यास - 'तंत्र कथा', व्यंग्य संग्रह 'व्यंग्य राग' पुरस्कार तथा सम्मान- 'रज़ा पुरस्कार', 'अम्बिका प्रसाद दिव्य अलंकरण', पुष्कर सम्मान। संपर्क:14-ए सागर एस्टेट्स अयोध्या बाय पास भोपाल (म.प्र.) 462041
मो. 9993974799

वांछित प्रेम की लांक्षित उमर

1

चेहरा धोते हुए दपर्ण के सामने
साबुन के झाग तले दबी–छुपी
सफेदी जो झलकी
सोचा कि चेहरे पर
उम्र ने मोहर लगा दी है
लेकिन हृदय में
प्रेम की जो कसक है
वो वैसी ही है जैसी तब थी जब
सफेदी से दूर का भी नाता नहीं था

वही हुलस, बेकरारी, उछाह और ललक
वही अबूझ को ढूंढ लेने की आस
जीवन का वो उत्कर्ष योग
जिसके लिये तारी है नीमहोशी ।

2

क्या कोई बीमारी है ये या फिर
कोई खोज है जो नाकाम हो गयी थी?
या नयी तलाश की आदत है
या वही है जिसे महसूस किया जाता है
कहा नहीं जा सकता ।

3

कौन है जो पहुँचता जा रहा है
हृदय के कोमल अंतस तक
जहाँ बसता है तरल और सरल
एक बालक
हृदय से मैं गायब हो गया है और
खाली हुयी जगह
उसी ने भर दी है

4

मालूम मुझे भी है कि
इस उमर में
यह
वांछनीय नहीं लांछनीय ही है
इसका समाधान नहीं मिलता कि
क्यों लांक्षनीय उमर में
प्रेम इतना वांछनीय लग रहा है

5

विचार आया कि भला
दिल किसी एक की ही दिल्ली क्यों रहा आये
क्यों न हो इसमें इतनी जगह
कि कोई और भी समा जाए।

6

दरपन देखते हुये
पचास बरस के फ्रेम में
आश्चर्य से उसने खुद से ही कहा
क्यों दोस्त, पड़ गये फिर मुश्किल प्रेम में !
संभल जा रे सुधर जा
नहीं तो फिर जा और दुख उठा ।

हृदय और लाल वामन तारा

निस्तब्धता भंग हुयी नहीं और
अंतरिक्ष में
एक तारा फूट गया
पीड़ा की लहरें
अनंत में बिखर गयी

लाल वामन तारे की जगह
जो शून्य जन्मा है
उसी से
ये अंतरिक्ष बना है
और इस निर्वात का कोई
ओर–छोर नहीं है।

ग़ज़ल

मोहन सगोरिया की ग़ज़लें

मोहन सगोरिया

25 दिसम्बर 1975 को बैतूल (म.प्र.) के भौंरा नामक कस्बे में जन्म। कविता की एक किताब 'जैसे अभी-अभी' प्रकाशित व इसी पर चर्चित 'रज़ा पुरस्कार' मिला। वर्तमान में आईसेक्ट भोपाल विज्ञान पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' के सहायक संपादक पद पर कार्यरत है। सम्पर्क : स्कोप कैम्पस, एन.एच. -12, नियर मिसरोद, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047, मो-09630725033

शहरयार

1.

बड़े-बूढों के कुछ क़िस्से घरों के साथ रहते हैं
किसी की दस्तकों के सुर दरों के साथ रहते हैं।

अगर तुम ज़ोर से पकड़ोगे तो ये टूट जाएंगें
मिरे एहसास तितली के परों के साथ रहते हैं।

बहुत ही लाज़िमी है कि ज़रा सी दूरियाँ रक्खो
हमारे क़िस्से भी अब सरफिरों के साथ रहते हैं।

चलो अब अलविदा कह दें यहीं तक साथ था अपना
मुसाफिर हम भी ठहरे रहगिरों के साथ रहते हैं।

2.

वक़्त से राब्ता रहा
राब्ता टूटता रहा

मंज़िलें पास आ गई
रास्ता छुटता रहा

लर्जिशें और बढ़ गईं
उम्र का फलसफा रहा

बिजलियाँ काम कर गई
नूर का सिलसिला रहा

जिंदगी आसान हो गई
हाथ में आईना रहा

3.

लूट न ले भीड़ वीरानी में आ
तू ज़रा खुद की निगहबानी में आ

पार करना गर समन्दर वक़्त का
क्यूँ किनारे पर खड़ा पानी में आ

कौन मानेगा तुझे अपना खुदा
तू समझदारों की पेशानी में आ

फिर बरस जा टूटकर प्यासे हैं ये
अब्र से आदम की रजधानी में आ

तू उजाला है अगर तो फैल जा
लफ़्ज है तो लफ़्ज के मानी में आ

4.

अमाँ, रूह में पैकर छुपा हुआ है क्या?
ये दर्या कहीं उल्टा बहा हुआ है क्या?

हाँ, देखने में ये आदमी सा लगता है
इसके साथ भी कुछ बुरा हुआ है क्या?

ये तेरे वजूद से कैसी महक आती है
गौर से देख कि पानी रुका हुआ है क्या?

बिजलियाँ हँसती हैं पुरजोर तरीके से
कोई परिंदा, कहीं फना हुआ है क्या?

इन दिनों लगता है कि बहुत अकेला हूँ
मेरे भीतर ही कोई जुदा हुआ है क्या?

लक्ष्मीनारायण पयोधि की कविता

लक्ष्मीनारायण पयोधि

23 मार्च 1957 को महाराष्ट्र में जन्मे। 20 काव्य संकलनों सहित कुल 43 पुस्तकें प्रकाशित। आदिवासी भावलोक पर आधारित काव्यकृति 'लमझना' चर्चित। नाट्य रूपांतरण भी। अनेक पुरस्कार-सम्मानों से अलंकृत।
ए-1, लोटस रो, स्प्रिंगवैली, कटारा हिल्स, बाग़मुगालिया, भोपाल- 462043 (म.प्र.)
मो. 8319163206

मैं अक्षर हूँ
मेरा क्षरण नहीं, मरण नहीं
अनश्वर, अजर-अमर
मैं ही स्वर
मैं ईश्वर
शब्द के आरपार
नाद का रचयिता
निनाद से
भाषा में संवाद का सृष्टा
शब्दब्रह्म

अक्षर-अक्षर शब्द में साकार
अर्थ में निराकार विस्तार
जल, थल, गगन में उपस्थित
समस्त ब्रह्माण्डों का अधिपति
मैं अक्षरब्रह्म

चेतना का प्रकाश
अनुभूति की संवेदना
भावना की सृष्टि
अभिव्यक्ति की दृष्टि
मैं ही मंत्र
भाव, अनुभाव, प्रभाव
शब्द में साकार
मैं अक्षरब्रह्म

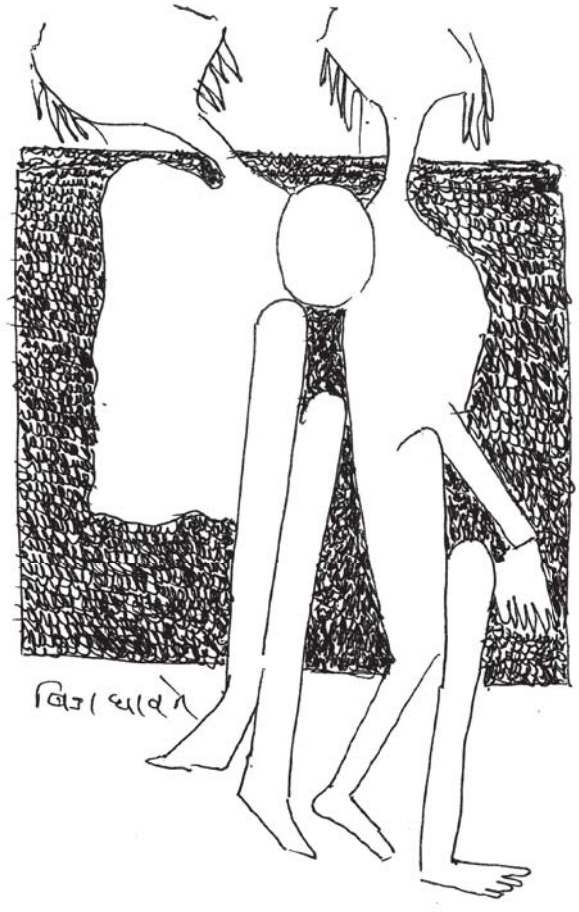

तल्ख़ियों से गुज़रते हुए राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना तक

अश्विनी कुमार दुबे

सन् 1921 में साहिर का जन्म हुआ और 1948 में साहिर फ़िल्मों में लिखने के लिए बंबई आ गए। इसके पूर्व इनकी शायरी का एक संग्रह 'तल्ख़ियाँ' प्रकाशित हो चुका था। एक ज़मींदार परिवार में जन्म। वहाँ शोषण, अन्याय और स्त्री उत्पीड़न के दृश्य उन्होंने बहुत नज़दीक से देखे, जिनके प्रभाव से उनका व्यक्तित्व बना। यही दृश्य उन्हें समाज में जगह-जगह देखने को मिले, जिसका असर उनके दिलो-दिमाग पर पड़ता रहा। राष्ट्रीय फलक पर जब वे युवा हुए आजादी का आंदोलन ज़ोरों पर था। युवकों का एक दल देश के लिए अपनी जान न्योछावर कर रहा था। वे घरों में बम बना रहे थे। देशी हथियारों से अंग्रेज़ अफसर और पुलिस जो आधुनिक हथियारों से लैस थी, उसे चुनौती दे रहे थे। वे संख्या में कम थे पर उनके इरादे और हिम्मत के सामने अंग्रेज़ सरकार पस्त थी। दूसरी ओर कांग्रेस का आंदोलन था, जिसमें अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह द्वारा अंग्रेज़ शासन को ललकारा जा रहा था। गांधी जी की स्पष्ट घोषणा थी कि मात्र तीस हजार अंग्रेज़ तैंतीस करोड़ देशवासियों को किसी भी प्रकार ग़ुलाम नहीं बना सकते यदि हम अंग्रेज़ी शासन के प्रति पूर्ण असहयोग की भावना अपना लें। इसका गहरा असर हो रहा था। अंग्रेज़ी शासन को, जो भारतीयजनों की मशीनरी चला रही थी वह धीरे-धीरे असहयोग आंदोलन के कारण ठप पड़ने लगी। स्कूल, कॉलेज, अदालतें, ऑफ़िस, रेलवे, पोस्टऑफिस, प्रशासनिक कार्यालय सब जगह भारतीय नागरिक ही तो कार्य कर रहे थे और अंग्रेज़ सरकार चल रही थी। गांधी जी के आह्वान से लोगों ने सरकार से असहयोग करना प्रारंभ कर दिया। नतीजा ये हुआ कि अंग्रेज़ सरकार बुरी तरह लड़खड़ा गई। क्रांतिकारियों का सक्रिय संघर्ष और कांग्रेस के आंदोलन ने मिलकर अंग्रेज़ों के पैर उखाड़ दिए और वे भारत से जाने के लिए तैयार हो गए। परंतु कूटनीति के तहत वे हिंदू और मुसलमानों में एक गहरी दरार डाल गए। इससे सन् 1947 के अगस्त मध्य (14 एवं 15 अगस्त) को दो राष्ट्र हिंदुस्तान और पाकिस्तान अस्तित्व में आए। इसके बाद दोनों देशों ने पलायन की जो त्रासदी झेली साहिर उसके गवाह बने। वह भीषण रक्तपात, धर्मांधता और राजनीति का तांडव साहिर ने बहुत भीतर तक महसूस किया। बँटवारे के समय वे लाहौर (पाकिस्तान) में थे। बाद में उन्होंने हिंदुस्तान में रहना पसंद किया और वे अपनी माँ के साथ हमेशा के लिए यहाँ आ गए। फ़िल्मों में आने के पहले यह था साहिर का अनुभव संसार। व्यक्तिगत जीवन में वे असफल प्रेम के शिकार हो चुके थे, इसलिए वह टीस भी उन्हें

सालती रहती थी। इन सारे मिले-जुले अनुभवों और एहसासों से निकलकर आती है, साहिर की शायरी। 'तल्ख़ियाँ' नामक एक किताब उनकी प्रकाशित हो चुकी थी, जिससे वे साहित्य जगत् में स्थापित हो चुके थे। मुशायरों और कवि-सम्मेलनों में लगातार जाते रहने के कारण लोग उन्हें अच्छी तरह जानने-पहचानने लगे थे। साहिर शुरू से ही मनुष्य की कर्मठता, वीरता, धैर्य और आंतरिक द्वंद्व को अपनी शायरी में अभिव्यक्ति दे रहे थे। वे शोषण, अन्याय, असमानता और धार्मिक विभेद के ख़िलाफ़ भी बोल रहे थे इसलिए एक तरक्क़ीपसंद शायर के रूप में उनका नाम मशहूर हो चला था।

कॉलेज में आते ही वे मार्क्सवादी विचारधारा से परिचित हो चुके थे। ग़रीबी, शोषण और हर तरह अत्यातार के ख़िलाफ़ वे हर स्तर पर विरोध दर्ज करा रहे थे। इस प्रकार शुरू से ही वे तरक्क़ीपसंद शायरी करने लगे थे। उन्हीं दिनों उनके जीवन में महिन्दर प्रेम चौधरी और ईशर कौर आईं, जिनसे उन्हें प्रेम हुआ। इस दौरान उन्होंने श्रृंगार पर रचनाएँ लिखीं जो पहले महिन्दर और बाद में ईशर को समर्पित कीं। महिन्दर के लिए उन्होंने लिखा— 'सामने एक मकान की छत पर/मुन्तज़िर कोई एक लड़की है/मुझको उससे नहीं तआल्लुक

कुछ/फिर भी सीने में आग भड़की है' अभी वे अपने सीने की इस मोहब्बत वाली आग को अशआरों में ढाल ही रहे थे कि असमय महिन्दर की मौत हो गई। साहिर को बहुत दुख हुआ। उन्होंने महिन्दर की याद में एक लंबी नज़्म लिखी। कुछ अशआर— 'मिट्टी महक रही है तेरी रहगुज़ार की/अरथी गई है यां से अरुस-ए-बहार की/भर भर के अश्क़ दीदा-ए-ख़ूँ ना-बा बार में/मोती बिछाऊँगा मैं तेरी रहगुज़ार में' बाद में ईशर कौर के नज़दीकपन के पश्चात् उन्होंने लिखा— 'क़तरा-क़तरा तेरे दीदार की शबनम टपकी/लम्हा लम्हा तेरी खुश्बू से मुअत्तर गुजरा' इस प्रेम की असफलता कुछ इस तरह उनकी शायरी में आई— 'बिछड़ गया हर साथी देकर, पल दो पल का साथ।' लाहौर और अमृतसर के बीच एक छोटा सा कस्बा है प्रीतनगर। यहाँ एक मुशायरे के दौरान साहिर की मुलाक़ात अमृता प्रीतम से हुई। पहली रूबरू मुलाक़ात में वे एक-दूसरे से प्रभावित हुए। हालाँकि इस प्रभाव की शुरुआत एक-दूसरे के अशआर पढ़ते हुए बहुत पहले हो चुकी थी। मुशायरे के बाद दूसरे दिन पानी बरसा। कुछ दूर तक साहिर और अमृता को एक साथ बस में सफर करना पड़ा। तब साहिर ने अमृता के लिए यह ग़ज़ल पढ़ी— 'ये पर्वतों के दायरे ये शाम का धुआँ/ऐसे में क्यों न छेड़ दें दिलों की दास्तां' दोनों ने एक-दूसरे के सामने दिलों की दास्तां बयान कीं। परंतु कुदरत ने साहिर की ज़िंदगी के लिए कोई जीवनसाथी नहीं बनाया था। यह प्रेम भी असफल हुआ। साहिर ने अमृता के लिए कई नज़्में और ग़ज़लें कहीं। बाद में साहिर को लगा कि वे सिर्फ़ अवाम के लिए हैं इसलिए उन्होंने अपनी शायरी का मुख उसी ओर मोड़ दिया। 'तल्ख़ियाँ' में संगृहीत उनकी रचनाएँ उसी दौर की हैं, जिसमें प्रेम, वियोग, तनहाई, मुफ़लिसी, बेइंसाफ़ी और मुख़्तलिफ़ अहसास वाली नज़्में, रुबाइयाँ एवं ग़ज़लें संगृहीत हैं।

इस संकलन की एक रचना 'ताजमहल' उस समय बहुत चर्चित हुई थी। इस रचना के पहले 'ताजमहल' मोहब्बत की निशानी माना जाता था। उर्दू और हिंदी के सभी रचनाकारों ने इसकी तारीफ़ में कसीदे पढ़े थे। पहली बार साहिर ने इसे मामूली कब्र कहकर यह व्यंग्य भी किया कि एक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर हम ग़रीबों की मोहब्बत का उड़ाया है मज़ाक़। साहिर का कथन साफ़ है कि ग़रीब आदमी भी अपनी माशूक से बेइंतहा मोहब्बत करता है। परंतु वह ग़रीब है, इसलिए ताजमहल नहीं बनवा सकता। तब उसकी मोहब्बत किसी शहंशाह की मोहब्बत से कमतर नहीं हो जाती। शहंशाह ने कोई अपने पसीने की कमाई से नहीं, अवाम के पैसों से ही अपनी मोहब्बत को ताजमहल के रूप में तामीर किया था। नज़्म देखिए—

अनगिनत लोगों ने दुनिया में मोहब्बत की है,
कौन कहता है कि सादिक़ न थे जज़्बे उनके?
लेकिन उनके लिए तशहीर का सामान नहीं,
क्योंकि वो लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे।

'तल्ख़ियाँ' के नए संस्करण में साहिर की 65 रचनाएँ संगृहीत हैं, जो उनके शुरुआती दौर की रचनाएँ हैं। फ़िल्मों में आने के बाद उन्होंने ख़ूब लिखा। प्राय: तो उनकी पूर्व लिखित रचनाएँ ही फ़िल्मों में ली गईं। लोग कहते हैं कि फ़िल्मों में सिचुएशन पर गीत लिखे जाते हैं। साहिर के गीतों पर फ़िल्मों में सिचुएशन बनाई गई। यह गीत और गीतकार की सामर्थ्य का कमाल है। उन्हीं दिनों साहिर एक नज़्म और 'परछाइयाँ' भी बहुत प्रसिद्ध हुई थीं। उसके कुछ बंद देखिए—

मैं फूल टाँक रहा हूँ तुम्हारे जूड़े में
तुम्हारी आँख मुसर्रत से झुकती जाती है
न जाने आज मैं क्या बात कहने वाला हूँ
ज़बान खुश्क है आवाज़ रुकती जाती है
तसव्वुरात की परछाइयाँ उभरती हैं।

फ़िल्मों में आने के पूर्व 'साहिर' अदब की दुनिया में पूरी तरह स्थापित हो चुके थे। उन्हें तरक्क़ीपसंद शायर के रूप में पहचान मिल चुकी थी। देश के नामी मुशायरों में वे शिरकत करते थे। 'साहिर' के कुछ महत्त्वपूर्ण अशआर—

मगर दूर, एक अफ़सुर्दा मकां में सर्द बिस्तर पर
कोई दिल है कि हर आहट पे यूँ ही चौंक जाता है
मेरी आँखों में आँसू आ गए नादीदा आँखों के
मेरे दिल में कोई ग़मगीन नग़मा सरसराता है।
रेगज़ारों में बगूले के सिवा कुछ भी नहीं
साया-ए-अब्रे-गुरेज़ां से मुझे क्या लेना?
बुझ चुके हैं मेरे सीने में मोहब्बत के कंवल
अब तेरे हुस्ने-पशेमां से मुझे क्या लेना।
मेरे सरकश तरानों की हक़ीक़त है तो इतनी है
कि जब मैं देखता हूँ भूख के मारे किसानों को
ग़रीबों, मुफ़लिसों को, बेकसों को, बेसहारों को
सिसकती नाजनीनों को, तड़पते नौजवानों को
हुकूमत के तशद्दुद को, अमारत के तकब्बुर को
किसी के चीथड़ों को और शहंशाही ख़ज़ानों को
तो दिल ताबे-निशाते-बज़्मे-इश्रत ला नहीं सकता
मैं चाहूँ भी तो ख़्वाब-आवर तराने गा नहीं सकता।

स्वतंत्रता मिलने के तुरंत बाद आकाशवाणी पर एक नज़्म पढ़ते हुए

उन्होंने देश में आज़ादी का अभिनंदन इस प्रकार किया—

आज ज़ंजीरे-महकूमियत कट चुकी है
और इस मुल्क के बहरो-बर, बामो-दर
अजनबी कौम के जुल्मत-अफ़सां
फरेरे की मनहूस छायाओं से आज़ाद है।
खेत सोना उगलने को बेचैन है।

सन् 1948 में बंबई आने के बाद उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू होता है। 'आज़ादी की राह' नामक फ़िल्म में उन्हें, जैसे ही गीत लिखने का अवसर मिलता है, सबसे पहले वे अपनी जननी को नमन करते हैं— 'भारत जननी तेरी जय हो...' भारत के स्वतंत्रता आंदोलन से बहुत प्रभावित थे और इस आंदोलन में एक प्रमुख हथियार था, 'चरखा' इसलिए उन्होंने दूसरा गीत लिखा— 'मेरे चरखे में जीवन का राग सखि...।' आगे उन्होंने इस फ़िल्म में दो गीत और लिखे— 'जाग उठा है, हिंदुस्तान...' और 'बदल रही है ज़िंदगी...'

साहिर हिंदुस्तान की सरज़मीं से बहुत मोहब्बत करते थे। मज़हब के आधार पर किसी नए मुल्क का निर्माण उन्हें क़तई बर्दाश्त न था। इसलिए उन्होंने हिंदुस्तान में रहना पसंद किया। उन्हें अपने देश का इतिहास, संस्कृति, रीति-रिवाज और रवायतें प्रभावित करती थीं। स्वाधीनता के आंदोलन में यहाँ के युवकों ने जिस तरह अपनी जां की बाज़ी लगाकर देश को आज़ाद कराया था, वह जज्बा साहिर को आंदोलित करता था। फ़िल्मों की तमाम बंदिशों के बाद जब भी उन्हें मौक़े मिले वे अपने जज़्बात कहने से पीछे नहीं हटे। फ़िल्म 'नया दौर' का यादगार गीत देखिए— 'यह देश है वीर जवानों का, अलबेले और मस्तानों का...।' देश के नौजवानों की वीरता, उनका शौर्य और देश की शान के लिए मर-मिटने वाली उनकी भावना इस गीत में ख़ूब उभरकर आई। इस गीत को पढ़ते और सुनते हुए एक युवा भारत के दर्शन होते हैं। उमंगों से भरा देश। वीरों का देश, पूरी तरह स्वस्थ और सुंदर देश। आज भी हर पंद्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को प्रत्येक स्कूल-कॉलेज में और किसी राष्ट्रीय कार्यक्रम में कहीं भी इसे सुना जा सकता है।

एक ओर साहिर इस गीत के माध्यम से देश के वीरों का अभिनंदन करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे इसी फ़िल्म के दूसरे गीत में मिल-जुलकर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी प्रदान कर रहे हैं। 'साथी हाथ बढ़ाना/एक अकेला थक जाएगा/मिलकर बोझ उठाना...।'

साहिर यह बात अच्छी तरह जानते थे कि सामूहिक श्रम और संघर्ष से आमजन के दुख-दर्द दूर होंगे और जीवन में ख़ुशहाली आएगी। अकेला आदमी क्या कर लेगा? इसलिए कोई अकेला न रह जाए, उसकी तरफ़ सबको हाथ बढ़ाना है। सबके सम्मिलित प्रयासों से ही बड़े लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। सामूहिक जनशक्ति का सम्मान करते हुए वे अपनी नज़्मों में उस अपराजेय शक्ति का गुणानुवाद करते हैं। वे कहते हैं-

रौंदी-कुचली आवाज़ों के शोर से धरती गूँज उठी है।
दुनिया के अन्याय-नगर में हक़ की पहली गूँज उठी है।

वे सारे कामगारों, मेहनतकशों को संगठित होने का आह्वान करते हैं और यह भी याद दिलाते हैं कि यह मेहनत तो कल तक हम दूसरों (अंग्रेज़ों) के लिए कर रहे थे। अब अपनों के लिए करना है। यहाँ दुनिया भर के श्रमशील मनुष्यों की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं— 'जो कुछ इस दुनिया में बना है, बना हमारे बल से।' और अंत में वे पूँजी के असमान वितरण पर प्रहार करते हुए कहते हैं— 'कब तक मेहनत के पैरों में ये दौलत की ज़ंजीरें। हाथ बढ़ाकर छीन लो अपने सपनों की तस्वीरें।'

इस प्रकार यह नज़्म एक विशिष्ट जनवादी भावना को बहुत अच्छे और अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करती है। निश्चित रूप से यह जन-जन की प्रेरणा का स्रोत है।

देश में औद्योगिक क्रांति हो रही थी। जगह-जगह नए कल-कारखाने खुल रहे थे। नदियों पर बाँध बनाए जा रहे थे। खेतों में भारतीय किसान हरित क्रांति का सपना देख रहे थे। आज़ादी के बाद हमें अपने सीमित संसाधनों के बल पर ही आगे बढ़ना था। इस तस्वीर को साहिर ने अपने शब्दों में पिरोया— 'जागेगा इंसान ज़माना देखेगा, कल का हिंदुस्तान ज़माना देखेगा।' इस गीत में वे बहुत आशावादी दिखाई देते हैं। और शुरू-शुरू में पूरे देश में यह आशा दिखाई दे रही थी। सैकड़ों सालों की ग़ुलामी से देश की जनता को आज़ादी मिली थी। अब अपने लोगों की सरकार थी, जिससे यह पूरी आशा स्वाभाविक थी कि एक शोषण विहीन समाज के निर्माण में हम आगे बढ़ेंगे और देश के नवनिर्माण में नए-नए लक्ष्य प्राप्त करेंगे।

जल्दी ही इस आशावाद से लोगों का मोहभंग होने लगा। सामाजिक विषमता ने धीरे-धीरे अपने पाँव पसारे और तेज़ी से पूरे समाज में इसका असर दिखाई देने लगा। धनिक और धनी होते चले गए तथा ग़रीब ज़्यादा ग़रीब होने लगे। जातिवाद और धर्मांधता का ज़हर समाज में तेज़ी से फैलता हुआ दिखाई दिया। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कुछ ज़्यादा सुधार दिखाई नहीं दिए। इस प्रकार आज़ादी के बाद जिस ख़ुशहाली की हम आशा लगाए बैठे थे, उसका सपना तेज़ी से टूटने लगा। साहिर की निगाहों से यह सब कैसे छुपता? वे एक

जागरूक शायर थे और उनकी शायरी सामाजिक प्रतिबद्धता से ओतप्रोत थी। उन्हें जब भी मौक़ा मिला, उन्होंने अपनी बात निर्भीकतापूर्वक कही। जिस आशावाद की वे बात कर रहे थे, उसका स्याह पक्ष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इसलिए उन्होंने लिखा— 'जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहाँ हैं?' इस गीत में वे आगे कहते हैं— 'जरा इस मुल्क के रहबरों को बुलाओ। ये कूचे, ये गलियाँ, ये मंजर दिखाओ।'

सदियों से हमारे समाज में, चाहे वह हिंदू समाज रहा हो या मुस्लिम समाज, उसमें 'स्त्री' की भूमिका अहम नहीं रही। भले ही एक ओर हम उसे आदि शक्ति कहकर देवी के रूप में पूजते आए हों या फिर पयम्बर की उम्मत कहकर उसे सम्मानित कर रहे हों, परंतु समाज में ऐसा नहीं था। दोनों समुदायों में 'स्त्री' को संपत्ति के सिवा कुछ नहीं माना जाता था। द्रौपदी को संपत्ति मानकर ही तो पांडवों ने जुए में दाँव पर लगा दिया था। इस परंपरा के अवशेष समाज में यत्र-तत्र स्पष्ट दिखाई देते थे। स्त्रियों को सरेआम अपमानित करना। उन्हें मात्र उपयोग की वस्तु समझना और उन्हें ज़बरदस्ती कोठों पर ले जाकर बिठा देना। इस पूरे परिदृश्य को साहिर ने प्रश्नवाचक मुद्रा के साथ विस्तार दिया है। गीत के अंत में वे कहते हैं— 'मदद चाहती है ये हव्वा की बेटी। यशोदा की हमजिंस राधा की बेटी। पयम्बर की उम्मत, ज़ुलैख़ा की बेटी।'

बचपन से साहिर अपने ही घर में स्त्री उत्पीड़न के घिनौने दृश्य देखते रहे। ज़मींदार के बेटे थे वे। घर में धन की कोई कमी न थी। उस अमीर घर में उनकी और माँ की छोटी-छोटी ज़रूरतें पूरी न हो पाती थीं। पिता उनकी ज़रूरतों को फ़िजूलख़र्ची कहते और उनकी अपनी महफ़िलों में शराब की नदियाँ बहतीं। रक़्क़ाशाओं के क़दमों में अशर्फियाँ लुटाई जातीं और ऐय्याशियों के लिए कितना भी ख़र्च करते रहने में उन्हें कोई संकोच न होता। घर में आने वाले सारे मेहमान, उनके पिता जैसे ही होते। स्त्री की क़ीमत उनके लिए पैरों की जूती से ज़्यादा कभी नहीं रही। साहिर घर में, समाज में और पूरे देश में 'स्त्री' की भयानक दुर्दशा देख रहे थे। वहीं वे अपनी माँ को देखते, अत्यंत ममतामयी, सहृदय और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए साहसी, कठोर और बेहद संघर्षशील। अपनी 'माँ' के रूप में औरत का यह अद्‌भुत रूप देखकर वे अभिभूत थे। साहिर की एक और प्रसिद्ध रचना है—

औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाज़ार दिया
जब जी चाहा कुचला मसला, जब जी चाहा दुत्कार दिया
तुलती है कहीं दीनारों में, बिकती है कहीं बाज़ारों में
नंगी नचवाई जाती है, ऐयाशों के दरबारों में
ये वो बेइज़्ज़त चीज़ है जो, बँट जाती है इज़्ज़तदारों में

इस नज़्म में औरत के ख़िलाफ़ जो रवायतें प्रचलित हैं, उन पर साहिर ने बहुत तीखा प्रहार किया है। इस प्रकार की, इतनी प्रभावशाली कोई दूसरी नज़्म या कविता समकालीन उर्दू-हिंदी साहित्य में देखने को नहीं मिलती। वे स्त्री को सिर्फ़ अबला ही बने रहना नहीं चाहते। और न ही मर्द से उस पर दया कर उसे उसका अपेक्षित प्रदान करने की याचना करते हैं। वे स्त्री से सबल होने के लिए कहते हैं। उठने के लिए कहते हैं। जागने के लिए कहते हैं और संघर्ष की राह पर निकल पड़ने के लिए उसे प्रेरित करते हैं। साहिर की इन पंक्तियों को देखिए— 'पोंछकर अश्क अपनी आँखों से...।'

ऐसे कई गीत हैं साहिर के जिनमें वे 'स्त्री' से अपना दायरा छोड़कर ज़माने से संघर्ष करने के लिए कहते हैं। माना कि स्त्री कोमल है। नाजुक है। पर उसे अपने अधिकारों के लिए उठना ही होगा। लड़ना ही होगा। वे चुनौती देते हुए स्त्री से कहते हैं— 'इतनी नाजुक न बनो, हाय! इतनी नाजुक न बनो।' और जब वह अपने भीतर से करुणा, ममता, प्रेम, साहस और शौर्य को बटोरकर एक मुकम्मल स्त्री बनती है तो वह ज़माने को चुनौती देती है— उसकी निगेहबानी में उसका साथी 'मर्द' पूरी तरह महफ़ूज़ है। वह कहती है अपने हमसफर मर्द से— 'तुम अपना रंजोगम अपनी परेशानी मुझे दे दो/मैं देखूँ तो सही, दुनिया तुम्हें कैसे सताती है/कोई दिन के लिए अपनी निगहबानी मुझे दे दो...।'

यह बात सदियों से चली आई है कि पुरुष, स्त्री का रक्षक है। बचपन से बेटी की सुरक्षा उसके पिता करते हैं। बहन के रूप में भाई। पत्नी के रूप में पति और माँ के रूप में बेटे। पूरा जीवन उसका पुरुषों की सुरक्षा का मोहताज है। साहिर इससे आगे जाकर कहते हैं— सुरक्षा का कवच है प्रेम और करुणा और इसका प्रबल स्रोत सिर्फ़ स्त्री के पास है। एक दिन वह उठकर कहती है— 'देखूँ तो सही, दुनिया तुम्हें कैसे सताती है? कोई दिन के लिए अपनी निगहबानी मुझे दे दे...।'

स्त्री की इस निगहबानी को कोई भेद नहीं सकता। दुनिया की बड़ी से बड़ी ताकत और खुदाई भी। 'सावित्री' ने किस प्रकार संकल्प, साहस और अगाध प्रेम के बल पर 'सत्यवान' के प्राण बचाने के लिए काल का मुँह मोड़ दिया था। स्त्री के उस साहस और शौर्य की याद दिलाते हुए तथाकथित अबला को वे उसके महाशक्ति का रूप स्मरण कराते हैं। स्त्री सामने खड़ी है अपने प्रेमी की रक्षा के लिए। साहिर ने ही लिखा है— 'हुस्न हाजिर है मोहब्बत की सज़ा पाने को। कोई पत्थर से न मारे मेरे दीवाने को...।'

कहते हैं झूठे साधु-संन्यासी कि स्त्री नरक की खान है। दूर रहते हैं वे स्त्री की परछाईं तक से। छोड़कर चले जाते हैं, नवब्याहता स्त्री को।

ब्रह्म की तलाश में। कई धर्मों ने तो यहाँ तक कह दिया— स्त्री को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। मनाही कर दी उन्होंने स्त्री को धर्मदीक्षा देने से। न जाने कितने लोग स्त्री, घर और परिवार को छोड़कर संन्यासी हो गए। वे बहुत प्रतिष्ठित हुए। धर्म प्रणेता कहलाए। जो अपना कर्तव्य पूरा करते रहे। संसार के तमाम झंझावात झेलते हुए जो घर-परिवार चलाते रहे। न जाने कितनी माताएँ अकेले अपनी संतानों को पाल-पोसकर बड़ा आदमी बनाती रहीं। वे सब माया-मोह के प्राणी कहे गए। जो भाग गए जंगलों में। बैठे रहे किसी पेड़ के नीचे, वे महान कहलाए। उनकी अपूर्णता पर एक स्त्री की करारी फटकार देखिए, साहिर के शब्दों में— 'संसार से भागे फिरते हो/भगवान को तुम क्या पाओगे?/इस लोक को भी अपना ना सके/उस लोक में भी पछताओगे।'

इस प्रकार साहिर कभी भी स्त्री को अबला, कमज़ोर और असहाय नहीं मानते। वे उसे ज़माने द्वारा बनाए गए इस भ्रमजाल से बाहर निकालना चाहते हैं। सदियों से चली आई स्त्री की दुर्दशा देखकर वे व्याकुल हो जाते हैं, इसके लिए वे धर्म के ठेकेदारों को, चाहे वे किसी भी धर्म में हों, ख़ूब फटकारते हैं। मर्दों की सोच, उनके व्यवहार और स्त्री की सतत उपेक्षा के लिए वे उन्हें ख़ूब लताड़ते हैं। यह बात वे बार-बार दोहराते हैं कि 'स्त्री' जननी है। इसी से पीर, पैगंबर, औलिया, अवतार, संत, महात्मा, संन्यासी आदि पैदा होते आए और दुनिया में महान कहलाए। वहीं एक स्त्री (राधा) के प्रेम से प्रतिष्ठित होकर ही कृष्ण पूर्ण पुरुष कहलाते हैं। ऐसी 'स्त्री' अबला कैसे हो सकती है?

साहिर की शायरी में जगह-जगह समाज में व्याप्त 'स्त्री' उपेक्षा की घोर भर्त्सना की गई है। वे उन ताकतों की घोर निंदा करते हैं, जिनके चलते स्त्री शक्ति को हाशिए पर डाल दिया जाता है। वे समाज की हर स्त्री से उठने, जागने और संघर्ष करने का आह्वान करते हैं। वे स्त्री को याद दिलाते हैं कि उसके पास सृजन की अद्‌भुत क्षमता है। लाख बना ले कोई ताजमहल, अजंता एलोरा, पर एक हँसता हुआ शिशु तो स्त्री ही बना सकती है। लाख जीते होंगे लोगों ने बड़े-बड़े युद्ध परंतु प्रेम और करुणा का अथाह सागर तो स्त्री के पास ही है, जिनमें डूब जाते हैं बड़े-बड़े साम्राज्य और उनके सम्राट।

साहिर ने अपने बचपन में ग़रीब किसानों, मज़दूरों और दलितों की भी ख़ूब दुर्दशा देखी है। वे सोचते हैं, आदमी तो नंगा पैदा होता है। बिलकुल अकेला। फिर कहाँ से वह इतनी ज़मीनों, भवनों और धन-दौलत का मालिक बन बैठा? ज़रूर उसने दूसरे के हिस्से की जमीनें, भवन और धन-दौलत हड़पी होगी। अल्ला ने सबको एक जैसा बनाया था फिर कैसे कोई जमींदार और कोई उसका सेवक बन गया। ज़रूर इसमें कोई शरारत है। चंद मुट्ठी भर लोग मिलकर सारी दुनिया की दौलत हड़प कर जाना चाहते हैं। फिर वे दौलत के बल पर लोगों को ग़ुलाम बनाते हैं। ख़ुद ऐशो-आराम करते हैं और काम करने वालों पर हुक्म चलाते हैं। यह सरासर बेइंसाफ़ी है और यह बेइंसाफ़ी सदियों से चली आ रही है। तथाकथित धर्म इसका समर्थन करता है। वे पढ़े-लिखे और चालाक लोग इसे भाग्य का लेखा कहते हैं। वे ईश्वर की मरजी कहकर इसे चलने देते हैं। साहिर को यह सब बर्दाश्त नहीं। वे अपनी शायरी में इस बेइंसाफ़ी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं। वे लिखते हैं— 'समाज को बदल डालो। जुल्म और लूट के रिवाज़ को बदल डालो।' बहुत सीधे-साफ़ और सरल शब्दों में वे सामाजिक असमानता के विरोध में अपनी बात कहते हैं। आगे वे सामाजिक विसंगति और शोषण को बदल डालने की बात अत्यंत प्रभावशाली ढंग से कहते हैं। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ हैं शहर में, उनमें चंद लोग रहते हैं और बहुसंख्य लोग रात-दिन मेहनत करके भी बेघर हैं। फुटपाथ पर सोते हैं वे। तब उन्हें यह मशहूर व्यंग्य याद हो आता— 'चीनो-अरब हमारा, हिंदोस्तां हमारा। रहने को घर नहीं है, सारा जहां हमारा...।' लगातार वे अपनी शायरी में इस देश के सामान्यजन की बात करते हैं। मेहनतकशों का पक्ष प्रस्तुत करते हैं और बार-बार आह्वान करते हैं— 'साथी हाथ बढ़ाना।' उन्हें ऐसी दुनिया नहीं चाहिए, जैसी वह है। वे लिखते हैं—

साथी हाथ बढ़ाना...

हम मेहनत वालों ने जब भी मिलकर क़दम बढ़ाया
सागर ने रस्ता छोड़ा परबत ने शीश झुकाया।

वे तो इस दुनिया को बदलने की बात करते हैं। उन्हें आशा है ये दुनिया एक दिन ज़रूर बदलेगी। वे लिखते हैं—

हक़ माँगने वालों को जिस दिन सूली न दिखाई जाएगी
अपनी काली क़रतूतों पर जब ये दुनिया शरमाएगी
इंसान की कीमत जब झूठे सिक्कों में न तौली जाएगी
जब अंबर झूम के नाचेगा
जब धरती नगमे गाएगी
वह सुबह कभी तो आएगी...।

साहिर को समाज में शोषक और शोषित के रूप में दो वर्ग स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। एक शोषक समुदाय है। हर तरह के हथियारों से लैस। अपनी सुरक्षा के लिए हर प्रकार की कोशिशें करता हुआ। सबसे पहले तो वह शोषितों को कभी एक नहीं होने देना चाहता। उसके लिए जातिवाद के औज़ार हैं। भाग्यवाद के बंधन हैं। पूँजीवादी सरकारें उसकी बंधक हैं। जो लोग शासन में बैठे हैं, वे

पूँजी के सहारे ही वहाँ तक पहुँचे हैं। उनसे 'जनहित' की क्या आशाएँ की जा सकती हैं। वो तो भला हो लोकतंत्र का, जिसमें मन से न सही, ऊपर से ही भले जनता के पास सत्ताधारियों को जाना पड़ता है। वोट की ताक़त है उसके पास। जनता अपने इस बल पर सरकारें बदल सकती हैं, इसलिए उसकी चिंता करनी पड़ती है। इस प्रकार जनता के आसपास दोहरे चेहरों वालों की भीड़ इकट्ठी होती रहती है। ये नकली लोग परम हितैषी बनकर उसके पास आते हैं। साहिर उन मुखौटों से सावधान रहने के लिए कहते हैं— 'क्या मिलिए ऐसे लोगों से, जिनकी फ़ितरत छुपी रहे/नकली चेहरा सामने आए, असली सूरत छुपी रहे।'

धर्म जो अंतर्जगत् के रहस्यों को जानने का विज्ञान था, उसे लोगों ने अंधविश्वासों का पिटारा बना दिया। यहाँ हम पर हो रहे ज़ुल्मों का फ़ैसला आसमानों में होगा। ख़ुदा सब देख रहा है। उसकी लाठी में आवाज़ नहीं होती। उसके यहाँ देर है अंधेर नहीं। इसलिए अन्याय, अत्याचार और शोषण को झेलते रहो। उसका प्रतिरोध करने की क्या ज़रूरत है? इस धारणा पर चुटकी लेते हुए साहिर कहते हैं— 'आसमां पे है ख़ुदा और ज़मीं पे हम/आजकल वो इस तरफ़ देखता है कम।'

ज़िंदगी में जुए की तरह सब अनिश्चित है। जीतने के लिए दाँव तो लगाना ही पड़ेगा। और दाँव लगाने के लिए हौसले बुलंद होने चाहिए। अपने आप में भरोसा होना चाहिए। और हारने पर फिर एकजुट होकर संघर्ष करने की तैयारी। फिर दाँव दुबारा, लगातार। साहिर के शब्दों में इस बात को देखिए— 'तदबीर से बिगड़ी हुई तक़दीर बना ले/अपने पे भरोसा है तो इक दाँव लगा ले।'

चलना तो पड़ेगा ही। थककर बैठ जाने से कुछ नहीं होगा। चरैवेति चरैवेति, जीवन का महामंत्र है। कितने सरल शब्दों में साहिर इस मंत्र को गीत का रूप देते हैं— इक रास्ता है, ज़िंदगी...

साहिर देश के ग़रीबों, शोषितों, वंचितों और मेहनतकशों के शायर हैं। वे बार-बार अपने गीतों में शोषित वर्ग की व्यथा-कथा लेकर आते हैं। माना कि फ़िल्मों में गीत सिचुएशन के अनुसार लिखने होते हैं। साहिर ने भी कुछ लिखे। पहले तो उन्होंने नज़्में लिखीं, गीत लिखे। किसी को उनका लिखा हुआ पसंद आया तो उसने उसे अपनी फ़िल्म में ले लिया। किसी ने फ़िल्म की कथा सुनाई, उसमें गीतों के लिए सिचुएशन का चुनाव हुआ। फिर साहिर ने वही, जो उनके मन में था, जो उनके अनुभव में बीत चुका था, उसे उस सिचुएशन में शब्दों के साथ ढाल दिया। वे कहते हैं— 'दुनिया ने तजुर्बात-औ-हवादिस की शक्ल में जो कुछ मुझे दिया है वो लौटा रहा हूँ मैं।'

समाज की शुरुआत एक बच्चे से होती है। इंसान का बच्चा सिर्फ़ इंसान ही होता है, और कुछ नहीं। यदि वह बच्चा इंसान की तरह बड़ा होता तो इंसानों का ही समाज बनता। परंतु वह पैदा होते ही हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी और जाने क्या-क्या बना दिया जाता है। जबकि वह जानता तक नहीं कि ये विशेषण क्या हैं और क्यों उस पर थोपे जा रहे हैं? यह सिलसिला पूरी उम्र चलता है, कभी मरजी, कभी मजबूरी बस। तलवार के बल पर। धर्मों के फैलाव सारी दुनिया में ऐसे ही हुए हैं। बहुत सरल है, पैदा होते ही बच्चे पर कोई धर्म थोप दिया जाए। फिर वह अपने लिए नहीं धर्मों के लिए जीता, मरता है, यही तो सिखाया गया है उसे घुट्टी में। फिर युद्ध होते हैं, धर्मों के नाम पर। पृथक् राष्ट्रों का उदय होता है, धार्मिक आधार पर। धर्म, जिसका आधार प्रेम, करुणा, दया, ममता, सौहार्द और अहिंसा होना चाहिए था, वह भयंकर रक्तपात का कारण बन जाता है। साहिर इंसान के बेटे को इंसान ही बनाना चाहते हैं। ख़ालिस आदमी। उनकी यह बहुत प्रसिद्ध नज़्म है—

तू हिंदू बनेगा ना मुसलमान बनेगा
इनसान की औलाद है इनसान बनेगा

बच्चों का, बचपन का बहुत सम्मान है साहिर के मन में। यूँ ही नहीं कहा गया है यह कि बच्चे ईश्वर का रूप होते हैं। बच्चे के इस ईश्वरीय रूप का वर्णन साहिर के शब्दों में देखिए— 'बच्चे मन के सच्चे/सारी जग के आँख के तारे/ये वो नन्हे फूल हैं जो/भगवान को लगते प्यारे।'

साहिर, सामाजिक चेतना संपन्न शायर हैं। समाज में परिवार एक संपन्न इकाई है। परिवार के सदस्य और उनके आपसी रिश्ते यदि प्रेम और सहयोग में रचे पड़े हैं, रस सिक्त हैं तो परिवार सार्थक है। भाई-बहन का प्यार, अद्वितीय है आपसी रिश्तों में। बचपन से एक आँगन में खेले, पले और बढ़े। रहा हो माँ-बाप के मन में कोई भाव कि यह बेटी है। पराए घर की है। इसे जाना है, दूसरे घर और यह बेटा है अपना। वंश बढ़ाएगा। पर भाई-बहन में ऐसा कोई भाव नहीं। भाई, बहन की ख़ुशी के लिए सब कुछ लुटाने को तत्पर और बहना के प्यार की तो कोई सीमा नहीं। वह अनंत है, आकाश जैसा। साहिर एक बहन की भावाभिव्यक्ति कैसे व्यक्त करते हैं। देखिए— 'मेरे भैया को संदेशा पहुँचाना, रे चंदा तेरी जोत बढ़े...' भाई तो बहना के लिए हमेशा कुछ न कुछ लाते ही हैं। राखी पर तो एक धागा बँधाने के लिए दौड़े चले आते हैं, न जाने कितनी दूर से। वे अपनी ओर से बहना को कुछ उपहार भी देते हैं। परंतु वास्तविकता ये है कि भाई घर आ जाए, जिसे नहीं देखा सालभर से उसने, उसे कुछ नहीं चाहिए। बस उसकी हँसी, उसकी एक झलक और उसका बात-बात पर छेड़ना, फिर जीवित हो जाए। साहिर किसी बहन के भावों को कैसे

व्यक्त करते हैं, इस गीत में देखिए—

तेरी साँसों की क़सम खाके, हवा चलती है
तेरे चहरे की झलक पाके, बहार आती है
एक पल भी मेरी नज़रों से तू जो ओझल हो
हर तरफ़ मेरी नज़र तुझको पुकार आती है
मेरे भैया, मेरे चंदा, मेरे अनमोल रतन
तेरे बदले में ज़माने की कोई चीज़ न लूँ

यह सच है कि बेटी को एक दिन किसी नए परिवार में जाना है। एक युवक और एक युवती मिलकर नया घर बसाएँगे। पिता क्या दे सकता है, अपनी बेटी को सिवा मंगल कामनाओं के। धन-संपत्ति से परिवार नहीं चलते। एक हद तक ज़रूरी है वह सब। परंतु धन कभी परिवार की ख़ुशहाली का आधार नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो धनिक वर्ग के सारे परिवार परम सुखी होते। परंतु ऐसा कहाँ है? जहाँ धन केंद्र में है वहाँ सिरे से सुख गायब है। पारिवारिक सुख का आधार है परस्पर विश्वास, सहयोग और प्रेम। यह भीतर की केमेस्ट्री है, जो समझ से विकसित होती है। पिता उसी समझ के लिए दुआएँ करता है और कहता है—

बाबुल की दुआएँ लेती जा/जा तुझको सुखी संसार मिले
काँटा भी न चुभने पाए कभी मेरी लाडली तेरे पाँवों में
उस द्वार से भी दुख दूर रहें जिस द्वार से तेरा द्वार मिले
बाबुल की दुआएँ...

इस गीत की अंतिम लाइन बहुत लाजवाब है— 'उस द्वार से भी दुख दूर रहें जिस द्वार से तेरा द्वार मिले।' यहाँ साहिर का मन बोलता है— सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय। बाप अपनी बेटी को तो दुआयें देता ही है पर वह जानता है कि जब सब सुखी होंगे, तब उसकी बेटी भी सुखी होगी। पड़ोसी दुखी हो तो बेटी अपने घर में कैसे सुखी रह सकती है। इसलिए साहिर कहते हैं— उस द्वार से भी दुख दूर रहें, जिस द्वार से तेरा द्वार मिले। एक बेटी को दुआ देते हुए नितांत व्यक्तिवादी क्षणों में साहिर की सामाजिकता किस प्रकार उभरकर आती है, यह इस गीत की ख़ूबसूरती है और साहिर की क़लम का कमाल भी।

साहिर, राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के धनी शायर हैं। उन्हें अपने समय और समाज की पूरी चिंता है। उन्होंने आज़ादी का संघर्ष देखा। देश के लिए जान हथेली पर लेकर मरने-मिटने वालों की जवानियाँ देखीं। जुलूसों-रैलियों और निहत्थे सत्याग्रहियों पर पुलिस की लाठियाँ बरसते देखीं। यह सब किसलिए? जननी जन्म भूमि के सम्मान के लिए। उसकी स्वाधीनता के लिए। जो मर गए, मिट गए। शहीद हो गए देश के लिए, उनके बलिदान को भला कैसे न कोई स्मरण करें। साहिर नतमस्तक हैं, उनकी कुर्बानी के लिए। उन्हें रह-रहकर स्वाधीनता आंदोलन में संघर्षरत वीरों की याद आती है। वे उनकी शान से अशआर लिखते हैं। नमन करते हैं उन्हें।

स्वाधीनता आंदोलन का पटाक्षेप : दो राष्ट्रों की अवधारणा से वे बहुत आहत हुए थे। यह खेल है सियासतदारों का। आमजन को धर्म के नाम पर बरगलाया जाता है। सदियों से विभिन्न धर्मों के लोग यहाँ एक साथ रहते आए हैं। आज़ादी का आंदोलन भी सबने मिल-जुलकर लड़ा। जो शहीद हुए देश के लिए, लटक गए हँसते-हँसते जो फाँसी के फंदों पर, पूरे देश के लिए। उन्हें क्या पता था कि उनके मरने के बाद लोग आपस में लड़-भिड़कर देश का बंदरबाँट करेंगे। वह भी धर्म के नाम पर। साहिर ने यह परिदृश्य देखा और भोगा, उन्हें यह समझते देर न लगी कि यही बुर्जुआ मानसिकता है। वे किसी भी हालात में धर्म के आधार पर देश नहीं चुन सकते थे, इसलिए उन्होंने भारत में ही रहना पसंद किया, इस उद्घोषणा के साथ कि भारत उनका देश था, है और रहेगा।

धीरे-धीरे उन संकल्पों का क्षरण होने लगा, जिन्हें लेकर हमने आज़ादी का संघर्ष जीता था। देश का किसान, मज़दूर, वंचित और स्त्री शक्ति की उपेक्षा देखकर साहिर का दिल दहल उठा। उन्होंने इनके पक्ष में अपनी शायरी के बल पर झंडा बुलंद किया। उन्होंने इनके दुख-दर्द को समझा, उसे वाणी प्रदान की। उनके पक्ष को जन-जन तक पहुँचाया और सबको एकजुट होने का आह्वान किया—

शाही दरबारों के दर से फ़ौजी पहरे ख़त्म हुए हैं,
जाती जागीरों के हक़ और मोहमल दावे ख़त्म हुए हैं।
शोर मचा है बाज़ारों में, टूट गए दर ज़िंदानों के,
वापस माँग रही है दुनिया ग़सब-शुदा हक़ इंसानों के।

साहिर एक समाजवादी समाज का सपना देखते हैं और उसे पूर्ण करने के लिए वे संघर्ष का रास्ता चुनने की सलाह देते हैं। वे निराशावादी नहीं हैं। उन्हें विश्वास है— 'वह सुबह कभी तो आएगी...।'

साहिर बार-बार एकजुटता के साथ सामूहिक संघर्ष का आह्वान करते हैं। दुख है, जीवन में। परेशानियाँ भी अनगिनत हैं। परंतु यथास्थिति को स्वीकार कर चुपचाप बैठने से क्या होगा? निराश होकर मुँह छुपाने से तो समस्याएँ हल नहीं होंगी। जब आप संघर्ष करेंगे, तब आपका विरोध भी होगा, अवश्य होगा। उस विरोध से आहत भी होंगे आप। निश्चित रूप से यह राह ग़मों से भरी है। परंतु

हँसते-मुस्कुराते हुए ही आपको आगे बढ़ना होगा। देखिए साहिर इस मनोदशा पर क्या कहते हैं— 'न मुँह छुपा के जियो और न सर झुका के जियो/ग़मों का दौर भी आए तो मुस्कुरा के जियो।'

व्यक्ति ख़ुशहाल होगा तो समाज ख़ुशहाल होगा। आर्थिक आधार इस ख़ुशी का मूल है। जीवन जीने के लिए, शरीर चलाने के लिए, उसे भोजन, पहनने को कपड़े और सिर छुपाने को छत तो चाहिए। इन बुनियादी ज़रूरतों के लिए ही संघर्ष है, समाज में असमान वितरण के कारण ही एक खास वर्ग के लिए इन चीज़ों का टोटा है और दूसरे वर्ग के पास ये चीज़ें ज़रूरत से ज़्यादा हैं। माना कि अँधेरी रात है परंतु साहिर कहते हैं— 'अँधेरी रात में दिए जला के जियो।'

बच्चे, युवा, प्रौढ़ और स्त्रियों से मिलकर बनता है परिवार। परिवारों से मिलकर समाज। बच्चों पर न लादें हम कोई तथाकथित धर्म। न करें उनका निर्मल मन मैला? युवाओं की वीरता, बाँकपन और अदम्य उत्साह देश की सुरक्षा के लिए, मानवता की रक्षा के लिए काम आए। प्रौढ़ अपने अनुभव से हमें संपन्न करें—

मन रे तू काहे ना धीर धरे
वो निर्मोही मोह ना जाने, जिनका मोह करे
इस जीवन की चढ़ती ढलती
धूप को किसने बाँधा
रंग पे किसने पहरे डाले
रूप को किसने बाँधा
काहे ये जतन करे

स्त्री? स्त्री तो परिवार का केंद्र है। जैसे सूरज धरती का केंद्र है। सूरज के उगते ही धरती के प्राणों में जीवन का संचार होने लगता। धरती का परिवार : पेड़, पौधे, परिंदे, पहाड़, नदियाँ, पशु, मनुष्य एवं संपूर्ण जड़-चेतन, जंगल आह्लादित हो उठता है। ऐसी है स्त्री, सूर्य के समान है। माँ, बहन, पत्नी, प्रेमिका कितने रूपों में वह आपका उपकार करती है, अपने लिए बिना किसी अपेक्षा के। इसलिए उसका मान, सम्मान और अस्मिता हमेशा अक्षुण्ण रहनी चाहिए। तभी तो साहिर घोषणा करते हुए दुनिया वालों से पूछते हैं— 'औरत संसार की क़िस्मत है, फिर क्यों तक़दीर की हेठी है?'

इस प्रकार साहिर ने फ़िल्मों में और फ़िल्मों के बाहर अपनी राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना से भरपूर अशआर ज़माने को दिए। अलबत्ता तो उनकी नज़्में पहले आईं, बाद में फ़िल्म वालों ने अपनी फ़िल्मों में उन्हें ख़ूबसूरत फ्रेम के साथ जड़ लिया। गर फ़िल्मों की सिचुएशन के लिए भी उन्हें लिखना पड़ा तो उन्होंने वही लिखा, जैसा वे सोचते थे और अनुभव करते थे। राष्ट्र और समाज के उत्थान के लिए वे अपनी शायरी में सतत संघर्षशील दिखाई देते हैं। वे कहते हैं— 'माना कि इस ज़मीं को न गुलज़ार कर सके/कुछ ख़ार कम तो कर गए, गुज़रे जिधर से हम।'

शेष अगले अंक में....

संपर्क : 326 बी/आ महालक्ष्मी नगर इंदौर 452010 मो. 9425167003

लक्ष्मीनारायण पयोधि की नयी पुस्तकें

डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा' की आलोचनात्मक पुस्तक

कोशल पब्लिकेशन्स
अयोध्या (उ.प्र.)

शख़्सियत

चेतन औदिच्य की 'एकोहम् बहुस्याम्' वाली उदात्त कला-भूमि

विनोद शाही

चेतन औदिच्य भीतर और बाहर की एक साथ यात्रा करने वाले चित्रकार हैं। इस वजब से उनके बनाये चित्र 'छविमूलक बहुलता' से युक्त हो जाते हैं। अलग तरह की यह बहुलता उनके चित्रों का 'दृश्य विधान' रचती है। वहां से वे दृश्य के पार जाने की कोशिश में अपने चित्रों की 'आत्मा' तक पहुंचते हैं, जिसे हम 'उदात्त भाव' की तरह इन चित्रों में सर्वत्र अंतव्याप्त देख सकते हैं।

उनमें आप एक साथ बहुत कुछ कह देने की आकुलता को पाएंगे। इससे लग सकता है कि उनके चित्र 'कोलाज-भाव वाली शैली' के चित्र हैं, परंतु ऐसा नहीं है। दर असल वे कोलाज की 'असंबद्धता की संबद्धता' वाले 'फॉर्म' को सजगता पूर्वक तोड़ते हैं और वहां पहुंचते हैं, जहां संबद्धता खुद ही खुद को तोड़ने का जोखिम उठाती है। उसके बेशुमार टुकड़े हो जाते हैं। पर आप उन सभी टुकड़ों के भीतर उसी मूलभूत 'आद्य' (प्राइमल) संबद्धता से अपना रिश्ता बनाये रखते हैं।

इस लिहाज से देखा जाये तो हम उन्हें 'एकोहम् बहुस्याम' वाली शैली के चित्रकार कह सकते हैं।

यह वह शैली है, जो 'छवियों' के कोलाज' को नहीं, 'कोलाज की अंतस्संवेदना' को किसी 'एक ही छवि' की तरह गढ़ती है।

आप उनके चित्रों को देखेंगे, तो पायेंगे कि वहां वह जो केंद्रीय बिंब है, वह जैसे खुद को खोजने निकल पड़ा है। अपनी इस खोज में वह अपने कई हमशक्लों से मिलता है, अपने 'कैरीकेचर्ज़' का सामना करता है, अपनी 'आत्म-विरुद्धता' के रूबरू होता है, गहराई में छिपे अपने ही बीज-रूपों तक पहुंचता है और फिर आत्म-विस्तार के लिये अपने अस्तित्व के नक्शों को फिर से बनाता-बिगाड़ता है।

उसकी इस यात्रा में इतिहास और परंपरा से ताल्लुक रखने वाले लोक वृत्त और मिथक, साधना पद्धतियां, तंत्र, योग, कुण्डलिनी के रहस्य, मंत्र और बीज-ध्वनियां-ये सब उसे अपने अपने सच से वाकिफ कराना चाहती हैं, परंतु उसकी यात्रा इन सब के धर्मों और तीर्थों पर कहीं भी रुकती अटकती नहीं।

बस कोई गहरी जिजीविषा है, जो ऊर्ध्वारोहण करती और पार झांकती हुई दिखाई देती रहती है।

फिर ये सब छवियां अपनी विविधता-बहुलता में आसपास छिटकी पड़ी रह जाती हैं, जैसे कि इन्होंने जो कहना था कह लिया, जो करना था कर लिया।

ये चित्र उन सब छवियों को उकेरते हैं, खुद को उन्हीं के भीतर से नये रूप में रचते हैं और फिर अपनी ऊर्ध्व जिजीविषा से दीप्त होकर, इस तरह दिखाई देते हैं, जैसे कह रहे हों, सफर अभी बाकी है।

हम समझ जाते हैं, वहां पीछे जो है, वह बेशकीमती होकर भी दो कौड़ी का है, क्योंकि मणि-रत्न असल में कहीं और हैं कहीं और, यानी हमारी जिजीविषा के नित नये ऊर्ध्वारोहण में।

सवाल उठ सकता है कि उन्हें अपनी इस विशिष्ट शैली का विकास करने की ज़रूरत क्यों महसूस हुई

होगी।

दरअसल आज हम जिस दौर में जी रहे हैं, वह यथार्थ के विविध-बहुल हो जाने की सूचना देता है। हम अपनी पहचान खो जाने के दौर में नहीं हैं, अपितु बहुत सी पहचानों के बीच अपनी प्रामाणिक छवि तक न पहुंच पाने के संकट के शिकार हैं। संश्लेषण मुमकिन नहीं है। वर्ग, लिङ; नस्ल, जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, संस्कृति आदि के विविध तरह के सच हैं, जो हमारे होकर भी हमारे नहीं हो पाते हैं। फिर भी ऐसा नहीं है कि हम परायेपन या अजनबीपन के शिकार हो गये हों, जैसा कि पिछले दौर में दिखायी दे रहा था। इसे हम आधुनिकता के बाद के दौर में प्रकट उत्तराधुनिक 'विखंडन और बाहुल्य' का संकट भी कह सकते हैं।

परंतु दिक्कत यह है कि यथार्थ के खंडित विखंडित हो जाने से पैदा हुए टुकड़ों को बटोरने की कोशिश कामयाब नहीं होती। ये टुकड़े एक दूसरे से दूर जा पड़े हैं, पर उन सब में हमारी कोई न कोई छवि मौजूद रहती है।

खुद को खोजते हुए हम गहराई में उतरते हैं, तो अपने विरोध में चले जाते हैं।

और विराट से रिश्ता बनाते हैं, तो हम अन्य या 'अदर' हो जाते हैं।

भीतर हमारी प्रतिच्छवियां हमें घेरने लगती हैं। और विराट में अबूझ 'ज्योमैट्री', हमारा 'अन्य' होकर, हमें भटकाती है।

चेतन औदिच्य के चित्रों के ये दो आयाम हैं, जो एक दूसरे में गुत्थम गुत्था हैं। भीतर की दुनियां उनके चित्रों में मनुष्यों और पशुओं के चेहरों या देह के अंगों की तरह, जैसे हाथ, पैर, आंख या अन्य छवियों की तरह सामने आती हैं। भीतरी जगत से संबंधित इन सभी में नीचे से ऊपर की ओर गति नुमाया है, जो ऊर्ध्व के प्रति उनकी संपृक्ति के कारण है।

विराट को बांधने के लिये वे ज्योमैट्री की मदद लेते हैं। वृत्त, त्रिभुज, वर्ग, आयत आदि सभी की अपनी अपनी 'स्पेस' है, जो अन्य सभी छवियों को एक 'फॉर्म' या संश्लेषण प्रदान करती है। परंतु यह फॉर्म मौजूद होकर भी पूरी तरह बांधती नहीं है।

भीतरी नचनिया का वह जो ऊर्ध्वारोहण है, वह इस ज्योमैट्री को तोड़ता है।

विराट की गति 'अवतरण' मूलक है, इसलिये वह 'ऊपर से नीचे' की ओर आती है।

लेकिन अंतत: उनके चित्रों में अवतरण पराजित होता है और ऊर्ध्वारोहण विजयी।

उनके चित्रों में मिथक पत्थर में उकेरी गयी आकृतियों के करीब चले जाते हैं। पत्थर छवि को शाश्वत बनाने में मदद करता है और समय को ठहरा देता है। वहां शैली भी कुछ कुछ ग्रीको रोमन प्रभाव वाली गांधार कला जैसी हो जाती है। ग्रीक देवताओं के तीखे नैन नक्श और बौद्ध करुणा से आप्लावित वरद हस्त, उनके शैव और वैष्णव आधार को परंपरागत धार्मिकता से अलहदा करते हैं।

तंत्र की काम ऊर्जा में वे स्त्री पुरुष के द्वैत से उपजा विखंडन तो देखते हैं, पर अपने ऊर्ध्व भाव से, उसके ऊपर उठ जाते हैं।

रंगों में सर्वाधिक व्यंजक है उनका आकाशवर्णी श्वेत-नील, जो नीलोत्पल की तरह भी खिलता है। पीले और लाल रंग में भी वे उनके खास तरह के धूसर, भूरे और लोहित पक्ष को बीच से झांकने के लिये ले आते हैं। वह इन रंगों के आंतरिक पक्ष को सामने लाता है, जो बहिर्मुख आसक्ति से बहुत अलग तरह है और इसीलिये आत्मोन्मुख भाव की सृष्टि करता है।

अब कह सकते हैं कि उनके चित्र, 'रस' के बजाय, 'उदात्त' को साधते हुए अधिक मालूम पड़ते हैं। यह वह उदात्त है, जिसके नीचे की दुनियां, अपने 'पाशविक कंकाल' की तरह पीछे छूट गयी है, और ऊपर खुलता चेतना का संसार आकाशवर्ण श्वेत-नील की तरह 'चिति-मेघ' सा घुमड़ती देखा जा सकता है।

ए - पालम विहार, गुरुग्राम -122017
मो नं. 981465809

■

पुस्तक समीक्षा

भाषा – काव्यभाषा की अवधारणाओं का पुनरावलोकन: संभव होने की अजस्त्र धारा

– डॉ. विभा सिंह

पुस्तक विवरण–

पुस्तक	:	'संभव होने की अजस्त्र धारा'
लेखक	:	डॉ. पवन माथुर
संस्करण	:	2022
मूल्य	:	₹695/–
प्रकाशक	:	हंस प्रकाशन, नई दिल्ली

मानव सभ्यता के विकास में भाषा का स्थान अपरिमेय रहा है। भाषा वैज्ञानिकों ने मनुष्य की संप्रेषण शैली तथा उसके विचारों के प्रवाह को लेकर अत्यंत सूक्ष्म एवं विस्तृत चिंतन किया है। भाषा मानव – मस्तिष्क की उर्वर भूमि में अंकुरित,पल्लवित और विकसित होती है । उसकी अविराम संचरणशीलता एवं निरंतर गतिमयता में ही उसका स्वरूप संवरता रहता है।

इसी तथ्य की वैज्ञानिक दृष्टि से पुनरावलोकन करते हुए भाषा–काव्यभाषा के प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग की यात्रा को रेखांकित करती हंस प्रकाशन से डॉ. पवन माथुर की सद्य:प्रकाशित पुस्तक 'संभव होने की अजस्त्र धारा' आयी है।

पुस्तक प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक प्रचलित भाषा में आए परिवर्तन को भाषा के 'जैविक आधार', और इस आधार की प्रगैतिहासिकता की राह को टटोलती है । भाषा के विकास और प्रयोग के लिए कौन –सी जैविक परिस्थितियां जिम्मेदार हैं, मस्तिष्क में भाषा का निर्माण कैसे होता है, भाषा क्षमता कैसे प्राप्त होती है, भाषा के पीछे कौन – सी स्नायविक प्रक्रिया कार्य करती है, मानव जाति में भाषा का विकास कैसे हुआ? भाषा व्यवहार क्या है? मनुष्य समाज में भाषा व्यवहार करने से पहले उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है? मस्तिष्क में भाषा व्यवस्था के नियम कैसे काम करते हैं? भाषा से संबंधित दोष(भाषा –विकार) क्या है? आदि प्रश्नों को सैद्धांतिक –वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखते हुए भाषा के प्रारूप का पुनरावलोकन करती है। इस पुनरावलोकन में यह पुस्तक प्रश्न, लेखकीय – विचार, निष्कर्ष, प्रस्ताव गूंथते हुए पूछती है कि'' क्या हम किसी जैविक भाषा की परिधि में कैद हैं? 'भाषा' की मूल ईप्सा क्या है? क्या भाषा 'काल – ध्वंस' का कारण बनती? या वह 'स्व – ध्वंस' में भी लिप्त हो रही है? इस 'स्व –ध्वंस' की गरज समाज को कैसे छिन्न – भिन्न कर रही है इसको भी संकेतित करती है।'' (पृष्ठ –6) विभिन्न शोध प्रसंगों एवं उदाहरणों के द्वारा भाषा सीखने के संबंध में ''जब तक कि हमें शब्द/स्वर का ज्ञान बाहर से निवेशित नहीं किया जाता, तब तक हम 'भाषा' सीख नहीं पाते ... अत: भाषा के लिए बाह्य – उद्दीपक,और जैव – भाषा – तंत्र दोनो ही आवश्यक है।''(पृष्ठ – 31, 32)

आज से लगभग चालीस हज़ार वर्ष पूर्व भाषा की सबसे कच्ची छाप एवं आगे उसके सभ्य, संस्कृत होने के साथ–साथ सृजनात्मकता नए प्रारूपों की असीम संभावनाओं को व्यक्त करती यह पुस्तक भाषा एवं काव्यभाषा पर अलग–अलग लिखे तेरह लेखों का संग्रह है। जो भाषा के निर्माण और विकास की यात्रा को लेकर लिखे गए– 'भाषा की कच्ची छाप' , 'भाषा की जैविक परिधि', 'भाषा का मस्तिष्क में प्रारूप', 'भाषा की आंतरिक ईप्सा:काल ध्वंस', 'वाक् और काल', और 'भाषा के खेल' शीर्षक से है। जिसमें डॉ. माथुर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के विभिन्न भाषागत मतों को अपने अध्ययन विवेचन का आधार बनाकर,अपने मत की पुष्टि करते हुए भाषा के निर्माण, संरचना, जैविकी, मस्तिष्क–रचना, व्याकरण का मस्तिष्क से संबध आदि पर विस्तार से चिंतन करते हैं।

सहस्राब्दियों की यात्रा कर भाषा अपनी कच्ची छाप से आगे बढ़कर भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनी। मानव- मस्तिष्क का इस सृष्टि में अगर सबसे पहला कोई आविष्कार था- तो वह शब्द ही कहा जा सकता है। भाषा का लिखित रूप हो अथवा मौखिक 'भाषा' में जीवन और जगत की गतिविधियों को पूर्णत: प्रतिबिंबित किया जा सकता है। हालांकि लेखक का प्रस्ताव यह है कि ''यथार्थ का पुनर्सृजन मस्तिष्क में किन्ही जैविक प्रणालियों द्वारा होता है, और हम जिस भाषा में अभिव्यक्ति करते हैं, वह इसी पुनर्सृजन पर आधारित है। इन अर्थों में हम जैविक भाषा की परिधि में कैद हैं (पृष्ठ -32- 33)'' अमूमन यह माना जाता है कि भाषा में समय-समय पर जो बदलाव या विकास होते हैं वह मनीषियों के चिंतन-मनन का ही परिणाम है। चिन्तन के स्वरूप के बदलाव के साथ ही भाषा में भी बदलाव आने लगता है। किंतु लेखकीय प्रस्ताव यह है कि प्रत्यय या अवधारणाएं, 'भाषा' में ही जन्म लेती हैं; यहां तक कि 'भाषा' की 'कालबद्धता' नए चिंतन - विचार के लिए बाधा भी बन जाती है। पुस्तक, विज्ञान के इतिहास से उदाहरण देते हुए यह प्रस्तावित करती है कि 'अरस्तू' अपने समय की 'भौतिकी की भाषा 'के आधार पर जिस 'प्रयोग' को एक दृष्टि से देखता है, उसी प्रयोग को कई शताब्दियों बाद 'गैलिलियो' एक नई दृष्टि से इसलिए देख पाता है, चूंकि 'गैलिलियो' को अलजबरा एवं ज्यामिति के सम्मिलन से 'भौतिकी की नई भाषा' उपलब्ध थी। अत: 'भाषा' के परिवर्तन से नए चिंतन की संभावना बढ़ जाती है।(पृष्ठ -66-67)

लेखक भाषा की काव्यभाषा तक की इस छलाँग को--' रूमानवाद से उत्तर आधुनिक बोध तक', 'संभव होने की अजस्र धारा: काव्य भाषा' नामक आलेखों में सफलतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं। यह पुस्तक भाषा-काव्यभाषा पर भारतीय एवं यूरोपीय चिंतन की मूल अवधारणाओं को रेखांकित करने के साथ काव्य-भाषा की रागात्मकता, संकेतिकता तथा बहुल ध्वन्यात्मकता के महत्व को भी अनावृत करने का प्रयास करती है।

'रूमानवाद से उत्तर आधुनिक बोध तक' में यूरोपियन औद्योगिक क्रांति से पड़े प्रभाव को वहाँ के दार्शनिक चिंतकों, स्वच्छंदतावादी विचारकों-साहित्य के द्वारा विश्लेषित करते हुए पवन माथुर जी ने 'वर्डवस्थ', 'चार्ल्स बादलेयर', 'स्टीफन मलार्मे', 'टी. एस. इलियट' के कविताओं का जो हिंदी अनुवाद रूप में प्रस्तुत किया है वह अनुपमेय है। सहज-सरल भाषा में इन कवियों की कविताओं को पढ़ते हुए, उनमें एक गहन शोधकर्ता के साथ-साथ सफल अनुवादक देखने को मिलता है।

'संभव होने की अजस्र काव्यभाषा' अंतर्गत स्विस-भाषाविद् 'सास्युर', 'डेनिश भाषाशास्त्री', 'लुई-जैल्मेव' की अवधारणाओं कि भाषा संकेतो का एक तंत्र है जिसके माध्यम से हम विचारों को अभिव्यक्ति देते हैं तथा हर संकेत किसी 'संकेतक' एवं 'संकेतित' के जुड़वा आधार पर ही कार्यशील होता है।....भाषा दो स्तरों पर कार्यरत है, एक स्तर 'ध्वन्यात्मक' है तो दूसरा अर्थात्मक को मान्यता देते हुए अंत में यह प्रस्तावित कर देते हैं कि ... काव्यभाषा में संकेतित की अपेक्षा 'संकेतिकों का प्रभुत्व रहता है।' 'संकेतक -शब्द की ध्वन्यार्थकता' तथा 'वाक्यों की विशिष्ट बुनावट' को काव्य अपनी तरह से ही उपयोग में लाता है। (पृष्ठ-128-137) इसे लेखक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'रात-भर' की कुछ पंक्तियों के उदाहरण एवं विश्लेषण से पुष्ट कर देता है।

'संज्ञा, सांकेतिकता तथा बहुल -ध्वन्यात्मकता' नामक आलेख में सन् साठ-सत्तर के दशक में सामाजिक - राजनीतिक तंत्र की नाकामयाबियों, मोहभंग एवं निजी संदर्भों, कष्टों को उकेरते रहे विभिन्न कवियों , जैसे- गंगा प्रसाद विमल, नरेंद्र मोहन, बलदेव वंशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपई, रामदरश मिश्र, श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेई तथा धूमिल के काव्यांशों के माध्यम से नई कविता के रूप-वैविध्य को विभिन्न प्रश्नों द्वारा जानने का प्रयास किया है।

अंतिम चार आलेख शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर और अज्ञेय की काव्य-यात्रा, भाषा-तकनीक की बारीकियों पर अलग से विचार करते हुए पवन माथुर उनके काव्य-स्वरूप-अभिव्यक्ति को नई उद्भनाओं, नए संदर्भ के साथ अर्थ-विस्तार देते हैं।

प्रसिद्ध आलोचक-विचारक श्री गिरधर राठी जी की इस मान्यता से सहमत ही हुआ जा सकता है कि 'प्रस्तुत पुस्तक में' देश - विदेश के जैविक, भौतिक, गणितीय आदि और भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक विवेचनों, उन के विकास क्रम के ज्ञानानुशासनों का वर्णन सरलता से हुआ है वह अचंभित करता है तथा डॉ. माथुर की 'जिज्ञासा, खोजबीन, ज्ञात-अज्ञात के बीच लगभग अदृश्य संबंध-सूत्रों को जोड़ने का हुनर अनोखा है। पुस्तक न केवल भाषा - काव्यभाषा के अदृश्य संबंधों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है बल्कि पाठकों के समक्ष संदर्भ-ग्रंथ के रूप में ज्ञान के अपार खज़ाने के द्वार भी खोलती है। अंतत: यही कहा जा सकता है कि पाठको, शोधकर्ताओं, अध्यापकों, सभी वर्ग के ज्ञानार्जन के लिए एक उपयोगी एवं संग्रहणीय पुस्तक है 'संभव होने की अजस्र धारा'!

■

पुस्तक समीक्षा

कथा कठौती (बाल कहानी संग्रह)

– गोकुल सोनी

पुस्तक विवरण–

पुस्तक	:	कथा कठौती
लेखिका	:	डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
संस्करण	:	2021
मूल्य	:	₹400/–
प्रकाशक	:	शिवम् प्रकाशन, प्रयागराज (उ.प्र.)

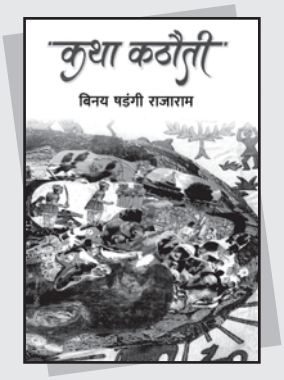

कहानियां साहित्य की प्राचीनतम विधा है, कहानी का प्रादुर्भाव और विकास उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता का उद्भव एवं विकास, यह साहित्य की सर्वाधिक शक्तिशाली एवं रोचक विधा है जिसके माध्यम से अपनी बात श्रोता या पाठक के दिल और दिमाग में पूरी तरह से संप्रेषित की जा सकती है। यही कारण है कि विश्व की अलग–अलग देशों, सभ्यताओं, और धर्मों में कथा साहित्य अनिवार्य रूप से मौजूद रहा है, फिर चाहे वे ईसप की कथाएँ हों, बौद्ध जातक कथाएँ, हातिमताई कि कहानियां हों, अलीबाबा या चालीस चोर अथवा वैताल पच्चीसी, सिंघासन बत्तीसी और पंचतंत्र।

बहुआयामी रचनाकार श्रीमती बिनय षडंगी राजाराम ने बाल–कथाओं की पुस्तक ''कथा कठौती'' का सृजन भी संभवत; कथा साहित्य की इसी लोकप्रियता को दृष्टिगत रखते हुए किया है। कहानियों के माध्यम से बच्चों के अन्तस् में संस्कारों का बीजारोपण और धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञान, कला, संस्कृति आदि का ज्ञान सरल और रोचक तरीके से रोपित किया जा सकता है। प्रसंगवश बाल–कहानियों में कितना प्रभाव होता है उसके लिए पंचतंत्र की कहानियों का इतिहास बताना तर्कसंगत होगा।

ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व दक्षिण पूर्व में महिलारोप्य नगर में अमरशक्ति नाम का अत्यंत प्रतापी, उदार, सम्पूर्ण कलाओं में निष्णात लोकप्रिय राजा था। उसके तीन पुत्र थे परन्तु दुर्भाग्य से उसके तीनों पुत्र अत्यंत मूर्ख, उद्दंड, अज्ञानी और किसी का भी सम्मान न करने वाले थे। राजा अमरशक्ति ने उनको शिक्षा देने के बहुत प्रयास किये, परन्तु उनपर कोई असर नहीं हुआ। थक–हारकर राजा ने अपने मंत्रियों से कहा, कि यदि पुत्र मर जाए तो इतनी पीड़ा नहीं होती, जितनी मूर्ख पुत्रों के कृत्यों से होती है। कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे ये निकम्मे राजपुत्र शिक्षित और विवेकशील बने। तब उनके मंत्री ने सुझाव दिया कि इनको ''पंडित विष्णु शर्मा'' के हाथों सौंप दीजिये।

पंडित विष्णु शर्मा को जब यह समस्या बताई तो उन्होंने भीष्म–प्रतिज्ञा ली कि मैं यदि छह माह में इनको शिक्षित नहीं कर सका, तो आप मुझे विद्या से शून्य घोषित कर दीजिएगा। आचार्य विष्णु शर्मा ने मनुष्य, जानवरों पशु–पक्षियों को पात्र बनाकर सुंदर और रोचक तरीके से कहानियाँ राजकुमारों को सुनाईं जिनमे व्यवहारिक ज्ञान और नीति शास्त्र भरा पडा था साथ ही वे रोचक और मनोरंजक भी थी। पता ही नहीं चला कि कब कैसे वे राजकुमार शिक्षित और विनम्र हो गये। उनको व्यवहारिक ज्ञान आ गया। वे ही कहानियाँ 'पंचतंत्र में समाहित हैं। यह उदाहरण कहानी कला की शक्ति और उपयोगिता बताने के लिए पर्याप्त है।

बाल–कहानियां लिखते समय जिस बाल–मनोविज्ञान, रोचक भाषा शैली और सहज–सरल शब्दावली की आवशयकता होती है वे सभी विशेषताएं डॉ. बिनय राजाराम के पास हैं। बड़ी बात यह कि जब जनश्रुतियों को आधार बनाकर कहानियां लिखी जाती हैं तो वे प्रत्येक पाठक को अपनी सी लगती हैं। उनमे लोक–गंध और मिट्टी

से जुड़ा सौंधापन सहज ही आ जाता है। मेरे पास जितनी भी बाल-कथा की पुस्तकें समीक्षार्थ आती हैं, उनको जांचने का थर्मामीटर मेरे पास है। वह थर्मामीटर है मेरी पोती 'बांधवी'। वह 9 वर्ष की है एवं कहानियों से उसे बेहद प्रेम है। मैं खुद पढने से पूर्व पुस्तक उसको देता हूँ। यदि वह मन लगाकर पुस्तक जल्दी पढ़ डालती है और कहती है कि दादा जी कहानियां बहुत मजेदार हैं, तो मैं मान लेता हूँ कि ये कहानियां जिनके लिए लिखी गईं हैं, उनके हृदय तक पहुँचने में सक्षम हैं और बाल-कथाकार सफल है। डॉ. बिनय राजाराम जी की पुस्तक उसको इतनी पसंद आई कि वह उसे अपने साथ नानाजी के घर ले गई। तब मुझे आदरणीय दीपक जी से यह दूसरी प्रति लेना पड़ी। इस संग्रह की सफलता का यह जीवंत प्रमाण है।

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में सोलह कहानियों को तीन खण्डों में बांटा गया है। प्रथम खंड में वे कहानियाँ हैं, जो पशु-पक्षियों, प्रकृति और अपने आस-पास के परिवेश से बच्चों का परिचय कराती हैं। द्वितीय खंड लोक-कथाओं किंवदंतियों तथा प्रेरक ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर लिखा गया है। तृतीय खंड में अपेक्षाकृत बड़ी कहानियां हैं जिनका शिल्प आत्मकथ्य शैली या डायरी लेखन अथवा यात्रा संस्मरण जैसा है। कहानियों की विशेषता यह है कि ये छह वर्ष से चौदह वर्ष तक के बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर बुनी गई हैं। आरम्भ भगवान् श्रीकृष्ण के सलोने बाल रूप को समर्पित करके किया गया है जो पाठक के मन में पढने से पूर्व ही बालसुलभ कोमल भावों का संचार कर देता है। भाषा शैली अत्यंत रोचक और पठनीय है। बीच-बीच में सरल भाषा में कविता की पंक्तियों को देने से कहानियां मनोरंजक हो गई हैं। यह गेयता बच्चों को बहुत भाती है। संग्रह की आरंभिक कहानी ''चटोरा कौवा'' बहुत मनोरंजक और शिक्षाप्रद है, जिसमे एक कौवे को पकी कुंदरू बहुत पसंद है। उसे देखकर उसके मुंह में पानी आ जाता है। वह माली बाबा से कुंदरू माँगता है। अब माँगने का यह तरीका देखिये, कितना रोचक है-

माली बाबा! माली बाबा!/ लाल टुक-टुक कुंदरू तुम्हारा/ भूख लगी है, खूब लगी है/ खाने दो, गुण गाने दो/
माली बाबा कहते हैं- कुंदरू तो दे दूंगा पर मुझे एक खुरपी की जरूरत है। वह लाकर दो. तब कौवा लुहार के पास जाता है। लुहार कहता है कि खुरपी तो दे दूंगा पर गरम लोहा ठंडा करने के लिए मुझे एक पानी का मटका लाकर दो. तब वह कुम्हार के पास जाता है। कुम्हार कहता है कि मटका तो दे दूंगा परन्तु मेरे गधे की पीठ में कीड़े हो गये हैं, उनको साफ़ कर दो। तब कौवा बड़ी मेहनत से वे कीड़े चोंच से साफ़ करता तब उसे मनपसंद कुंदरू मिल पाते हैं। संग्रह की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है यह कहानी जिसमें सहज और मनोरंजक तरीके से बच्चो को शिक्षा दे दी कि-1. कुछ मनचाहा पाने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है। 2. जरूरी नहीं कि एक प्रयास में ही तुम्हारा काम बन जाए, बार बार मेहनत करना होगी तभी सफलता मिलेगी, 3. बगैर कुछ मूल्य चुकाए मुफ्त में कुछ नहीं मिलता. 4. जब तक अपना लक्ष्य पूरा न हो, सतत प्रयास करते रहें, सफलता अवश्य मिलेगी। एक छोटी सी कहानी ने जीवन की सफलता का मूलमंत्र सहज तरीके से बच्चों को दे दिए।

कहानियों कि विशेषता यह है कि वे जिस प्राणी के जो गुणधर्म या स्वभाव है उसको उजागर करके बच्चों का ज्ञान-वर्द्धन करते हुए चलती हैं। कहानी ''चतुर सयानी कोयल रानी'' बताती हैं कि कोयल भले मीठी बोलती है परन्तु वह क्रूर और स्वार्थी होती है तथा अपने अंडे कौवे के घोंसले में रख देती है और कौवा दम्पति उनको अपने बच्चे मानकर उनका पालन पोषण करता है। सक्षम होते ही बच्चे उड़ जाते हैं और कोयल कौवे को ही नहीं, सभी को अपनी मीठी तान से बेवकूफ बनाती रहती है। ''कुए का मेंढक'' कहानी भी कहावत के आधार पर बुनी गई है। ''गप्पू हाथी'' कहानी में बेचारा भोला-भाला गप्पू हाथी अपने काले रंग और बड़े आकार से परेशान है और वह हंस जैसा सफेद रंग पाकर वजन से छुटकारा पाना चाहता है। बन्दर उसे सफेद रंग से पोत देता है तब उसे बड़ी जकडन होती है। पानी में नहाकर रंग छुडाकर उसको यह सत्य समझ में आता है कि भगवान ने जिसको जो रंग-रूप दिया है वही अच्छा है। हमे किसी से तुलना या उसकी नकल नहीं करना चाहिए. ''चितेरा मोर'' भी जब ईश्वर प्रदत्त रंगों से सभी जानवरों को रंग बिरंगा बना रहा होता है, तो रंग परीक्षण करने से जो रंग उसको लग गये थे उनसे वह रंग बिरंगा हो जाता है परन्तु उसके पैरो के लिए वह रंग नहीं बचा पाता. बच्चे सहज ही समझ पाते हैं कि जो दूसरों का भला करेगा उसका भला अपने आप हो जाएगा. यह ऐसा ही है जैसे फूल बाँटने वाले के हाथों में सुगंध रह जाती है। सृष्टि के सभी प्राणियों में मनुष्य सबसे अधिक बुद्धि-विवेक रखता है। कहानी ''न्याय प्रिय राजा'' यही बताती है। एक राजा के उपवन में आम के पेड़ की खोह में एक सर्प परिवार जिसमे नाग-नागिन एवं उसके चार बच्चे हैं, निवास करता है। एक दिन रानी नाग को देख कर डर जाती है और यह नाग राजकुमार को ना डस ले ऐसा सोचकर नाग को मरवा डालती है। नागिन रानी से बदला लेना चाहती है अत: वह न्याय हेतु राजा के पास जाकर कहती है, कि जैसे रानी ने मेरे पुत्रों को पिता-विहीन किया है ऐसे ही राजा

को डस कर मैं राजकुमार को पिता विहीन करूंगी. राजा निर्णय देता है कि तुम्हारे चार बच्चे पिता-विहीन हुए हैं। इसी तरह जब रानी के चार बच्चे हो जाएँ तब तुम मुझे डस लेना। तब तुमको न्याय प्राप्त हो जाएगा। नागिन खुश हो जाती है कि सही न्याय मिला और इन्तजार करती रहती है कि राजा के कब चार राजकुमार हों, जो कि कभी नहीं होते। कहानी बताती है कि बुद्धि-विवेक से बड़े-बड़े संकटों को टाला जा सकता है। ''बलराम का भाई गोपाल'' बच्चों को सिखाती है कि ईश्वर पर भरोसा करके भय को जीता जा सकता है।

''वनदेवी तपई'' उत्कल प्रदेश की लोककथा पर आधारित है जिसमे सात भाइयों की लाडली बहिन 'तपई' के भाई जब व्यापार करने विदेश जाते हैं तब उसकी भाभियाँ उससे दुर्व्यवहार करती हैं, जिससे वह घर छोडकर जंगल में रहने को मजबूर हो जाती है। वहाँ वह वनदेवी की रोज आराधना करती है। भाइयों के लौटने पर वह अचानक उनको मिल जाती है। भाई उसको छुपाकर अपनी पत्नियों से जब तपई के बारे में पूछते हैं तो वे उत्तर देती हैं, कि वह तो मर गई। तब भाई उसे 'वनदेवी' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। पत्नियाँ उसे पहचानकर शर्मिन्दा होकर जंगल चली जाती हैं। कहानी भाई-बहिन के प्रेम सन्देश के साथ ही शिक्षा देती है कि ईर्ष्यालु और दुष्ट प्रविति के लोगों को बाद में पछताना पड़ता है। कहानी ''ह्रदय परिवर्तन'' सम्राट अशोक की जीवन गाथा है जो सर्वविदित है। कहानी ''मौसी की खिचड़ी'' भी महत्वपूर्ण कहानी है जिसमे कोणार्क मंदिर बनाते समय नींव के पत्थर नदी के प्रवाह में बह जाते हैं तब गाँव कि बूढी पर अनुभवी मौसी 'खिचडी' के माध्यम से मंत्री को ज्ञान देती हैं कि पत्थरों को कैसे रोका जाए। उनके गुरु-ज्ञान से इतने बड़े मंदिर का निर्माण संभव हो पाता है। ''बाल शिल्पी धर्मपद'' कोणार्क मंदिर के प्रधान शिल्पी विशु महाराणा का बारह वर्षीय पुत्र है। जब सभी शिल्पी मंदिर के शिखर पर निर्धारित समय सीमा में 'आमलक' चढाने में असमर्थ हो जाते हैं तब वह बालक अचानक आकर शुद्ध गणितीय गणना करके यह दुष्कर कार्य करके दिखा देता है और पिता और अन्य शिल्पियों की प्रतिष्ठा धूमिल न हो इस हेतु चंद्रभागा नदी में कूद जाता है। कोणार्क मंदिर की पूर्णता में एक बच्चे के योगदान की अमर गाथा है यह कहानी, जो प्रेरणादायक है। ''नन्हा शहीद बाजी'' भी अंग्रेजों की गोली खाना पसंद करता है परन्तु वह अपनी नाव से दुश्मन अंग्रेजों को गाँव तक नहीं आने देता. ''अनु और अंशु की उज्जैन यात्रा'' एक यात्रा-वृतांत है जो उज्जैन के बारे में सम्पूर्ण जानकारी देता है। ''दीपावली का उपहार'' में डायरी लेखन शैली में दीपावली और उसके साथ जुड़े त्यौहारों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी है। कहानी ''मैं जंगल का राजा'' बाघ या शेर के बारे में रोचक तरीके से बच्चों के ज्ञानवर्द्धन में सहायक है। ''शक्तिमान बरगद'' जहां बरगद की शक्ति, लाभ और पूजनीयता को दर्शाती है वहीं वृक्षों को बोनसाई बना देने की प्रवृत्ति की आलोचना करती है।

कौवे और कोयल की कहानी में एक छोटा सा संख्यात्मक विरोधाभाष है वह यह कि पृष्ठ 19 पर उल्लेख है कि कौवे के चार अंडे थे, जबकि पृष्ठ 20 में कौवे के 3 अंडे थे जो कोयल का अंडा मिलाकर चार हो गए।

इन कहानियों में जहाँ बाल-सुलभ भाषा में इतिहास और जनश्रुति का मंगलगान ध्वनित होता है, वहीं दन्त-कथाओं का मनोरम सौष्ठव भी है। वैसे भी जन श्रुतियों की उम्र बड़ी लम्बी होती है फिर यदि इनका दस्तावेजीकरण हो जाए तो ये अमर हो जाती हैं। कहानियों में बच्चों को कई नये शब्दों का ज्ञान भी देने का प्रयास है। कुल मिलाकर पुस्तक बच्चों का ही नहीं, बड़ों का भी ज्ञानवर्द्धन करती है। कुछ कहानियां तो ऐसी हैं, जिनको बच्चों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है। भाषा सहज, सरल और बोधगम्य है। रोचकता और जिज्ञासा से परिपूर्ण यह कहानी संग्रह बच्चों को खूब पसंद आयेगा ऐसी आशा है। आवरण पृष्ठ सुंदर है परन्तु कीमत यदि थोड़ी कम की जा सके तो यह अधिक पाठकों तक पहुँच सकेगी। डॉ बिनय षडंगी राजाराम को इतने अच्छे कहानी संग्रह हेतु बधाई एवं सफल और उन्नत लेखकीय भविष्य हेतु हार्दिक मंगलकामनाएं।

82/1, सी-सेक्टर, साईनाथ नगर. कोलार रोड- भोपाल.
मोबाईल- 7000855409

हर व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि आत्मा एक राजा के समान है जो शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि से बिल्कुल अलग है। आत्मा इन सबका साक्षी स्वरुप है।

आदि गुरु शंकराचार्य

पुस्तक समीक्षा

ब्रह्मवादिनी काव्यसंग्रह

– राजेश्वर वशिष्ठ

पुस्तक विवरण–

पुस्तक	:	ब्रह्मवादिनी
लेखिका	:	डॉ. सरोज गुप्ता
संस्करण	:	–
मूल्य	:	₹595/–
प्रकाशक	:	जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स, दिल्ली

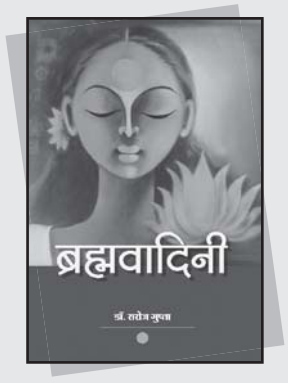

वेद हमारे प्राचीनतम ज्ञान और चिंतन का संग्रह हैं। ब्रह्मवादिनी ग्रंथ और उसके मातृ–ग्रंथ – 'ब्रह्मवादिनी दृष्टमंत्रभाष्य' के लेखक आचार्य पंडित दुर्गाचरण शुक्ल के ग्रंथ का आधार ऋग्वेद है। ऋक अर्थात् स्थिति और ज्ञान। ऋग्वेद सबसे पहला वेद है जो पद्यात्मक है। इसके 10 मंडलों (अध्यायों) में 1028 सूक्त है जिसमें 11 हजार मंत्र हैं। ऋग्वेद की 5 शाखाएँ हैं – शाकल्प, वास्कल, अश्वलायन, शांखायन तथा मंडूकायन। इस वेद में भौगोलिक स्थिति और देवताओं के आह्वान के मंत्रों के साथ–साथ अन्य बहुत कुछ भी वर्णित है। ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं से संबंधित प्रार्थनाएँ, स्तुतियाँ और देवलोक में उनकी स्थिति का विस्तृत वर्णन है।

वेद अपौरुषेय हैं अर्थात इन्हें किसी मनुष्य ने नहीं कहा है। स्वयं ईश्वर (ब्रह्मा) ने कहा है और उस ज्ञान को – 'ऋषयो: मंत्र द्रष्टार:' – हमारे ऋषियों ने अपनी अंतर्दृष्टि द्वारा साक्षात रूप में अनुभव कर वाचिक परम्परा के माध्यम से अपने शिष्यों को दिया और यह क्रम उस समय तक चलता रहा जब तक कि इन्हें लिपिबद्ध नहीं कर लिया गया। इन ऋषियों में पुरुष भी थे और स्त्रियाँ भी।

इस पुस्तक की भूमिका में डॉ. श्यामसुंदर दुबे लिखते हैं– 'भारतीय आर्ष परम्परा में ऋषिकाओं की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्त्री, पुरुष की परिपूरक तो है किंतु यह भाव स्त्री की स्वतंत्र पहचान में बाधक है। स्त्री अपने चिंतन, व्यक्तित्व विकास एवं अपनी भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा में सर्वतोभावेन अपनी स्वतंत्र सत्ता निर्मित करती रही है। वैदिक साहित्य में वह मंत्रदृष्टा ऋषियों के समान ही अपनी शब्द साधना को व्यक्त करती है।' डॉ. सरोज गुप्ता ने इस ग्रंथ – ब्रह्मवादिनी – में मंत्रदृष्टा ऋषिकाओं से संबंधित सुरुचिपूर्ण पद्य व्याख्याएँ प्रस्तुत की है।

इस पुस्तक ने मुझे बाध्य किया कि मैं मूल ऋग्वेद में जाकर उन सूक्तों को खोजूँ जिनको आधार बना कर इन ऋषिकाओं के विषय में कविताओं की रचना की गई है। इन सूक्तों के सुलभ संदर्भ, लेखिका ने परिचय के बाद कविता से पूर्व प्रकट किए हैं। मेरी जिज्ञासा उन वर्णनों को खोजने में भी थी जो किसी प्रस्तुत सूक्त के बाद आए हैं। वेद में, मैं उन्हें नहीं खोज पाया। इस अन्वेषण प्रक्रिया में मुझे इंटरनेट पर हार्वर्ड लाइब्रेरी का एक शोध–पत्र Female Rishis and Philosopher in the Vedas : By Michael Witzel* मिला जिसे पढ़ना उपयोगी लगा क्योंकि इसके माध्यम से मैं जान पाया कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा भारतीय मनीषा को सदा आधा–अधूरा ही स्वीकार किया है। वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि हज़ारों वर्ष पूर्व जब योरुप में लोग कच्चा मांस खा रहे थे भारत में स्त्रियाँ इतनी शिक्षित थीं कि वे ऋषि का स्थान पा सकती थीं। यह शोध पत्र आरम्भ ही इस मूढ़ घोषणा के साथ होता है – 'यह अवधारण सही नहीं है कि पारम्परिक रूप से ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं का सृजन ऋषिकाओं द्वारा किया गया है, हालाँकि उनका योगदान अनुपलब्ध नहीं है फिर भी इस संदर्भ में 'शिक्षित स्त्रियों की भूमिका' का पुनर्मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित है। इन स्त्रियों की संख्या बीस के आस–पास हो सकती है जिसका आधार कात्यायन द्वारा तैयार की

गई सर्वानुक्रमणिका में है। इस आलेख में उन ऋषिकाओं के नामों का ही उल्लेख है जिनकी चर्चा 'ब्रह्मवादिनी' में है। इस दृष्टि से भारतीय विद्वानों द्वारा वेदों पर शोधपरक लेखन का महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि पश्चिमी विद्वान भारतीय मनीषा को स्थाई कृपण दृष्टि से देखते पाए गए हैं। नए शोधकर्ताओं के पास भारतीय दृष्टि से लिखे गए ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। मुझे लगा कि संदर्भ के लिए आचार्य पंडित दुर्गाचरण शुक्ल का मूल ग्रंथ भी वेब पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

ब्रह्मवादिनी ग्रंथ में मंत्रदृष्टा ऋषिकाओं को उनके नाम के अनुसार विभिन्न अध्यायों में रख कर उनके विषय में जानकारी प्रस्तुत की गई है। सबसे पहले कल्पना पर आधारित एक साधारण-सा रेखा-चित्र है। इसके बाद कुछ पंक्तियों में उस ऋषिका का परिचय है। जिसमें उसके पिता, पति और स्थान आदि का वर्णन है। फिर ऋग्वेद का संदर्भ दिया गया है यथा - ऋषिका लोपामुद्रा (ऋ 1/179/1,2)। देवता रतिः, छंदः 1 त्रिष्टुप् 2 निचृत् त्रिष्टुप्। आगे उस श्लोक को भी उद्धृत किया गया है। कविता के बाद अंत में सार रूप किसी सूक्त की तरह दिया गया है। इस पुस्तक में सभी ऋषिकाओं के चरित्रों को कविता का रूप देने का सुंदर प्रयास किया गया है। इनमें उन स्त्रियों के जीवन से लेकर परवेश और सामाजिक दर्शन तक का सुंदर चित्रण है। अधिकांश पद्य रचनाएँ संस्कृत श्लोकों की तरह सृजित की गई हैं जिनमें भावनाओं और भाषा के एकीकरण का जीवंत प्रयास है, किसी प्रकार की तुकबंदी नहीं है। आधुनिक बोध की कविता का आनंददायी रूप 'नद्यः ऋषिका' में उभर कर सामने आता है जो इस संग्रह की श्रेष्ठतम काव्य प्रस्तुति है। अन्य सृजन बहुत कुछ इतिवृत्तात्मक शैली में हैं जो कभी-कभी कविता का आभास देते हैं। काव्यभाषा तत्सम रूप में और ग्रंथ की प्रकृति के अनुकूल है।

कोरोना काल का इससे सुंदर और सार्थक उपयोग क्या हो सकता था कि डॉ. सरोज गुप्ता ने अपने गुरुदेव के महान ग्रंथ का पारायण कर उसका काव्यमय रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। डॉ. सरोज गुप्ता अपने इस प्रयास में सफल रही हैं। इस रूप में यह ज्ञान अब अधिक से अधिक लोगों तक पहुँच सकता है। इन ऋषिकाओं को बुंदेलखंड से जोड़ने का प्रयास भी किया गया है; इस तथ्य का थोड़ा बहुत स्थानीय महत्व हो सकता है। वैदिक समय का यह रचना क्षेत्र आज किसी भी क्षेत्र में आता हो यह एक संयोग मात्र है।

पुस्तक का प्रकाशन सुरुचिपूर्ण तरीके से हुआ है। आवरण सुंदर है। अशुद्धियाँ खटकती हैं- खास कर 'व' और 'ब' के बीच भेद न कर पाना। संभव है इसके लिए बुंदेली बोली का प्रभाव जिम्मेवार हो। इतनी महत्वपूर्ण पुस्तकों के लिए और अधिक श्रम और शोध अपेक्षित था। आशा है अगले संस्करणों में इस ओर ध्यान दिया जाएगा।

वेदों के अध्ययन को आधार बना कर भारतीय विद्वानों ने बहुत कम लिखा है। यह पुस्तक इस कमी को पूरा करती है। मैं भारतीय मनीषा में रुचि रखने वाले पाठकों से अपेक्षा करूँगा कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

1101, टावर 4 , सुशांत एस्टेट, सेक्टर 52,
गुरुग्राम हरियाणा-122003

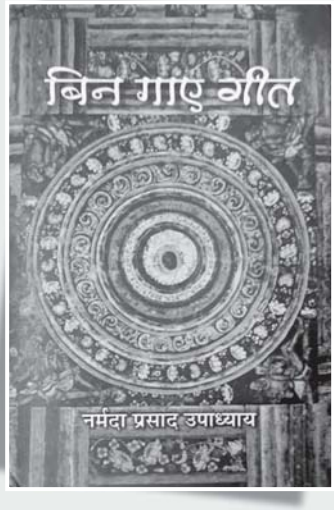

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का
नया गद्य संग्रह

इस कथेतर गद्य संग्रह में ललित निबंध, संस्मरण और यात्रा वृत्तांत है।

प्रभात प्रकाशन
नई दिल्ली

पुस्तक समीक्षा

सार्थक कथाएं

– अंतरा करवड़े

पुस्तक विवरण–

पुस्तक	:	'पेड़ तथा अन्य कहानियाँ'
लेखिका	:	अश्विनीकुमार दुबे
संस्करण	:	2022
मूल्य	:	₹400/–
प्रकाशक	:	सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

'पेड़' जो कि शीर्षक कथा है, राजे महाराजाओं के समय से चलते हुए वर्तमान विकसित अवस्था में बदलती सोच का प्रतीक है। 'मृत्युबोध' कहानी, आज कितने ही ऐसे घरों की मूक व्यथा है जहां कोई बड़े पद से सेवानिवृत्त कोई बुजुर्ग बैठा है और अपनी अकड़, अफसरी, व्यस्तता और मान सम्मान के सुनहरे दिनों और सेवानिवृत्ति के बाद की वास्तविकता और प्राथमिकताओं से आंख मूंद लेना चाहता है।

यदि 'स्मृतियां' शीर्षक की कथा को देखें, तो अपने जीवन को चलचित्र कि भांति एक असफल निर्देशक के नज़रिए से देखने वाला सामान्य व्यक्ति दिखाई देता है। प्रत्येक परिवार में इस प्रकार के व्यक्ति का कुछ न कुछ प्रतिशत किसी न किसी पात्र में दिखाई दे ही जाता है। ये दोनों ही कहानियां, समय के साथ मन का विस्तार न कर पाने वाले, एक ही सांचे में रहने वाले और एक ही दृष्टि से संसार को देखने वाले ऐसे बुजुर्गों की व्यथा है, जो सब कुछ समझकर भी, अपनी ही आदतों से स्वयं परेशान हैं।

'दहशत' कथा हम सभी की कथा है। लॉकडाउन के दौरान की बदली हुई स्थितियां जिन्होंने केवल मानवता को ही नही बदला है, हम सभी के आपसी संबंधों पर प्रभाव डाला है और अंतरात्मा के रुप में भी हमें जो लगता था कि हम स्वयं ऐसे है, वैसा सब कुछ कहीं भी नही था।

'आतंकवादी' कहानी एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसे अपने बेटे की स्थिति को लेकर सामाजिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। समाज का चेहरा ऐसी कहानियों में सशक्त रुप से सामने आता है जब व्यक्ति को अपने न किए हुए अपराध के लिए असहाय स्थिति में, निरंतर अपमानित होते रहना होता है।

'सुआपंखी साड़ी', एक बदलाव के रंग की कथा है। यहां पर सशक्त रुप से भावना को रेखांकित कैसे करना है, यह बताने में लेखक सफल है। स्त्रियों को लेकर जो निरर्थक उथली सोच प्रचारित की जाती है, उससे परे उनके भावनात्मक पक्ष को उभारती हुई यह कथा इस संग्रह को अलग ऊंचाई देती है।

'कर्तव्य' जैसी कहानियों की इस दौर में भी हमें जरुरत पड़ती है, यह एक समाज के रुप में हमें जीवन की परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर देता है। बेटे की चाह में बेटियों का परिवार में आना और वास्तविक रुप से उस भाग्यवान पुत्र के जीवन का उत्तरार्ध में शून्यवत रह जाना, हमारे सामने अनेक प्रश्न रखता है।

'संदेह' और 'मुलाकात' जैसी हल्की फुल्की कथाएं एक प्रवाह के रुप में इस संग्रह को आगे बढ़ाती हैं।

'असफल होती प्रेमकथा' एक ऐसी कथा है जो एक अफसर की दृष्टि से वर्तमान समय की पीढ़ी और उसकी विस्तारित सोच का परिचय करवाती है। यदि विवाह करना है, तो केवल पत्नी की नौकरी होना भी क्यों काफी नही है? इस सोच के साथ नवीन पीढ़ी काफी सहज है, नवीन सोच है और इसका स्वागत करना हर किसी के लिए सरल नही है।

'महानता' यह कथा सरकारी व्यवस्था के अनुसार अपने ध्येय को समानांतर चलाते हुए एक ऐसे व्यक्ति की कथा है, जिसका प्रमुख पात्र हमें अपने आस पास आसानी से दिखाई दे जाता हैं।

'लॉकडाउन' एक लंबी कहानी है जो महामारी के समय की विभीषिका, मानसिक और सामाजिक बदलावों के उतार चढ़ाव और

जीवन में अपने ही व्यक्तित्व से पहली बार होते साक्षात्कार जैसा बहुत कुछ हमारे सामने रखती है।

'लल्लन' बाबू जैसी कथा या फिर कहें व्यथा हमें सिद्धांतों के पक्के परिवारों के कितने ही पात्रों की कहानी दिखाती है। अति सिद्धांतवादी पूर्व पीढ़ी और बगावत पर उतर आने वाली नवीन पीढ़ी के बीच न तो संतुलन बचता है न समझदारी।

'बंटवार' और 'चेक बुक' जैसी कथाएं लेखक की व्यापक दृष्टि और स्त्रियों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं। अपने अधिकारों के प्रति सजग स्त्रियां, विवाह के बाद अपने माता पिता के प्रति कर्तव्य पथ पर पीछे रह जाती हैं, स्वेच्छा से।

इसके अलावा अनेक कथाएं ध्यान खींचती हैं जैसे 'डैडी, चाचा कब आएंगे', 'बदचलन' आदि।

देखा जाए, तो यह संग्रह लेखक के विस्तारित दृष्टिकोण, समाज की वर्तमान स्थिति और भविष्य की चुनौतियों के बीच एक संतुलन का शाब्दिक प्रयास बनकर हमारे सामने आता है। अधिकांश कथाएं हैं जिनमें एक स्पष्ट समापन का अभाव थोड़ा खटकता है। लेकिन इसे शायद लेखक द्वारा पाठक पर किया हुआ विश्वास या उन्हें अपने मन के विस्तार के लिए दिया गया अवसर भी कहा जा सकता है। भाषा सरल है, शैली में लेखक का कार्यक्षेत्र और भौगोलिक पृष्ठभूमि स्पष्ट रुप से सामने आती है।

इन रचनाओं में यदि कुछ मानवीय संवेदनाओं के बारीक चित्रण को भी स्थान दिया जाए, प्राकृतिक चित्रण, सौन्दर्य और कल्पनाशीलता के कुछ शब्द मिलकर इन कथाओं को और अधिक रंजक, प्रस्तुति के लिए परिपूर्ण बना सकते हैं। कुल मिलाकर यह संग्रह और इसकी कहानियां लंबे समय तक आपके साथ बने रहते हैं। इसके केवल पात्र या घटनाएं नही, समग्रता आपकी साथी होती है।

117, श्री नगर एक्स्टेन्शन, इन्दौर,
मो- 9752540202

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं .... कला समय पत्रिका का .... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये .... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम : ....

पता : ....

....

पिन : .... मो.: ....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशिः

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016

फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com

वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

पुस्तक समीक्षा

भावनाओं की मनोहर इंद्रधनुषी अभिव्यक्ति है : सुबोधनी काव्य-संग्रह

– राज किशोर बाजपेयी

पुस्तक विवरण-

पुस्तक	:	सुबोधिनी
लेखिका	:	सुबोध चतुर्वेदी
संस्करण	:	2021
मूल्य	:	₹200 /-
प्रकाशक	:	पराग बुक्स, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.)

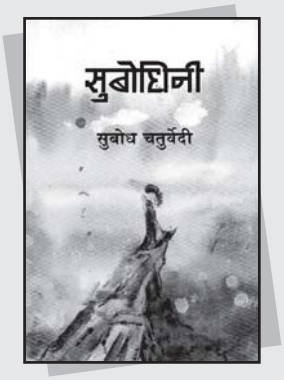

सरल, सौम्य, शालीन व्यक्तित्व की धनी श्रीमती सुबोध चतुर्वेदी, ग्वालियर की समर्थ साहित्यिक विभूति है।

सामाजिक परिवेश के जीवंत कथानक और उसके बिम्बों को अपनी रचनाओं से संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत करना उनका वैशिष्ट्य है। फिर चाहे उनकी रचनायें गद्य में हो या पद्य में पाठक पढ़ते हुये न केवल उनके रचना संसार में डूब जाता है बल्कि उनके कथा या काव्य-लोक में स्वयं भी विचरण करने लगता है। ऋषि गालव की नगरी ग्वालियर की साहित्यकार श्रीमती सुबोध चतुर्वेदी की नौवीं कृति **सुबोधिनी** यूं तो काव्य-संग्रह के रूप में तीसरी है क्योंकि उन्होंने इससे पहले उनके **एक और बसंत, अपना आकाश** जैसे काव्य- संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त भी उनके चार कथा- संग्रह **जाहि विधि राखे राम, नियति-चक्र, धूप छाँह, मृगतृष्णा व एक लघु उपन्यास लतिका** एवं **यात्रा- संस्मरण** के रूप में **सुधियों के दीप** भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि उनकी सृजनशीलता जो बीसवीं सदी से प्रारम्भ हुई, वह इक्कीसवीं सदी में 2005 से कृतियों के रुप में सुगंध बिखरने लगी है। उनकी इसी साहित्य साधना का प्रमाण उनकी प्रकाशित नौ कृतियाँ है, जो पद्य, गद्य, उपन्यास और यात्रा-संस्मरण के कलेवर से आलोकित है।

सुबोधिनी काव्य-कृति के रूप में इसलिए विशिष्ट है इसमें काव्य की मनोगत प्रवृत्तियां परिवेश के साथ काव्य के रूप में रूपायित हुई हैं, जिसमें जीवन की अपेक्षाएं, आकांक्षाएं और विद्रूपताऐं अमूर्त रुप से काव्य रूप में जीवंत होती हैं। उनकी रचनाएं भले ही काव्य समीक्षकों की दृष्टि में छंद की कसौटी पर उतनी संतुष्टि का अनुभव भले ही न कराती हो किन्तु काव्य का मूलभूत गुण भाव। संप्रेषण और लयात्मकता उनकी हर रचना में सरस रूप से उपस्थित है, जो कथानक के साथ जोड़कर पाठकों को अपने साथ-साथ चलने को बाध्य कर देती है, और यही सामर्थ्य उनके सृजन की सफलता भी है।

लेखक के परिवेश में हुआ लेखन जब पाठकों को अपने साथ ले चलने में समर्थ हो जाता है तो पाठक अपने भाव लोक को छोड़ लेखक की रचनाओं के भाव लोक में जा पहुँचता है और यही लेखन की सृजन के स्वरूप की सामर्थ दिखाती है। श्रीमती सुबोध जी की रचनाएं जीवन के विभिन्न पक्षों पर इस तरह से लिखी गई है पाठक पढ़ते.पढ़ते खुद डूब कर रसग्रहण करने लगता है। उनके काव्य लेखन में जो प्रतीक हैं वह हर पाठक को अपने जीवन के प्रतीक भी प्रतीत होते हैं फिर चाहे जीवन में घट रही घटनाएं हो या समाज में घटित ऐसे दृश्य जो कहीं मन को कचोटते है। फिर चाहे मानवीय संवेदनाओं के क्षरण के दृश्य हो, सामाजिक संबंधों के सूखते स्रोतों की बानगी हो, आधुनिक जीवन शैली का अंतर्द्वन्द हो, या समाज में घट रही बलात्कार जैसी जघन्य स्थितियां, सभी पर इस काव्य संकलन की चौरासी रचनाओं के माध्यम से जो इंद्रधनुष रचा गया है वह मनोहारी है। पराग प्रकाशन बुक्स गाजियाबाद से प्रकाशित 136 पृष्ठ की इसका कृति का आवरण-पृष्ठ सुंदर है । 200 रुपए मूल्य की यह पुस्तक अपने सुंदर मुद्रण, कविताओं के ध्यान खींचते शीर्षको

मुख्य शिल्प और प्रखर कथ्य से कविता को पढ़ने के लिए पाठकों को बाध्य करती हुई पठनीय मनोहारी पुस्तक है।

पुस्तक की मां वीणा–पाणी को समर्पित पहली **काव्य–रचना**

मां वीणा–पाणी, हमको वर दो,
स्वच्छ भाव हो,
मन हो निर्मल,
प्रलोभन से हम, सदा रहें दूर
राग द्वेष कभी न मन में आये,
कलुष मन का हर दो।...
पग पग पर हो साथ तुम्हारा,
कलम बने हथियार हमारा,
सत्य की राह दिखे हमको,
लालच से न मन डिगे हमारा,

आईना, कुछ जोड़े, बेटा, अपहरण, अर्धांग, अस्तांचल सूरज, जैसी रचनाएं हमें संग्रह को पूरा पढ़ने के लिए ललचाती हैं।

आशी के पास कविता बाल मनो–भावनाओं की दुनिया से दादी को नई दुनिया दिखाती है। वही उस घर में शीर्षक रचना मायके की अगली पीढ़ी के दरकते रिश्ते का दर्द बिखेर–बिखेर देती है। **कलंक, चैन की नींद** जैसी रचना बलात्कार जैसे कृत्य की विसंगतियों को सामाजिक संदर्भों के साथ उधेड़ कर रख देती है। **साँवली लड़की, बंद दरवाजे पड़ोस की खिड़की** ऐसी रचनाएं ना केवल सामाजिक लोक जीवन की अभिव्यक्ति है बल्कि मनुष्य की कोमलतम अभिव्यक्ति का सशक्त स्वर भी है।

कवयित्री सुबोध जी इस दृष्टि से इस काव्य संकलन में अपनी लेखनी की बुलंद आवाज को बहुत सफलता के साथ घोष में बदल देती हैं जब वे स्त्री को मां के रूप में प्रेमिका के रूप में पत्नी के रूप में और दादी नानी के रूप में प्रस्तुत करने के साथ–साथ बस देह हूँ कविता के माध्यम से नारी अस्मिता पर आए संकट को भी व्यक्त कर रही होती हैं। **मन्नू** कविता मंदबुद्धि बालक की मां की चिंता को व्यक्त करती है। **मां सो जाओ, वह केवल नारी है वह लड़की, संवेदनहीनता** जैसी कविताएं नारी के दर्द– लोक की अनुभव–सिद्ध झांकी ही है। उनकी कविताओं में ना केवल संबंधों की आत्मीयता है, उष्णता है, बल्कि सामाजिक स्थितियों का सटीक चित्रण भी है। वे मां की मृत्यु पर सहेली के विछोह पर जब द्रवित होती हैं,

उनकी लेखनी चल पड़ती है। उत्तराखंड की विभीषिका पर **तांडव** शीर्षक कविता जन्म लेती है **जीवन की सांझ** सिमटते जीवन–बोध पर सुंदर रचना है। **तुम्हारे प्रेम में** शीर्षक रचना प्रेम अभिव्यक्ति की रचना है **और बंद दरवाजे** रचना जीवन की अपेक्षाए आकांक्षाओं की रचना।

इन सब रचनाओं को पढ़ने के लिए इस काव्य संग्रह को पढ़ना होगा, जिसमें भावनाओं की प्रभावी प्रस्तुति है जो हमें भाव लोक की सैर कराती है।

कुछ रचनाओं की बानगी देखें।

उस घर से

उस घर में जाने की इच्छा, जब तब अदम्य हो उठती है,
जहां मैंने लाँघी थी, बचपन की सीढ़ियां,
छत पर लेट कर देखे थे, किशोरावस्था में मधुर सपने, उन सपनों को साथ लिए, मन में एक आस लिए,
एक दिन उसी घर से विदा होकर,
सदा के लिए हो गई पराई,
नया घर था, नया
परिवेश
उन सब में उलझ कर रह गई,
अब मेरे उस घर में रहते हैं,
कुछ अजनबी से चेहरे,
जिनमें चाह कर भी आत्मीयता का
नाता नहीं ढूंढ पाती, जब भी वहां से गुजरती हूँ,
गुजरते हुये उस शहर से भी,
उस घर से नहीं गुजर पाती मैं।

मायके की बदलती पीढ़ी के संबंधों में घटती आत्मीयता का सटीक चित्रण है इस रचना में। वहीं दूसरी ओर **सांवली लड़की** शीर्षक से सांवली लड़की की शादी की समस्या का बहुत प्रभावी मनोवैज्ञानिक वर्णन हुआ है। रचना देखें :

सांवली लड़की

सुबह से ही घर में मची है गहमागहमी, शाम को फिर कुछ मेहमान आएंगे, जाँचेंगे–परखेंगे,
हमेशा की तरह कहेंगे,
घर जाकर फोन से देंगे जवाब,
आज वह पहली बार नहीं, अब तक वह ना जाने कितनी बार सूली पर चढ़ी है,
साड़ियों का ढेर सामने है,
वह बुत बनी बैठी है,
संवाद हवा में तैर रहे हैं,
अब वह हौसला ही नहीं रहा, पहली बार जब वह किसी के लिए,

इस तरह से सजी सँवरी थी,
पूरी रात सपने में दिखता रहा था, सफेद घोड़े पर सँजीला राजकुमार,
मन में कितनी उमंग थी,
उसके बाद ना जाने कितने राजकुमार आए,
लोगों ने मन मुताबिक कटपुतली की तरह खूब नचाया,
वह भी नाचती गई, नाचती गई,
आखिर यह सिलसिला कहीं तो रुके,
अब और नहीं सहा जाता,
करना चाहती है विद्रोह,
पिता के झुके कंधे मां की आँखों के आँसू
जवान होती दो छोटी बहनें,
दिखाई देने लगती हैं,
जानती है इस बार भी जबरन मुस्कराना होगा,
अनचाहे प्रश्नों के देने होंगे जवाब, उसकी समस्त खूबियों पर,
साँवला रंग भारी पड़ जाएगा।

बंद दरवाजे कविता नारी की अपेक्षाओं को मन की आकांक्षाओं को स्पष्ट करती है। देखें:

वेशक बंद कर लो सभी दरवाजे,
बस एक खिड़की खुली छोड़ देना, जिसे मैं निहार सकूँ, आसमान में उड़ती हुई चिड़िया,
मेरे शिथिल हो चुके पैरों में, कुछ तो हरकत होगी,
वेशक बंद कर लो सभी दरवाजे,
एक खिड़की खुली छोड़ देना, जिसमें से झाँक कर मैं देख सकूँ,
आसमान में उग आये चाँद-सितारे,
कम से कम मेरे अंधेरे जीवन में कुछ तो हो जाएगा उजियारा,
बेशक बंद कर लो सभी दरवाजे,
बस एक खिड़की खुली छोड़ देना, जिससे मैं देख सकूं किसी खंभे में फंसी पतंग, उसका फड़फड़ा कर छूटने का प्रयास ही काफी है, मुझ में सोया हुआ आत्मविश्वास जगाने के लिए।

इसी संग्रह मैं एक और रचना **पड़ोस की खिड़की** शीर्षक से है उसमें सामाजिक संबंधों की स्थितियां को शब्दों के माध्यम से बखूबी टाँक दिया गया है। देखें:

पड़ोस की खिड़की

कभी पड़ोस की रसोई की खिड़की अपने सामने ही खुला करती थी,
काम करते हुए चलते फिरते हुए पूछ लिया करते थे, एक दूसरे के हाल, जब कटोरिया का चलन इधर से उधर होता, अगले दिन उनके स्वाद, विधियों की चर्चा, मोहल्ले की नई चटपटी खबरें, छौंक के साथ दाल में बघारी जाती, अब बंद हो गई है एक रसोई की खिड़की,
दोनों घरों के बीच खड़ी हो गई है ऊंची दीवार,
रसोई की खुशबू सिमट गई है अपने में, अब कटोरियों नैं चलना फिरना कर दिया है बंद, उस घर में चलते फिरते कोई परछाई नहीं दिखती, कोई हंसी नहीं गूँजती, सभी जैसे नजर बंद सजायाफ्ता कैदी हों,
अपने-अपने दायरे में कैद,
अजनबी हो आपस में जैसे,
अब कोई खिड़की खुली नजर नहीं आती।

संवेदनाओं का जो प्रवाह रचनाओं में देखने को मिलता है सुबोध जी की तरल भावमयी भाषा से वह और सुगंधित हो उठता है। भाषा की सरलता सहजता और भावनाओं का संप्रेषण उनके काव्य के योजक तंतु के रूप में पाठकों को जोड़े रखता है। टंकण में रति, अर्ध-विराम, विराम की आवश्यकता जरूर ध्यान खींचती है।

काव्य-संग्रह निश्चित रूप से पाठकों के लिए उनकी संवेदना की बर्फ को ना केवल पिघलाने में समर्थ होगा बल्कि चेतना को और समृद्ध करने में भी समर्थ होगा यह कामना सहज ही की जा सकती है।

समीक्षक : संयुक्त आयुक्त सहकारिता विभाग (से.नि.) मध्यप्रदेश
पूर्व अध्यक्ष मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सभा, ग्वालियर
मोबाइल- 9425003616

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

- संपादक

आलेख

लोकविज्ञानः folkloristics

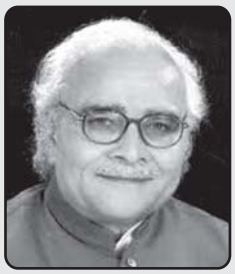

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

मनुष्य का अध्ययन करने वाले अनुशासनों में लोकविज्ञान अधुनातन और विकासशील अनुशासन है। यह ठीक है कि किसी जमाने में यह मानवशास्त्र का अंग था। लगभग डेढ़सौ बरस पहले उपनिवेशों के जमाने में लोकवार्ता-शास्त्री आदिम-मानस को लोकवार्ता का केन्द्रीय-तत्व मानते थे। वे मानते थे कि जंगली, आदिवासी, अर्धसभ्य, असभ्य, गंवार, अशिक्षित ही फोक हैं। इस धारणा के साथ ही वे अपने उपनिवेशों की प्रजा के जीवन का अध्ययन करते थे। बाद के मानवशास्त्रियों ने आदिवासी-क्षेत्रों के अध्ययन के निष्कर्षों के प्रकाश में जब अपने नागरिकों के जीवन का अध्ययन किया, तब आश्चर्य से पाया कि आदिम-मानस तो आधुनिक-तम मानस में भी अंधेरे में बैठा हुआ है। भारत में भी पहले ग्रामसाहित्य या आदिवासी-साहित्य को ही लोकसाहित्य समझा जाता था। इसमें भला क्या संदेह है कि ग्रामसाहित्य या आदिवासी-साहित्य लोकसाहित्य हैं, क्योंकि उनमें लोक की बड़ी सहज अभिव्यक्ति होती है! किन्तु ग्रामजन या आदिवासी ही लोक हो, ऐसी बात नहीं है। आज हम लोक के अन्तर्गत सर्वजन, समष्टिजन, सामान्यजन और जीवन की अविच्छिन्नता और निरन्तरता का अध्ययन करते हैं। सामूहिक मानस, समष्टि मानस, सामूहिक स्मृति, समष्टिचेतना, समष्टिहित। वाचिक परम्परा।लोकजीवन समष्टिजीवन है और लोक का अनुभव समष्टिजीवन का अनुभव है! यों तो व्यक्ति का अनुभव भी अनुभव ही है किन्तु जब व्यक्ति का अहंकार पिघल जाता है, जब व्यक्ति सर्वचेतना से अभिभूत हो जाता है! अथवा यों कहें कि व्यक्ति का 'मैं' पानी में नमक की तरह घुल जाता है और हम में समा जाता है, कर्तृत्वचेतना का लोप हो जाता है, तब जब वह अनुभव तेरा-मेरा, इसका-उसका सब का अनुभव बन जाता है, तब उसे समष्टि-अनुभव कहते हैं!! व्यक्ति समष्टि में ही तो समाया हुआ है, समष्टि से ओतप्रोत है, इसलिए यह समष्टि-प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है , लोकवार्ता शास्त्री इसे फ़ोकलोरिक-प्रोसिस कहते हैं! समष्टि-प्रक्रिया! जितना विस्तार मनुष्य के मन और मनुष्य के जीवन का है, लोक के अनुभव का विस्तार भी उतना ही व्यापक और विस्तृत है! इस अनुभव और अभिव्यक्ति के समस्त-विस्तार को लोकजीवन के अध्येता लोकवार्ता कहते हैं !

विश्वविद्यालयों में, विशेषकर उत्तरभारत के विश्वविद्यालयों की पीठों पर विराजमान महन्तों के मन में नये अनुशासनों के प्रति अनासक्ति का भाव है ।

इसका कारण है कि वे मानते हैं कि ''वे स्वयं ही ज्ञान-विज्ञान की परमावधि हैं!'' एक जमाना था, जब हमारे विश्वविद्यालयों के आचार्य भाषाविज्ञान को स्वतन्त्र अनुशासन मानने को तैयार ही नहीं होते थे। वे उसे हठ-पूर्वक साहित्य के एक अंग के रूप में ही मानते थे! प्रो. हरदेव बाहरी ने एक दिन मुझे वह सारी कहानी सुनायी थी कि किस प्रकार से बहुत संघर्ष करने के बाद भाषाविज्ञान को स्वतन्त्र अनुशासन का दर्जा मिल सका था! वही बात अब लोकविज्ञान को लेकर है !

folklore [लोकवार्ता] के आधुनिक-अध्ययन का सूत्रपात तो अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम में ही हुआ था और उसके प्रयोजन भी औपनिवेशिक ही थे, वे अपनी शासन-सुविधा के लिए उपनिवेशों में रहने-

वाली मानव-जातियों की मानसिकता को समझना चाहते थे। वे उनके रीतिरिवाज, परंपरा को जानना चाहते थे। परन्तु अब लोकवार्ता की अवधारणा बदल गयी है। लोकसंस्कृति असभ्य और अर्द्ध-सभ्य, आदिवासी, ग्रामीण या निरक्षर लोगों की ही संस्कृति है या उन लोगों का ज्ञान-विज्ञान ही लोकवार्ता है, यह दकियानूसी बात अब पुरानी पड़ गयी है! आदिममानस की बात अब बीते युगों के एपीटोम तक जा पँहुची है , मनोवैज्ञानिकों और मानवशास्त्रियों का निष्कर्ष है कि मनुष्य के अवचेतन-मन में बीते युगों के युगयुगान्तर स्मृति की धुँधली रेखाओं के रूप में मौजूद रहते है, इसलिए आधुनिक से आधुनिक कहे जाने वाले मानव के मन की किसी गुहा में युगयुगान्तर स्मृति के रूप में विद्यमान है! परिवेश बदलता है, आगे भी बदलेगा किन्तु बुनियादी-प्रवृत्तियाँ सब कुछ बदल कर भी खुद नहीं बदलती! मनुष्य की क्षमता असीम है, इस अर्थ में कि हम अपने देशकाल में उसका आकलन नहीं कर सकते, लेकिन उसकी सीमा है कि वह ऐनीमल है, जीव है! वैज्ञानिक-मानस विच्छिन्न नहीं हो सकता! अन्तत: मनुष्य बुनियादी-प्रवृत्तियों से ही संचालित होता है! यदि ऐसा न होता, तो संसार में युद्ध क्यों हो रहे होते? परमाणु बम क्यों बनाये जाते और निरीह जनता पर बम-वर्षा क्यों हो रही होती? रूस और यूक्रेन में युद्ध हो रहा है और हम देख रहे हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ देख रहा है, मानवता देख रही है! अस्तु, यह प्रश्न यहाँ विचारणीय नहीं है, विचारणीय प्रश्न यहाँ मनुष्य को समझने का है, जीवन को समझने का है, जीवन की प्रक्रियाओं को समझने का है, समष्टि की प्रक्रिया को समझने का है, आदिम मानस को समझने का है, जातीय-स्मृति की भूमिका को समझने का है, उस ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उतरने का है, जो लिखित अक्षर की परिधि से आज भी बाहर है, जो निरन्तर है। प्रश्न अभिजात और सामान्य के संबंध को जानने का है, प्रश्न व्यष्टि और समष्टि की प्रक्रिया को समझने का है! प्रश्न यह है कि क्या आधुनिक-मानस कोई साँचा-ढाँचा है या कि प्रवाह है? जीवन की निरन्तरता और अविच्छिन्नता! जीवन और परिवेश की समग्रता को समझने के लिए लोकविज्ञान आज अनिवार्य अनुशासन बन चुका है! डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा के शब्दों में कहें तो आज लोकविज्ञान ने लोकवार्ता folklore का नाम -रूप ही नहीं, अपितु उसका वैज्ञानिक आयाम और अध्यात्म भी स्वीकार कर लिया है! इसी से लोकवार्ता से चल कर अब वह फ़ोकलोरिस्टिक्स folkloristics लोकवार्ताविज्ञान या लोकविज्ञान तक पँहुच चुकी है! ऐसा अकस्मात् ही नहीं हुआ , वरन् इतिहास और विकास की अनिवार्यता ही इसका कारण है! ज्यों-ज्यों इतिहास का रूप निखरने लगा तो समाजविज्ञान, संस्कृतिविज्ञान, मानवविज्ञान, मनोविज्ञान के उदय-विकास ने हमारे बोध की सीमाओं को विस्फारित किया, अनेक अँधेरे कोनों को आलोक से भर दिया और स्वयं मन, मानव, मानवता की पुनर्व्याख्या एवं मानव-संबंधों के पुनरालोचन के लिए मार्ग प्रशस्त हो गये! इस प्रकार इतिहास की इन घटनाओं के बीच आज के लोकविज्ञान का अवतार हुआ, मंगलमय अवतार! जर्मनी में प्रोफेसर रहे डॉ. इन्दुप्रकाश पांडेय ने लिखा है कि लोकविज्ञान या लोकविद्या का सम्यक् अध्ययन तभी हो सकता है, जब इसे विश्वविद्यालयों में स्वायत्त अनुशासन का दर्जा मिले! उन्होंने कहा कि अन्त:अनुशासनिक-सहयोग के बिना भी लोकविज्ञान का समुचित अध्ययन नहीं हो सकता।

डॉ.सत्येन्द्र ने लिखा है कि लोकवार्ता के वैज्ञानिक-अध्ययन के जितने भी प्रयास हुए,उनसे उसका वैज्ञानिक-पक्ष स्पष्ट हुआ है, रूपतत्व और संरचना के गहन-स्तरीय विज्ञान ने उसके सामाजिकविज्ञान होने में कोई सन्देह नहीं रहने दिया है। किन्तु भारत में जिस प्रकार भाषाविज्ञान-परिषद ने निरन्तर प्रयत्न करके भाषाविज्ञान को स्वतन्त्र-अनुशासन के रूप में मान्यता दिलायी है, वैसी किसी संस्था के अभाव में लोकवार्ताविज्ञान को मान्यता नहीं मिल सकी है।

यह विडंबना ही है कि जब विश्व के लोकवार्ताविद लोकदृष्टि को पैना और व्यापक बनाने के लिये एक दूसरे के निकट आ रहे हैं हमारे यहां अभी तक लोकवार्ता की कोई केन्द्रीय अकादमी स्थापित नहीं हो सकी है, जहां भारत के सभी प्रदेशों और जनपदों के लोकजीवन और लोकसंस्कृति का समग्र और तुलनात्मक अध्ययन हो सके। साझा मंच के अभाव के कारण हिन्दी के एक जनपद का अध्येता दूसरे जनपद की लोकवार्ता से समन्वय नहीं कर पाता।

लोकजीवन का उद्वेलन इतिहास वदलता रहा है, किन्तु हमारे इतिहासकार अभी तक राजा-बादशाहों के ही किस्से सुनाते रहे हैं। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारत में तीन बडी सांस्कृतिक-क्रांतियों का उल्लेख किया है, पहली क्रांति जब वैदिक-तत्व-बोध और लोकजीवन में व्याप्त निषाद-संस्कृति का समन्वय हुआ। वेदव्यास का महाभारत! स्वयं वेदव्यास वैदिक और निषाद संस्कृति का समन्वय हैं! आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में भारत की दूसरी बडी सांस्कृतिक-क्रान्ति: विक्रम-संवत के आसपास भागवत-धर्म और महायान का समन्वय! शुंग-कुषाण-गुप्त काल के धार्मिक-आन्दोलन जिस लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं, वह भागवतधर्म

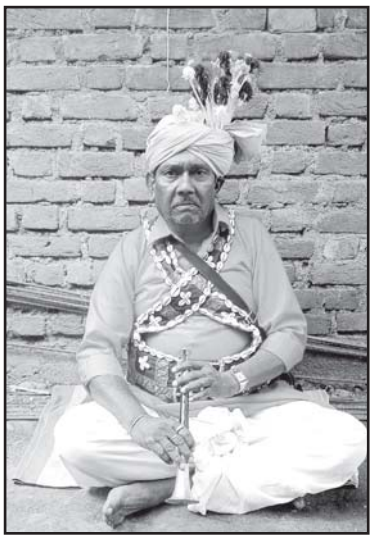

और महायान का समन्वय-प्रधान चिन्तन था।जब विष्णु [विराट] युगसत्य के रूप में प्रकटे। विष्णुविराट अर्थात सभी विचारों को अपने में व्याप्त कर लेना और सब में व्याप्त हो जाना। जैन, बौद्ध, शैव, शाक्त, सभी ने इसमें भाग लिया। बुद्ध विष्णु के अवतार और ऋषभदेव विष्णु के चौबीस अवतारों में शामिल किये गये। जब युगसत्य के रूप में विष्णु का अभ्युदय हुआ था, तब विराट में सभी व्याप्त हो गये थे। तीसरी क्रान्ति: प्रेम की प्रतिष्ठा! अद्वैत-वेदान्त और भक्ति के समन्वय के रूप में हुई। भक्ति-आन्दोलन, जिसका प्रभाव संपूर्ण देश में हुआ! जिसने भारत के साहित्य-संस्कृति-दर्शन-कला-संगीत सभी को अपने में समेट लिया। तीनों क्रान्तियां लोकजीवन का उद्वेलन हैं!

लोकजीवन ही विचारधाराओं का स्रोत है, इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं! महात्मा बुद्ध हों या कबीर या महात्मागांधी! महात्मा बुद्ध की जीवनगाथा में एक प्रसंग आता है, सुजाता की खीर का। जब महात्मा बुद्ध तप करते-करते क्षीणकाय हो गये थे, तब संयोग से ग्रामयुवतियों का एक समूह लोकगीत गाते हुए निकला, लोकगीत का भाव था कि, वीणा के तार को मत इतना ढीला छोडो कि वह स्पन्दित न हो और इतना मत कसो कि वह टूट ही जाय! महात्मा बुद्ध का ध्यान लोकगीत की भाव-सरणि पर केन्द्रित हुआ और उस एकाग्रता का प्रतिफलन मज्झिम-मग्ग या मध्यमार्ग के व्याख्यान के रूप में विश्वव्यापी बना। समस्त विचारधाराओं का स्रोत लोकजीवन ही है! नये युग के लिए नये अर्थों और मूल्यों की खोज लोकजीवन में ही हो सकती है!! समस्त विचारधाराओं को जीवनी-शक्ति लोकजीवन लोकमानस से ही तो मिलती है! संसार में क्रान्तियाँ हुई हैं किन्तु क्रान्ति के वे विचार कहाँ से आये? क्या किसी किताब में से अकस्मात् निकल पड़े? अथवा वे विचार उस समय के लोकजीवन के मन्थन का परिणाम थे? लोकजीवन की वह पीडा जो घनीभूत होकर व्यष्टि और समष्टिमन में क्रान्ति के विचार के रूप में परिणत हो गयी? भारत के लोकजीवन की गहराई में जनगण की मैत्री और सामंजस्य की शक्तियां किस प्रकार सक्रिय हैं। जाति-पांति, मजहब, वर्ग और भाषाभेद, प्रान्त-भेद की विषमताओं-विविधताओं के गर्भ में मनुष्य की संवेदना कितनी प्राणवान है! पंडित विद्यानिवासमिश्र ने मानुष-भाव को लोक के अमित वैभव को रूप में पहचाना था! मानुष-भाव, जो प्यार पर बल देता है, रिश्तों का विस्तार करता है! जो भीतर ही भीतर सब को जोड़ता है और जोड़ता ही रहता है, एक महाद्वीप को दूसरे महद्वीप से, एक चेतना को दूसरी चेतना से, एक समुदाय को दूसरे समुदाय से, एक संस्कृति को दूसरी संस्कृति से! लोकसंस्कृति का यह मानुषभाव घेरता नहीं है, मनुष्य के असीम विस्तार का द्वार खोलता है!

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रेखांकित किया है कि धरती के किसी भी अंचल के लोकगीत में मानव-हृदय का एक जैसा स्पन्दन सुनाई देता है! विश्व के लोकवार्ताशास्त्रियों ने लोककहानियों की अभिप्राय-अनुक्रणिका [मोटिफ़-इण्डेक्स] बनायी है! इसमें अचरज की कोई बात नहीं कि जेम्सफ्रेजर ने गोल्डनबाउ में पंचकिन की कहानी के एक मोटिफ़ की चर्चा की है कि उसके प्राण ताड़ वृक्षों के बीच सुरक्षित पिंजड़े में बन्द तोते में थे! अब इस मोटिफ़ को उन्होंने बंगाल की कहानी में भी पाया और यूनान की कहानी में भी पाया! रोम, रूस, जर्मनी, नारवे, आयरिश, मिस्र, सुमात्रा, दक्षिण अफ्रीका, उत्तरी अमरीका, की लोककहानियों में भी उन्हें यह अभिप्राय मिल गया! मनोविज्ञान के अध्येता जुंग ने लोककहानियों का अध्ययन करके सामूहिक-अवचेतन के 12 आद्यबिंबों [आर्कटाइप] की खोज की थी! फ्रायड ने ग्रीकपुराण-गाथाओं के आधार पर ईडीपस मनोग्रन्थि की खोज की थी! मानवशास्त्रियों ने लोकगाथाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य का मन बीते युगों का एपीटोम है! बीते युग उसके मन में समाये हुए हैं! लोकवार्ताशास्त्रियों ने लोककहानियों में रति [सेक्स], रक्षा, संग्रह, भूख, जिज्ञासा, आलस, प्रभुता, गौरव, होड़, सिसृक्षा नाम की दस मूल-प्रवृत्तियों को खोजा! ये मनुष्यजीवन की प्रेरक हैं! लोकवार्ताशास्त्रियों ने ही यह निष्कर्ष दिया कि लोकमानस की गति अलौकिक की ओर होती है और वह किसी महत्व की बात को चमत्कार गढ़ कर सुरक्षित रखता है!

लोकसरस्वती ने रामायण, महाभारत, भागवत एवं अन्य गाथाओं को भारत की धरती पर मानो लिख रखा है, हिमालय पार्वती का पिता है, समुद्र लक्ष्मी का पिता है,धरती सीता की मां है, कहीं राम की अयोध्या है तो कहीं कृष्ण की द्वारका है, कहीं शिव का कैलाश है, कहीं बुद्ध हैं, कहीं महावीर तो कहीं गुरुनानक की गाथा है। कहीं पांडव-गाथा है तो कहीं शक्तिगाथा है। कहीं दक्षप्रजापति है तो कहीं

काली कलकत्तेवाली है, कहीं मुंबादेवी है तो कहीं राजाबलि हैं। इन सब गाथाओं को हम निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं, विष्णुगाथा [राम-कृष्ण-गाथा] शिवगाथा, शक्तिगाथा, इन्द्रगाथा, महाभारतगाथा-चक्र, आल्हाचक्र, गोरखचक्र, सूफी गाथा, जातककथा एवं अन्य पुराण-गाथाओं का तादात्म्यसंबंध है। भारत की राष्ट्रीयता से इन गाथाओं का अविच्छिन्न संबंध है !

मनुष्य की उस सत्ता का नाम लोक है, जहां जाति-पांति, ऊंच-नीच, गरीब-अमीर, शासक-शासित, स्त्री-पुरुष, धर्म-संप्रदाय तथा क्षेत्रीयता के सभी बंधन खुल जांय! मालिक-नौकर, बडा-छोटा, वकील-व्यापारी, प्रोफेसर, उद्योगपति, नेता आदि बाह्य उपाधियां या छिलका हैं, इनके भीतर जो सामान्य मनुष्य है, वह लोक है।

लोक में सब हैं, लोक सबका आश्रय है। विभिन्न जाति-बिरादरी, वर्ग, धर्म-संप्रदाय लोक में ही जन्म लेते हैं, लोक से ही जीवनी-शक्ति प्राप्त करते हैं और लोक में ही समा जाते हैं। सब के बीच जो भेद हैं, वे तात्विक नहीं हैं, दृश्यमान [अहंकार-निर्मित] हैं। भीतर से वे सब मनुष्य ही हैं। सर्वजन-चेतना ही लोकचेतना है।

जिस प्रकार हम घर से अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल परिधान धारण करके बारह जाते हैं और जब लौटकर आते हैं तो फिर उस परिधान को खूँटी पर टाँग देते हैं और वह विशिष्टता छोड़कर घर में सामान्य बन जाते हैं, बच्चों में अपने उस बाहरी बड़प्पन को भूल जाते हैं, उसी प्रकार इन उपाधियों के भीतर प्रत्येक व्यक्ति लोक ही है। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा था कि, लोक हमारे जीवन का महासागर है, इसमें समस्त जनसमुदायों का अन्तर्भाव है शतसहस्र मानवजातियाँ, जो आज धरती पर हैं, वे भी और जो आज नाम-शेष हैं, वे भी - लोक के महासागर में समायी हुई हैं, लोक केवल वर्तमान नहीं है, वह सुदूर अतीत से भविष्य तक की निरन्तरता है! लोक समुद्र की तरह है। अन्तर्धाराएं टकरा रहीं हैं। लहरें टकरा रही हैं। टकराने की प्रक्रिया के साथ ही एक और प्रक्रिया भी चल रही है, वे लहरें टकराती हैं, और टकरा कर उसी समुद्र की अथाह गहराई में समा जाती हैं? समुद्र की ऊपरी सतह पर लहरों का द्वन्द्व भी होता है, समायोजन भी होता है! एक लहर दूसरी लहर से टकराती है और एक लहर दूसरी लहर में समा जाती है! लोकजीवन और लोकमन में भी इसी प्रकार का द्वन्द्व-समायोजन चलता रहता है! हवा, और चंद्रमा के संस्पर्श से हलचल होती है, समुद्र के उद्वेलन की प्रक्रिया में ज्वार-भाटे भी उठते हैं समुद्र के भीतर भूकंप भी आते हैं, भूस्खलन भी होते हैं, जिनकी वजह से सुनामी जैसी लहरें और तूफान भी आते हैं, जो विनाशकारी रूप धारण कर लेते हैं! युगों युगों में इसी प्रकार से युद्ध और क्रान्तियाँ हुई हैं! समुद्र की एक सतह पर एक प्रकार के जलचर रहते हैं और दूसरी अन्य सतहों पर दूसरी प्रकार के जलजन्तु होते हैं! समुद्र में जीव-जंतुओं की दो लाख से अधिक प्रजातियां विचरण करती हैं। लाखों तरह की वनस्पतियां पाई जाती हैं! समुद्र में हजारों तरह की सुरंगें हैं। समुद्र में बरमूडा त्रिभुज जैसी जगह भी है, जहाँ वायुयान और जलयान रहस्यमय तरीके से अदृश्य हो जाते हैं! समुद्र में हजारों छोटे और बड़े पर्वत हैं। समुद्र की भिन्न भिन्न सतहों और क्षेत्रों की आवाज भिन्न भिन्न है। कहीं समुद्र की चिंघाड़ती सी आवाज है, तो कहीं पर किसी वाद्ययंत्र के बजने जैसी! समुद्र की भिन्न भिन्न सतहों पर सीपी-शंख से लेकर नाना प्रकार के रत्न मिलते हैं, जिनके कारण समुद्र का नाम रत्नाकर है! ठीक इसी प्रकार से लोकमानस रूपी समुद्र की विभिन्न सतहें हैं! विभिन्न आवाजें हैं! हजारों साल पहले देश की लोकमेधा ने इस लोक को विराट पुरुष के रूप में प्रणाम किया था। विराट पुरुष जो सहस्रशीर्ष है, सहस्रपाद है, सहस्रनेत्र है, और सहस्रबाहु है! उसमें कोटि युगों का अंतर्भाव है! विभिन्न जाति, वर्ण, वर्ग, धर्म उसके हाथ-पैर, नाक-कान, आंख, पेट आदि हैं। वे सभी अंग अविच्छिन्न हैं और एक दूसरे के लिये हैं। वे अलग अलग नहीं हैं, वे सब के लिये सब हैं इस सब के बीच जो नाम रूप का भेद, सीमा, असमानता है, वह तात्विक नहीं है। लोकतन्त्र के प्रभात में लोकसत्ता का मंगलाचरण करते हुए 7 सितंबर 1947 को मथुरा में ब्रजसाहित्यमंडल के तत्वावधान में आयोजित लोकसंस्कृति-प्रशिक्षण-शिविर में आचार्य वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा था, जनता ही हमारे उदीयमान राष्ट्र की महती देवता है! हमारे सब आयोजनों के मूल में और सभी विचारों के केन्द्र में जनता ही प्रतिष्ठित है। यह सत्य जनपदीय-दृष्टिकोण का मेरुदंड है। जनता के जीवन के साथ हमारी सहानुभूति और आत्मा जितनी दृढ होगी, उतना ही अधिक हम जनपदों को जान सकेंगे। खुली हुई किताब के समान जनपदों का जीवन हमारे चारों ओर फैला हुआ है। पास गांव और दूर देहात में बसने-वाला जन इन रहस्यमयी पुस्तकों का एक-एक पृष्ठ है। यदि हम अपने आप को उस लिपि से परिचित कर लें, जिस लिपि में जनपदों और गांवों की अकथ-कहानी धरती और आकाश के बीच में लिखी हुई है ,तो हम सहज ही जनपदीय-जीवन की महिमामय कथा को पढ सकते हैं! भारत की आत्मा का साक्षात्कार करने का एकमात्र यही रास्ता है!

ज्ञान के समस्त वैभव का विकास दो धाराओं या परंपराओं में हुआ लोके वेदे च! शास्त्र परंपरा और लोकपरंपरा! लिखित अक्षर की परंपरा शास्त्र-परंपरा और वाचिक-परंपरा लोक-परंपरा है! ध्यान

देने की बात है कि शास्त्र-परंपरा ने लोकपरंपरा को वरीयता दी! महर्षि पतंजलि ने सूत्र दिया था, **लोकत:प्रमाणम्! लोकविज्ञानाच्च सिद्धम्! कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लोकज्ञता सर्वज्ञता! शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो भवेन्मूर्ख तुल्य:!** कौटिल्य ने कहा था कि शास्त्र को जानता है लेकिन लोक को नहीं जानता है तो वह मूर्ख के समान ही है। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लोकधर्मिता की महिमा का प्रतिपादन किया है: गीता में श्रीकृष्ण ने लोकसंग्रह के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है- **लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।** व्यष्टिहित और समष्टिहित के संबंध में गीता का वाक्य है, यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च य:। न तो लोक ही उससे दुखी या उद्विग्न होता है और न ही वह स्वयं ही लोक से उद्विग्न होता है! यह बात भूलने की नहीं है कि शास्त्र का जन्म भी लोक में ही होता है और उसकी प्रतिष्ठा भी लोक में होती है, लोक के द्वारा ही होती है। लोक समुद्र है और शास्त्र मेघ! लोकजीवन महासमुद्र की भांति है। शास्त्र आसमान में जा कर बरसा है, यह ठीक है किन्तु उसका स्रोत समुद्र अर्थात लोकजीवन का अनुभव ही है। लोक सागर है और शास्त्र मेघ। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में कहें तो यदि सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्म के समान चतुष्पाद माना जाय तो वेद या शास्त्रीयचिन्तन में उसके एक पाद की ही प्रतिष्ठा है। त्रिपाद की अभिव्यक्ति लोक के क्रियाशील जीवन में होती है। वेद और लोक: आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल वैदिक-साहित्य में कितना अंश लोकसाहित्य का है? अथवा लोकसाहित्य में कितना अंश वैदिकसाहित्य का है? वैदिक-प्रतीकों का है? यह हमारे अनुसंधान का विषय है, जैसे सात मातृकाएं। लोककहानियों की सात सहेलियां! सात परियां। वेद का पद है, सप्त स्वसार: !

लोक और शास्त्र के प्रश्न पर विभिन्न लोकवार्ताविदों ने विभिन्न दृष्टियों से सोचा है। कुछ अध्येताओं ने 'शास्त्र' में अहंचैतन्य और 'लोक' में समष्टि चैतन्य को देखा है, कुछ लोकवार्ताविदों ने लोक को गाँव और शास्त्र को नगर माना है। पुराने मानवविदों की दृष्टि में लोकवार्ता असभ्य, अर्द्धसभ्य, जंगली, आदिवासी, मूढ़, अपढ़, निरक्षर, गँवार और अज्ञानी तथा असंस्कृत लोगों का ज्ञान था। अनेक मनोविज्ञानी लोकमानस में आदिम-मानस को खोजते हैं। अनेक कलाविद् शास्त्र में लालित्य तथा लोक में अनगढ़ को देखते हैं। कुछ समाजशास्त्री शास्त्र को शासक-वर्ग के अस्त्र के रूप में देखते हैं तथा लोक और शास्त्र में वे मुनिमानस और जनमानस का वही द्वन्द्व देखते हैं, जिसे समाजशास्त्री समाज में वर्गसंघर्ष के रूप में पहचानते हैं। कुछ समाजशास्त्री कहते हैं कि शास्त्र बाँधता है और लोक उन्मुक्त करता है, जबकि कुछ समीक्षकों ने शास्त्र में वैदिक-परम्परा और लोक में आगम-परम्परा को चीन्हा है। कुछ विचारक शास्त्र में तर्क और लोक में श्रद्धाभाव का साक्षात्कार करते हैं। किसी की दृष्टि में शास्त्र सिद्धांत और आदर्श है तथा लोक व्यवहार है। कुछ इतिहासविदों ने शास्त्र में 'आर्य' और 'लोक' में 'अनार्य' को खोजा है जबकि अन्य कई आलोचकों ने वर्ण और जाति की दृष्टि से शास्त्र और लोक के पौरोहित्य को पहचानने का प्रयास किया है। अनेक विद्वान शास्त्र को लिखित-परम्परा तथा लोक को वाचिक-परम्परा के रुप में देखते हैं। शास्त्र और लोक की अनन्तान्त-प्रक्रिया से संस्कृति का विकास होता है। राधा: संस्कृति के अध्ययन की लोकोन्मुखी दृष्टि क्यों आवश्यक है इसके उदाहरण के लिए आप राधा को ही ले लीजिये! भागवत में राधा का नाम नहीं है। आधे श्लोक में एक अस्पष्ट सा संकेतमात्र है, जबकि भारत के विभिन्न जनपदों के लोकसाहित्य में राधाकी प्रेमकथा का अछोर-विस्तार है। संसार में लोकगीत-परंपरा की इतनी उदात्त, इतनी सूक्ष्म, इतनी शास्त्रीय और तात्विक व्याख्या का उदाहरण शायद ही मिल सके, जैसी व्याख्या और जैसी स्वीकृति गोपगीतों की नायिका राधा और उसकी रासलीला की हुई है! राधा के लोकायत-उत्स को लेकर मनीषियों ने कितना लिखा है! राधा का लोकायत उत्स एक ओर संस्कृत तथा भारतीय-भाषाओं का विशाल-साहित्य है, जिसमें राधा ग्वालिनी, गोपसुता, गूजरी, अहीर, ब्रजवधू और ग्राम्या हैं आभीरेन्द्रतनया। कहीं गायों का दूध दुह रही हैं तो कहीं पनघट पर पानी भर रही हैं, गोबर पाथ रही हैं, दही बेचने जा रही हैं। घोषनिवासिनी हैं। श्री रूपगोस्वामी के उज्ज्वलनीलमणि में कितने ही ऐसे चित्र हैं। लोकसाहित्य का महत्व तभी समझ आ सकता है, जब हम लोक और शास्त्र के समुद्र और मेघ जैसे आदान-प्रदान को

समझ सकें! यह लोक और शास्त्र के अन्तरावलंबन का अद्भुत उदाहरण है। यहां एक बात तो हमें व्यास के ब्रह्मसूत्र की पहले ध्यान रखनी होगी लोकवत्तु लीला कैवल्यं। लीला लोकवत तो है किंतु लौकिक नहीं है। अलौकिक को लौकिक के द्वारा समझने का प्रयास है। अज्ञात को ज्ञात विंबों से ही तो आप समझाते हैं। लीला इतिहास की घटना नहीं है। इतिहास की घटना देशकाल से आबद्ध है, लीला देशकाल से निर्बंध है। लोकसंस्कृति की दिशा व्यष्टि से समष्टि, शास्त्र से लोक, विशेष से सामान्य और सत्ता से जन की ओर है। संस्कृति को समझने के लिये लोकवार्ता के अध्ययन के बिना कोई दूसरा विकल्प नहीं है! जनपदीय-भारतवर्ष के साक्षात्कार करना ही होगा! जो लोग समझते हैं कि संस्कृति की रचना आचार्य-मानस या शास्त्र-मानस करता है। वे लोक की भूमिका को देख ही नहीं पाते क्योंकि लोक निर्गुणब्रह्म की तरह व्याप्त होता है। सर्व को कोई कैसे प्रत्यक्ष कर सकता है? एक और बहुतों को तो देखा जा सकता है, सर्व को कैसे देखा जायेगा? वह अदृश्य रह कर ही युग की रचना करता है। भवन की बुनियाद तो अदृश्य ही होती है न!

जैसे भाषा का विकास लोकजीवन में होता है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता का विकास भी लोकजीवन में होता है। जैसे भाषा अपौरुषेय है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता भी अपौरुषेय हैं अर्थात् कोई नहीं बतला सकता कि किसने भाषा बनायी? किसने उसमें परिवर्तन किया? इसी प्रकार लोकवार्ता और मिथक की रचना किसने की और किसने विकास किया, यह भी कोई नहीं बतला सकता। जैसे भाषा परंपरागत होती है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता भी परंपरागत हैं। जैसे जीवन मे प्रवाह में भाषा में परिवर्तन होते हैं, उसी प्रकार जीवन मे प्रवाह में मिथक तथा लोकवार्ता में भी परिवर्तन होते हैं। जैसे भाषा का अध्ययन हम तुलनात्मक, विकासात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक-प्रणालियों से करते हैं, वैसे ही मिथक और लोकवार्ता का अध्ययन भी इन प्रणालियों से किया जाता है। जैसे भाषा में शब्द और वाक्य की रचना, ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान होते हैं, उसी प्रकार मिथक और लोकवार्ता में कथारूढ़ि, मोटिफ motif, कथामानक type तथा आद्यबिंब archetype होते हैं। भाषाविज्ञान की सीमा वैखरीवाणी तक ही है किन्तु लोकवार्ता और मिथक को मध्यमा, पश्यन्ती तथा परावाक् तक की यात्रा करनी होगी। शब्द के तद्भवीकरण की पूरी प्रक्रिया लोकजीवन में ही चलती है! लोक के प्रत्यक्ष व्यवहार में ही मुहावरों का उद्भव और विकास होता है! इसी प्रकार से देशज शब्द का जन्म लोकजीवन में ही होता है! लोक की जीवन्त भाषा का उदाहरण, गरम पानी तो गरम पानी ही है किन्तु कितना गरम है, इसके लिये लोक में बहुत शब्द हैं, जैसे.. चरचरौ, भभकतौ, गुनगुनौ, फुकतौ, सुहाँतौ, ठंडे पानी के लिये, कंटान,गरन्त, काँटे सौ। झगड़े के लिये हमारे पास कितने शब्द हैं.. धक्कामुक्की,कहासुनी, लैलै दैदै, चेंचमचेंचा, हाथापाई, बाज गयी, फौजदारी, लठालठी, गटापटी, तकरार, मनचाल, महाभारत, जूझ गये, पमाड़ौ आदि। नींद के लिये शब्द हैं.. ओंघा, घँघेला, झपकी, घैरघुट्ट, कुंभकरनी। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में भाषा-प्रयोग के संबंध में दो सूत्र दिये हैं: लोकत: प्रमाणम् लोकविज्ञानाच्च सिद्धम् भाषा किताब में नहीं लोकजीवन में रहती है, इसी प्रकार से संस्कृति भी किताब में नहीं लोकजीवन में रहती है ये दोनों सूत्र भाषा के लिए तो महत्वपूर्ण हैं ही, मानवजीवन के प्रत्येक व्यवहार में भी सिद्ध हैं!

संसार में लोकतंत्र के सूत्रपात और लोकवार्ता के अध्ययन के बीच एक निश्चित संबंध -सूत्र है । दूसरे महायुद्ध के बाद संसार ने पहचान लिया था कि संप्रभुता का स्रोत राजसिंहासन या राजमुकुट में नहीं है, संप्रभुता का स्रोत सामान्य-जन समष्टिजन में ही है और इस प्रकार से लोकतन्त्र के रूप में लोकशक्ति का आविर्भाव हुआ, भले ही उसका दमन करने के प्रयास भी निरन्तर चलते रहते हैं। गहराई से सोच लेने की बात है कि यह लोकतन्त्र किसी दिन आसमान से नहीं टपक पड़ा था! यह लोकतन्त्र किसी सुलतान या बादशाह ने बख्शीश में भी नहीं दे दिया था! यह लोक के उद्वेलन का परिणाम है! यह लोकतन्त्र लोकजीवन के युगयुगीन संघर्ष का परिणाम है ।लोकमानस की स्वीकार्यता! वह अस्वीकार कर दे, तो सम्राटों के सिंहासन भी हिल जाते हैं। मनुष्यजीवन के इतिहास पर नजर डालिये, क्रूर आक्रान्ताओं ने, निर्दय सम्राटों या बादशाहों ने, देशी-विदेशी शासकों और राजाओं ने, अहंकार के मद में डूबे सामन्तों ने लोकजीवन पर कौन कौन से अत्याचार नहीं किये? लोकसंस्कृति, लोक आस्था और लोकविश्वास को कुचलने में क्या कसर छोड़ी थी? किन्तु यह लोक की अपराजेय शक्ति ही तो है कि वे प्रहार और अत्याचार करने वाले इतिहास के मलबे में दब गये, खाद बन गये और लोक की सत्ता ने आज लोकतन्त्र का रूप धारण कर लिया है! लोकवार्ता का अध्ययन करने वाले समझ सकते हैं कि यह लोकचेतना सहस्राब्दियों से विकसित होती रही है। निरंकुश राजाओं को भी भय रहता था कि, लोकोऽयं किं वदिष्यति? भारत के संविधान की प्रस्तावना में ''हम भारत के लोग'' कह कर जिसकी सत्ता को परिभाषित किया गया है, वह लोक का ही वैभव और ऐश्वर्य है! संविधान लोकतन्त्र का शरीर है और आत्मा लोकचेतना

लोकचेतना: जिसका न आयात हो सकता है और न निर्यात.. लोकतन्त्र और लोकवार्ता दोनों समानता के सिद्धान्त लेकर ही आगे बढ़ते हैं! लोकदृष्टि समानता का सिद्धान्त में ओतप्रोत है। लोकदृष्टि राजमहल और झोंपडी में एक ही हृदय और एक ही बुद्धि, एक जैसा सुख-दुख देखने की अभ्यस्त है! भारत का लोकमानस लोकतन्त्र के दर्शन का विश्वासी है.. सबके भले में हमारा भी भला !

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अन्तिम कृति लालित्य तत्व इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उसमें लोक-विज्ञान और मिथक को लेकर गंभीर चर्चा है! आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक ''लालित्यतत्व'' में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि मानवशास्त्रियों ने जब से संसार के विभिन्न मानव-समुदायों के जीवन का अध्ययन प्रारंभ किया, तब से मनुष्यजीवन के इतने महत्वपूर्ण सत्य और तथ्य सामने आने लगे कि मानविकी के विभिन्न अनुशासनों की अध्ययन-दृष्टि में युगान्तर-कारी परिवर्तन हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि मानवचित्त की व्यापकता के रहस्यभेद को लेकर चिन्तन किया गया, आदिमजातियों की जीवनशैली और विश्वदृष्टि की विविधता देखने के बाद जीवविज्ञान, नीतिविज्ञान, मनोविज्ञान आदि पर नये विचार सामने आये। सर फ्रेजर की गोल्डेनब्रो, एडवर्डवेस्टरमार्क की ह्यूमन मैरिज, रिचुअल एंड बिलीफ इन मोरक्को, तथा दि ओरिजिन एंड डिवलपमेंट ओफ मौरल आइडियल्स ने परंपरा का नया स्वरूप और अर्थ प्रमाणित कर दिया। लोकवार्ता ने अभिजात-साहित्य को उसके यथार्थ परिवेश में देखने की दृष्टि प्रदान की। अध्ययन के नये-नये अनुशासन उभर कर आये। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रेखांकित किया कि नृतत्वविज्ञान ने मानवशरीर के विभिन्न अवयवों, कपाल, नासिका, जबड़े आदि की उच्चावचता का हिसाब करके विभिन्न श्रेणी की जातियों की परिकल्पना की थी, परन्तु मानवविज्ञान ने ऊपरी भेदों को बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं माना! मनुष्य का मन सर्वत्र एक है, एक ही प्रकार से सोचने वाला, एक ही प्रकार से उदबुद्ध या अवबुद्ध होने वाला, सब प्रकार से एक! एडवर्ड वेस्टरमार्क ने मनुष्य के अनेक बाह्य आचरणों के परस्पर-विरोधी तथ्यों का संकलन करके नतीजा निकाला कि Man, after all is a single species! सब होते हुए भी मनुष्य एक ही जीवश्रेणी का प्राणी है! ऊपरी भेद नगण्य हैं! मनुष्य का चित्त एक-रूप है, उसकी अवगतियाँ और उदात्तीकरण की वृत्तियाँ समान मार्ग से चलती हैं, उनकी अवनर्मिल और उन्नर्मिल अवस्थाएं निश्चित परिस्थितियों में समान रूप से क्रियाशील होती हैं! जीवतात्विक संवेग समानभाव से सर्वत्र मानस सूक्ष्म बोधों को उकसाते हैं! मानवचित्त एक है! लोकविज्ञान के अध्ययन के प्रयोजन पर विचार करें तो यह कम बड़ी बात नहीं है !

अभी तक भारत के पांच-छह विश्वविद्यालयों में ही लोकविज्ञान को स्वायत्त-अनुशासन का दर्जा मिल सका है। मैसूर-विश्वविद्यालय में तो लोकवार्ता-संग्रहालय भी है! संस्कृति मन्त्रालय के अन्तर्गत देश की सबसे बड़ी स्वायत्त-संस्था इन्दिरागांधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र ने लोकवार्ता की कक्षाएं प्रारभ कर दी हैं! इसलिए विश्वविद्यालयों में लोकजीवन, लोकमानस, लोकसंस्कृति आदि को लेकर जो कार्य हुआ है, वह मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, भाषिकी, कला, संगीत आदि मानविकी के विभिन्न अनुशासनों के अंतर्गत हुआ है अथवा साहित्य -विभागों के अंतर्गत हुआ। ध्यान देने की बात यह है कि साहित्य-विभागों के अंतर्गत जो कार्य हुआ, स्वाभाविक-रूप से उसमें अध्ययन के साहित्य के ही प्रतिमान प्रभावी रहे। छन्द, रस, अलंकार, बिम्ब आदि। ध्यान देने की बात यह है कि साहित्य -विभागों के अंतर्गत जो कार्य हुआ। ऐसी ही एक पुस्तक किसी ने भेजी थी, उसे दिखलाते हुए पंडित विद्यानिवास मिश्र जी बोले.. मैं लोक-कविता का व्याकरण लिखना चाहता हूँ क्योकि लोक का शास्त्र, काव्य-शास्त्र के आगे की चीज है।

हमारे विश्वविद्यालयों और यूजीसी के महन्त आज यह नहीं समझ पा रहे कि लोकविज्ञान केवल लोकसाहित्य ही नहीं होता! लोक-साहित्य लोकवार्ता का बहुत सीमित सा अंश है.. लोक की शब्दार्थ-सृष्टि। कभी-कभी तो विश्वविद्यालयों के आचार्य लोकसाहित्य को स्थानीयता का अध्ययन समझ लेते हैं, और एक-दो विश्वविद्यालयों की तो मुझे जानकारी भी है, जिनमें उसे इतना संकीर्ण बना दिया गया है कि विद्यार्थी गंगा के घाट को ही गंगा समझ लेता है। उसे शायद वहाँ के आचार्य ने ही नहीं जाना कि लोकविज्ञान विश्वमानव के अध्ययन का विज्ञान है। घाट पर होकर ही गंगा के प्रवाह में अवगाहन किया जा सकता है। लेकिन घाट घाट है और गंगा गंगा है। घाट जहाँ है, वहीं रहता है किन्तु गंगा प्रवाहशील है, जीवन भी प्रवाहशील है परन्तु अब वह दिन दूर नहीं है कि जब लोकविज्ञान को स्वतन्त्र-अनुशासन का दर्जा मिलेगा! डॉ. नगेन्द्र ने कहा था कि लोकविज्ञान का भविष्य तो है ही। सरकार को मासेज से ही शक्ति मिलती है, इसलिये मासेज की ओर सरकार का ध्यान बढेगा ही। मासेज के अध्ययन का भी विस्तार होगा और अध्ययन के रूप भी बढ़ेंगे। प्रत्येक प्रान्त और जनपद के लोकजीवन और लोकसंस्कृति का तुलनात्मक-अध्ययन और कोश बनाया जाना चाहिये। यह सब

महत्वपूर्ण और उपयोगी होगा!

लोकविज्ञान के क्षेत्र में काम करने की असीम संभावनाएँ हैं।

1. हमारे सामने पहला काम है-संपूर्ण भारतवर्ष के प्रत्येक अंचल, प्रत्येक जाति और जनसमूह के जीवन में उतरकर उसकी लोकवार्ता का संग्रह-संपादन करना।
2. दूसरा काम है-समाजशास्त्र, भाषाशास्त्र, मानवभूगोल, जनवृत्तशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, मिथकशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन, इतिहास और मनोविज्ञान की दृष्टि से उस सम्पूर्ण लोकवार्ता-सामग्री का पर्यालोचन तथा उसका अंतरजनपदीय और अंतरप्रदेशीय अध्ययन। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस अध्ययन से मानविकी-वर्ग के अनुशासनों में नए अर्थ भर जायेंगे तथा मानव-जीवन और मानव-मन के नए सत्य-तथ्य उद्घाटित होंगे।
3. हमारे सामने तीसरा काम है-विश्व के विभिन्न देशों के लोकविज्ञान संबंधी अध्ययन की प्रवृत्तियों और दिशाओं से परिचय प्राप्त करना तथा भारतीय लोकवार्ता तथा विश्व के अन्य देशों की लोकवार्ता के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा मानव-मन की मूलप्रवृत्तियों की पहचान करना।
4. हमारे सामने चौथा कार्य है वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, पालि प्राकृत अपभ्रंश से लेकर हिंदी और प्रादेशिक भाषाओं के संपूर्ण साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन और लोकतात्विक अध्ययन-पद्धति का विकास। लोकवार्ता के अध्येताओं ने अपने-अपने जनपदों में लोकवार्ता की साधना की है, परंतु न तो अभी तक भारत में लोकवार्ता के अध्ययन का इतिहास लिखा जा सका है और न ही लोकवार्ता का यह अध्ययन जनपदों की देहरी लाँघ सका है। भारतीय लोकवार्ताकोश, हिंदी लोकवार्ताकोश एवं पुराकथाओं की अभिप्राय-अनुक्रमणिका भारतीय लोकवार्ता के अध्ययन के लिए बुनियादी आवश्यकताएँ हैं, परंतु वे अभी तक तैयार नहीं हो सकी हैं। यह सब कार्य छोटा-मोटा काम नहीं है, इसके लिए हजारों जनपदीय- अध्येताओं की आवश्यकता है।

विश्व के लोकवार्ताविदों ने भारत के विभिन्न भागों में सर्वेक्षण किये हैं। फिनलैंड के जानेमाने लोकविज्ञानविद प्रो.लौरी होंको ने दक्षिणभारत की, श्री ऐपिक के विभिन्न पाठों को एकत्र किया है। अमेरिका सिरेससविश्वविद्यालय की प्रो.सूसन एस वाडले ने ब्रज के ढोला के पाठभेदों को सम्पादित किया है, केलिफोर्निया के प्रो.पीटर जे क्लाज ने, तुलू की लोकगाथा पर काम किया है। प्रो.एन.गोर्ड्जिन्स गोल्ड ने, राजा नल, को अपने अनुसन्धान का विषय बनाया है। जायस वर्कलर ने, पंडवानी पर शोध किया है। इंगलैंड के जौन ब्राकिंगटन तथा मैरी ब्राकिंगटन के अनुसन्धान का विषय... रामायण से जुडे लोकगायन हैं। इजरायल की हैडाजैसन ने.. लोकगाथा-परंपरा पर काम किया है। चीन के वांगचियान का कार्य.. सिंह टोटम पर है। ये उदाहरण हैं।

आज समस्त संसार में, विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों में लोकजीवन का अध्ययन हो रहा है! विश्व में लोकवार्ता के प्रति उत्कट-उत्साह, रुचि और जिज्ञासा है। मानव-सम्बन्धी अध्ययनों में लोकविज्ञान [फोकलोरिस्टिक्स] आधुनिकतम अनुशासन के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। अनुशासनों के नाम भले ही भिन्न-भिन्न हैं। जर्मनी में volks kunde कहते हैं। जर्मनी में institute for deutsche und verglei ch ende volks kunde लोकवार्ता के अध्ययन के संस्था है। वहां लोकवार्ता के विश्वकोश पर काम हो रहा है.. enzyklopadie में marchens. आस्त्रिया में भी volks kunde नाम है। कनाडा में university de sudbury में भी deptt de folklore है। अमरीका में पेंसिल्वेनिया तथा इंडियाना यूनिवर्सिटी में Dept. of folklife नाम से स्वायत्त विभाग है। केलिफोर्निया में folklore and mythology का विभाग है, लन्दन विश्वविद्यालय में school of oriental and african studies तथा deptt of cultural life के अन्तर्गत लोकवार्ता का अध्ययन होता है। रूस में भी ethnography के विभागों में लोकजीवन का अध्ययन किया जाता है। इजराइल में फोकटेल आर्काइव्स हैं। जापान से तो एशियन-फोकलोर नाम से एक शोधपत्र प्रकाशित होता है। चीन में लोकवार्ता की बहुत सी संस्थाएं हैं। आयरलेंड [डबलिन] में आयरिश फोकलोर डिपार्टमेंट है। फिनलेंड में कल्चरल-स्टडीज नाम से विभाग हैं। वहां ल्रोर्डिक इंस्टीट्यूट आफ़ फोकलोर है। वहां के लौरीहोंको तो बहुत ही जानेमाने लोकवार्ताविद हैं। अर्मीनिया में एथ्नोग्रैफी के अन्तर्गत लोकवार्ता का अध्ययन करते हैं। हंगरी में भी ethnografical institute है।

अब समय आ गया है कि उत्तरभारत के विश्वविद्यालय स्वायत्त अनुशासन के रूप में लोक-विज्ञान को प्रतिष्ठित करें!

-1828, हाउसिंग बोर्ड कालोनी, सेन्टर- 13-17
पानीपत-132203 (हरियाणा) मो. 9996007186

■

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

तबला सम्राट पं. सामता प्रसाद मिश्र उर्फ गुदई महाराज

जन्म : 20 जुलाई 1921 **निधन : 21 मई 1994**

वाराणसी के कबीर चौरा में जन्में पं. सामता प्रसाद मिश्र उर्फ गुदई महाराज ने तबलावादन की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता राचा महाराज से घर पर ही प्राप्त की थी सात वर्ष की आयु में पिता जी की मृत्यु के बाद आपने तत्कालीन सुप्रसिद्ध तबलावादक पंडित भिक्कू महाराज से शिक्षा प्राप्त की अथक परिश्रम और घनघोर साधनों से आपको निरन्तर सफलता प्राप्त होने लगी फलस्वरूप आपकी तबलावादन की कला लोकप्रिय और परिष्कृत होती चली गई।

भारत के लगभग सभी प्रकार के श्रेष्ठ वादक संगीतकारों के साथ आपने तबले पर संगत देश–विदेश में अपूर्व यश और ख्याति अर्जित कर ली झनक–झनक पायल बाजे, मेरी सूरत तेरी आँखे, बसन्त बहार, शोले जैसी सफल फिल्मों में आपके तबला वादन ने चार चाँद लगा दिए थे।

गुदई महाराज को कई सम्मान और उपाधियों से विभूषित किया गया जिनमें वर्ष 1972 में पद्मश्री, वर्ष 1979 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, वर्ष 1991 में पद्म भूषण पुरस्कार के अलावा तबले का जादूगर' 'ताल मार्तण्ड' 'ताल शिरोमणी' 'ताल विलास' 'तबला सम्राट' आदि प्रमुख है–

पंडित सामता प्रसाद मिश्र उर्फ गुदई महाराज का यह दुर्लभ फोटो वयोवृद्ध सुप्रसिद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल द्वारा उनसे हुए साक्षात्कार के समय वर्ष 1973 में क्लिक किया गया था।

संस्मरण

तबला सम्राट गुदई महाराज के जीवन के कुछ रोचक प्रसंग

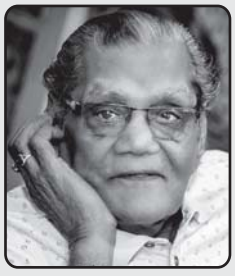

जगदीश कौशल

पंडित सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज का बचपन अनेक कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए बीता था। कभी-कभी कठिन परिस्थितियाँ भी वरदान बन जाती है। ऐसा ही गुदई महाराज के जीवन में भी हुआ। आपके पिता श्री पंडित हरिसुन्दर मिश्र (बाचा मिश्र) एक अच्छे तबला वादक थे। तबला वादन की प्रारंभिक शिक्षा आपने अपने पिता से ही प्राप्त की थी। जब वह 8 साल के थे तभी उनके पिता का निधन हो गया था। उनकी माँ भगवानी देवी ने बहुत संघर्ष कर अपने पांच बच्चों का लालन-पालन किया। गुदई महाराज के शब्दों में – ''पिताजी मरे तो बहुत तंगी रही, 8 साल की उम्र से लेकर 26 साल तक समाज वालों ने बहुत दबाने का प्रयास किया। अपना कच्चा मकान 8 रूपये प्रतिमाह किराए पर देकर खुद पड़ोस में भतीजे के मकान में हम लोग रहने लगे।'' माँ मुझे चार बजे भोर में जगा देती और कहती ''यह सबसे मुफीद समय है रियाज़ के लिए, इस समय देवता लोग विद्या बांटते हैं।'' वह खुद सुपारी की दुकान से सुपारी लाती और आठ बजे सुबह तक काटती रहती। इस काम में उन्हें चार आना रोज मजदूरी मिलती थी। डिबरी की रोशनी में वह रोज चार सौ सुपारी काटा करती थी। इसी समय डिबरी की रोशनी में उनके रियाज़ की संगत हुआ करती थी। माँ ने ही उन्हें तबला सीखने के लिए प्रेरित किया और पिताजी के कई बोल भी सिखाए। इस प्रकार पिता के गुजर जाने के बाद बालक गुदई पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा था। इसी समय मौसी ने सहारा दिया और उनके आंसू पोंछे। यह भरोसा दिया कि उनके बेटे विक्रमादित्य मिश्र उर्फ बिक्कू महाराज उन्हें तबला के गुर सिखाएंगे। इस प्रकार उन्होंने बिक्कू महाराज से तबला वादन में महारथ प्राप्त की।

अपने पहले सार्वजनिक कार्यक्रम को याद करते हुए उन्होंने बताया कि सन् 1942 में इलाहाबाद के अखिल भारतीय संगीत समारोह में उन्हें भी बुलाया गया था। वहां बड़े-बड़े कलाकार आमंत्रित थे क्योंकि वह नवोदित और एक प्रकार से अपरिचित कलाकार थे, इसलिए कोई भी प्रसिद्ध कलाकार उनकी संगत लेने को तैयार नहीं हो रहा था। एक के बाद एक दिन बीत रहे थे। एक दिन अचानक उनका सामना उस्ताद अलाउद्दीन खाँ से हो गया। खाँ साहब को जब गुदई महाराज ने नमन किया तो उन्होंने उनका नाम और परिचय पूछा।

बातचीत में जब खाँ साहब ने जाना कि उन्हें कोई मौका देने को तैयार नहीं है तो उन्होंने पूछा कि क्या वह उनके साथ तबला बजाएंगे? गुदई महाराज को एक बारगी विश्वास नहीं हुआ। लेकिन उनके जीवन में कुछ बड़ा घटित होना था तो हुआ। गुदई महाराज जब इलाहाबाद के लिए घर से निकल रहे थे, तब उन्होंने अपने गुरु बिक्कू महाराज से आशीर्वाद माँगा था। तब उन्होंने कहा था कि तुम्हें मेरा नाम ऊँचा करके आना है। उन्होंने आगे बताया कि जब शाम को वह मंच पर बाबा अलाउद्दीन खां के साथ संगत के लिए तबला बजाने बैठे तो ऐसा आभास हुआ कि उनके गुरु जी बिक्की महाराज वहाँ उपस्थित होकर उन्हें बल प्रदान कर रहे हैं। इस कार्यक्रम के बाद से ही उनकी प्रसिद्धी में चार चाँद लग गए और आगे चलकर वह तबला के जादूगर कहे जाने लगे।

संपर्क : ई – 3/20 अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मो.– 9425393429

■

आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास का पहला दीक्षांत समारोह सम्पन्न

आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास का पहला प्रतिष्ठित दीक्षांत समारोह भारत भवन के अंतरंग सभागार में सम्पन्न हुआ। अद्वैत वेदांत अद्‌भुत है। इसकी सबसे सरल परिभाषा गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में की है। कण-कण में भगवान विराजमान हैं। भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता है। साकार-निराकार जो भी हो, सबका मूल अद्वैत वेदांत है। अद्वैत भारत की माटी और कण-कण में बसा है। इसलिए अद्वैत को साकार कर जीवन जिओ तो जीवन परमानंद से भर जाएगा। सीएम शिवराज सिंह चौहान ने भारत भवन में आचार्य शंकर सांकृतिक एकता न्यास की ओर से अद्वैत जागरण शिविर के चयनित युवाओं के पहले दीक्षांत समारोह को संबोधित किया। उन्होंने कहा कि भारतीय संस्कृति वसुदैव कुटुम्बकम की रही है। संतो ने कहा है सब सुखी हों, सब निरोग रहें और सबका कल्याण हो। पूजा के अंत में भी सबके कल्याण की कामना की जाती है। आदि गुरु शंकराचार्य ने भी भारत को यही समझाने का प्रयास किया है। आदिगुरु न होते तो भारत का यह स्वरूप न होता। आदिगुरु ने पूरे भारत को एकता के सूत्र में बांधा। उन्होंने कहा कि भौतिकता के बीच सही मार्ग अद्वैत ही दिखाएंगे। मुख्यमंत्री ने चयनित युवाओं से कहा कि इस शिविर के माध्यम से जो सीखा उसे जीवन में उतारें साथ ही गांव-गांव जाकर प्रचार-प्रसार भी करें। आर्ष विद्या मंदिर राजकोट के स्वामी परमात्मानंद सरस्वती ने कहा कि हमें शरीर की रचना जीवन की दृष्टि सिखाती है। अगर पेट अन्न पचा रहा है तो पूरे शरीर के लिए पचा रहा है। पैर चल रहे हैं तो पूरे शरीर के लिए। शरीर को जितनी आवश्यकता होती है, उतना ही ग्रहण करते हैं। अगर जरूरत से ज्यादा हो जाता है तो वह ट्यूमर बन जाता है। समाज, देश का कुछ भी हो। सबके लिए सोचना यह हमारी दृष्टि होनी चाहिए। चिन्मय मिशन पुणे की ब्रह्मचारिणी मैत्रेयी चैतन्य ने कहा कि शुद्ध संकल्प से बहुत सारे लोग प्रेरित होते हैं। इसका उदाहरण है आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास की ओर से लगाया गया अद्वैत जागरण शिविर। इनमें कई युवा वेदांत की शिक्षा ले रहे हैं और अपने जीवन में परिवर्तन लाकर समाज को नई दिशा दे रहे हैं। इस प्रकल्प से जुड़ने वाले युवा दूसरों को भी प्रेरित करेंगे। सप्त मातृका आश्रम महेश्वर के स्वामी समानंद गिरि ने कहा कि अद्वैत को जीवन में उतारें। उन्होंने कहा, युवाओं के साथ काफी अच्छे अनुभव रहे और काफी प्रेमपुर्वक और भावपूर्वक शिक्षा युवाओं ने ग्रहण की। युवा दूत बन कर इसे आगे बढ़ाने का कार्य करेंगे। न्यास के सचिव शिवशेखर शुक्ला ने आचार्य शंकर एकता न्यास की गतिविधियों पर प्रकाश डाला। दीक्षांत समारोह में सभी 58 युवाओं को अतिथियों की ओर से रूद्राक्ष की माला, आचार्य शंकर का चित्र, भगवान गीता और शॉल भेंट कर सम्मानित किया। युवाओं ने सभी गुरुजन का आशीर्वाद लिया। सीएम मुख्यमंत्री ने सभी युवाओं और उपस्थित लोगों को देश की उन्नति में योगदान देने, एकात्म के भाव को आत्मसात करने का संकल्प भी दिलाया। इस मौके पर रघुनंदन शर्मा, हितानंद शर्मा, कपिल तिवारी, पूर्व मुख्य निर्वाचन आयुक्त ओ.पी. रावत, एमपीएस परिहार, कैलाशचंद्र पंत, प्रो. सुरेंद्र बिहारी गोस्वामी सहित अन्य गणमान्य अतिथि श्रोता मौजूद थे। ■

महामहिम राज्यपाल श्री मंगूभाई पटेल के द्वारा श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय सम्मानित

माधवराव सप्रे संग्रहालय भोपाल के द्वारा समग्र साहित्यिक और कलात्मक योगदान के लिए भोपाल में सप्रे संग्रहालय में आयोजित एक गरिमामय कार्यक्रम में सुप्रसिद्ध ललित निबंधकार तथा कलाविद श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय को मध्यप्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री मंगूभाई पटेल तथा भारत के पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री ओ पी रावत द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर उन्हें गांधीजी के प्रतीक चिन्ह चरखा व सूत की माला प्रशस्ति पत्र, शाल, श्रीफल भेंट किए गए। इस अवसर पर श्री उपाध्याय ने इस प्रतिष्ठित सम्मान को प्रदान करने के लिए संग्रहालय के संस्थापक श्री विजयदत्त श्रीधर सहित संग्रहालय से जुड़े सभी पदाधिकारियों के प्रति आभार व्यक्त किया। और कहा कि महात्मा गांधी जैसे इतिहासपुरुष जिन्हें दादा माखनलाल चतुर्वेदी मानव काव्य कहते थे की पावन स्मृति से जुड़ना उनके जीवन का सौभाग्य है। उन्होंने यह भी व्यक्त किया कि वे विगत अनेक दशकों से साहित्य और कला के अंतर्संबंधों पर तथा मध्यप्रदेश की दृश्य विरासत के संरक्षण पर कार्य कर रहे हैं जिसे गति दी जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि महामहिम राज्यपाल महोदय जनजातियों की जिस विरासत के संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध है वह मध्यप्रदेश की सात प्रमुख जनजातियों के पुरखों की परंपरा में विद्यमान रही है तथ भारत की प्रचलित चित्रशैलियों में भी उसे अभिव्यक्त किया गया है। यह एक अछूता आयाम है जिस पर कार्य किया जाना अपेक्षित है।

इस अवसर पर भारत के पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री ओ पी रावत के द्वारा श्री उपाध्याय की साधना की सराहना करते हुए कहा गया कि उनके इस महत्वपूर्ण कार्य में सभी को सहयोग देना चाहिए।

महामहिम राज्यपाल महोदय ने श्री उपाध्याय के साहित्य और कला के क्षेत्र में दिए गए अवदान का विस्तार से उल्लेख किया तथा आशा व्यक्त की कि इस कार्य को ये निरंतर गति देंगे।

इस अवसर पर हरदा महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य स्वर्गीय हरिकृष्णदत की स्मृति में दिए जाने वाले पुरुस्कार को भी प्रख्यात प्राध्यापक श्री शीलेंद्र कुलश्रेष्ठ को प्रदान किया गया।

डॉ. सुमन चौरे
सप्तपर्णी सम्मान से सम्मानित

श्रीमती उर्मिला तिवारी की स्मृति में प्रतिवर्ष दिए जाने वाला प्रतिष्ठित सम्मान इस वर्ष मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के समारोह में सप्तपर्णी सम्मान से डॉ. सुमनजी चौरे को सम्मानित किया गया है। उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री विवेक जी अग्रवाल और प्रसिद्ध चिंतक, साहित्यकार श्री विजय बहादुर जी सिंह ने संस्था की ओर से सम्मानित किया। डॉ. सुमन चौरे देश की प्रतिष्ठित लोक साहित्यकार है।

1998 से निरंतर प्रकाशित

कला समय

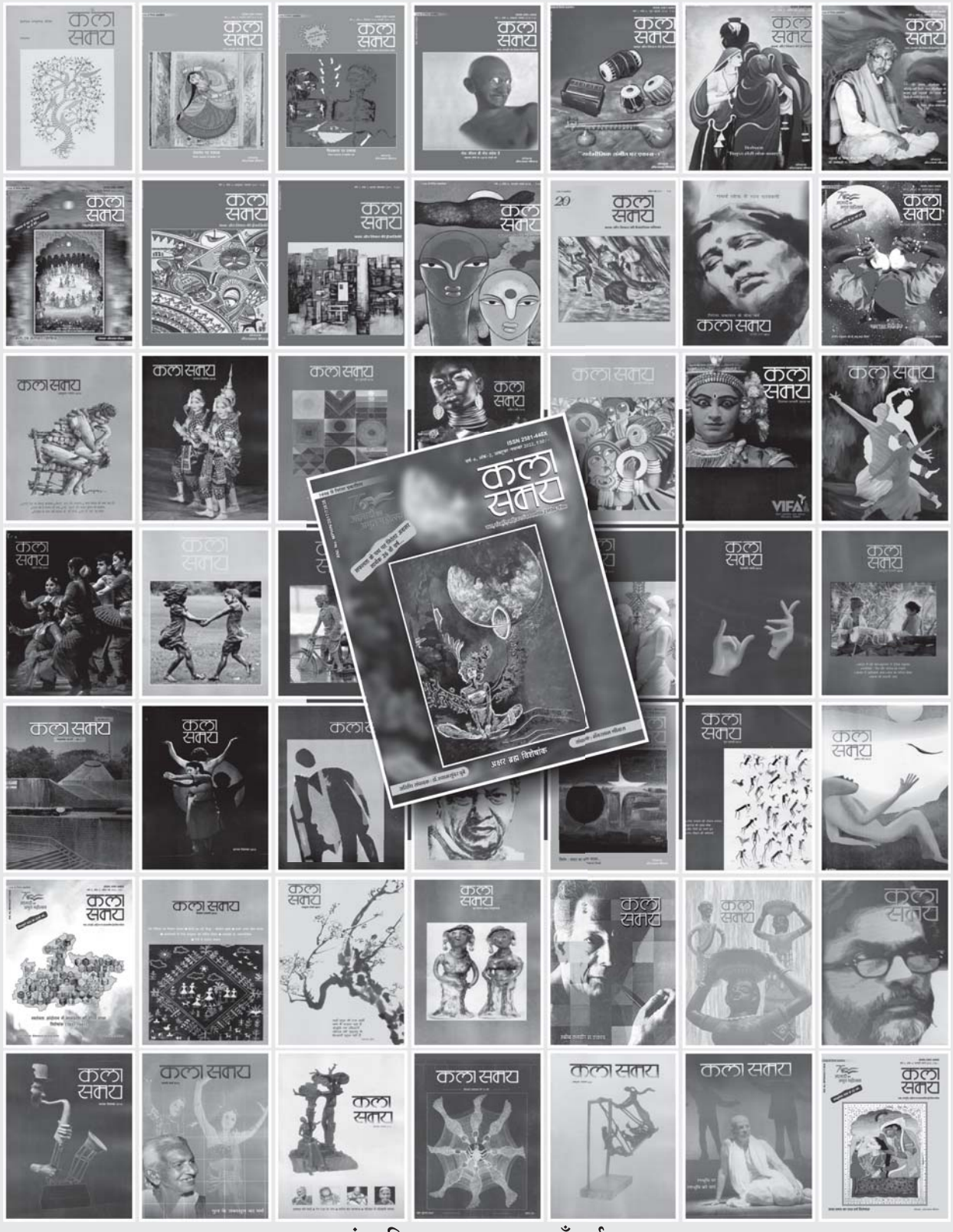

सांस्कृतिक यात्रा का 26 वाँ वर्ष...

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ●
● नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तो के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि की व्यवस्था है।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा भी उपलब्ध है।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन की व्यवस्था है।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

मध्यप्रदेश
पेसा नियम

जनजातीय वर्ग के विकास के लिए
अभूतपूर्व फैसला

जल के अधिकार

- तालाबों के प्रबंधन का अधिकार ग्राम सभा को
- ग्राम पंचायत करेगी 100 एकड़ तक की सिंचाई क्षमता के जलाशयों का प्रबंधन
- तालाब/ जलाशयों में मछली पालन, सिंघाड़ा उत्पादन की गतिविधियों का अधिकार, होगी आमदनी में वृद्धि
- जलाशयों को प्रदूषित करने पर कार्रवाई का अधिकार

जनजातीय गौरव के संरक्षण और संवर्धन के अधिकार

- परंपराओं और सांस्कृतिक पहचान का गौरव बढ़ेगा
- शराब/ भांग की दुकान ग्राम सभा की अनुमति बिना नहीं
- अस्पताल, स्कूल या धार्मिक स्थल के पास शराब/ भांग की दुकान को दूसरी जगह स्थानांतरित करने की अनुशंसा का अधिकार
- सार्वजनिक स्थानों पर शराब के उपयोग को प्रतिबंधित करने एवं अवैध बिक्री को रोकने का अधिकार
- स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र, आंगनवाड़ी, आश्रम शाला एवं छात्रावासों में निरीक्षण एवं मॉनीटरिंग का अधिकार ग्राम सभा को
- ग्राम में हाट बाजार और मेलों के प्रबंधन का अधिकार
- एक तिहाई महिला सदस्यों के साथ शांति एवं विवाद निवारण समिति, यह समिति परम्परागत तरीके से विवाद निपटारा करने में होगी सक्षम
- सामाजिक सौहार्द और भाई-चारा कम करने वाली किसी भी गतिविधि का समर्थन नहीं करेगी ग्राम सभा
- धर्मान्तरण से संस्कृति संरक्षण के लिये अधिकार

श्रमिकों के अधिकार

- ग्राम सभा साल भर की कार्ययोजना बनाकर ग्राम के हर पात्र मजदूर को दिलाएगी मांग आधारित रोज़गार
- केंद्र और राज्य की रोज़गार मूलक योजनाओं में कार्यों का निर्धारण करेगी ग्राम सभा
- रोज़गार मूलक कार्यों में मस्टर रोल की गलतियों को ठीक करने का अधिकार
- गांव से पलायन और मजदूरों के शोषण को रोकने का अधिकार ग्राम सभा के पास
- नियत मजदूरी दर को गांव में सार्वजनिक स्थान पर एक बोर्ड पर प्रदर्शित किया जाएगा
- किसी साहूकार द्वारा शोषण पर ग्राम सभा अनुशंसा के साथ उपखण्ड अधिकारी को भेज सकेगी शिकायत
- किसी हितग्राही मूलक योजना में गांव के सबसे ज्यादा आवश्यकता वाले पात्र हितग्राही को मिलेगी प्राथमिकता

"पेसा नियम जनजातीय समुदाय के सर्वांगीण विकास के लिये लागू किये गये हैं। इनको सफल बनाने और इनकी भावना के अनुरुप प्रभावी क्रियान्वयन के लिए कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी जाएगी।"

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

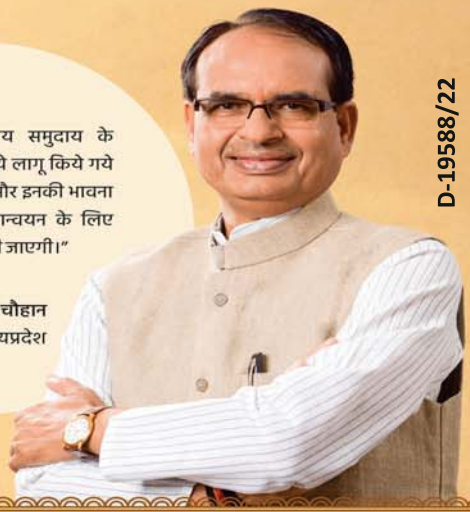

D-19588/22

मध्यप्रदेश शासन

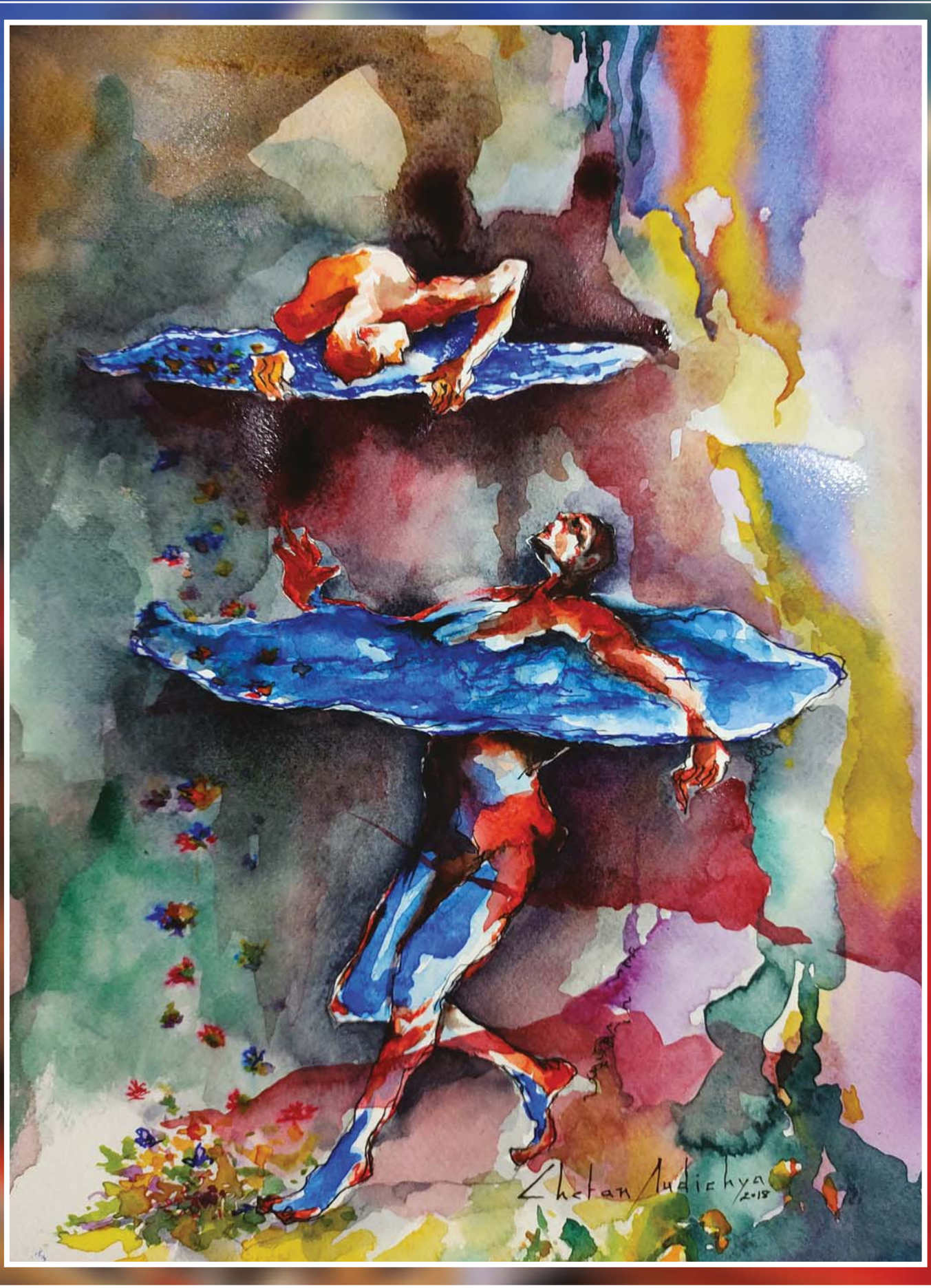

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास